वनमाला

सरस्वती सरन 'कैफ़'

प्रकाशक
केवल सागर
१२८/१, हाज़रा रोड,
कलकत्ता ।

प्रकाशक

केवल सागर

१२८/१, हाज़रा रोड,

कलकत्ता।

प्रथम संस्करण—११००

सितम्बर १९५६

मूल्य तीन रुपया

मुद्रक

कल्याण प्रेस

वाराणसी।

वनमाला

१. विवाहोत्सव

बर्लिंगटन होटल के सामने दोनों ओर सड़क पर कारों की कतारें लगी हुई थीं। लखनऊ की सैलानी जनता के लिए इतने में कौतूहल की यथेष्ट सामग्री थी। कारों के पास खड़े हुए सिगरेट फूँकते ड्राइवरों की राहगीरों के सवालों का जवाब देते-देते मुसीबत आ रही थी। लेकिन फिर भी वे प्रसन्न थे। आते-जाते लोगों के प्रश्नों का उत्तर वे एक अजीब शान से देते थे और यथा-संभव संक्षेप में उन्हें बताते थे कि अन्दर क्या हो रहा है। इन प्रश्नों का उत्तर देते समय उनके मुख पर ऐसी गर्वमिश्रित दीप्ति छा जाती थी जैसे कि सारा समारोह उन्हीं के दम-कदम से है और वे उससे अलग बाहर इसीलिए खड़े हैं कि उनका बड़प्पन उन्हें अन्दर होने वाले बच्चों के खेल में शामिल होने से रोकता है।

ड्राइवर और अरदली लोग खास तौर से एक कार के चारों ओर ज़्यादा जमा थे। यह निहायत खूबसूरत काही रंग की नयी शेवरलेट कार थी। इसकी दूसरी विशेषता यह थी कि इसके हुड पर गेंदे के फूलों की तीन चार लम्बी-लम्बी मालाएँ बड़े करीने से पड़ी थीं। शाम के झुटपुटे में चौड़ी सड़क की तेज़ बत्तियों का प्रकाश कार की नयी पालिश पर अपना क्षीण प्रतिबिंब डालकर उसकी सजावट में चार चाँद लगा रहा था। अधेड़ उम्र का एक दाढ़ीदार ड्राइवर इस समय खास तौर पर परिहास का केन्द्र बना हुआ था। यों तो सभी ड्राइवर और अरदली अपनी आदत के खिलाफ़ साफ़ कपड़े पहने थे लेकिन मियाँ यूसुफ़ तो आज निराले ही ठाठ में थे। पेटेंट लेदर का पंप जूता, मक्खन ज़ीन की ताज़ी धुली पैंट और बोसकी की कमीज़ उनके लम्बे तड़ंगे बदन पर

बहार दिखा रही थी। इस समय उनकी बढ़िया पैंट ही इस मज़ाक का कारण बनी हुई थी क्योंकि अन्य ड्राइवरों ने अपने ठाठ रेशमी कुर्तों, ताजे धुले पाजामों या धोतियों, बेले के गजरों और सुगन्धित गिलोरियों तक ही सीमित रखे थे। मियाँ यूसुफ़ के चेहरे पर कोई परेशानी नहीं दिखायी देती थी। वे हँस-हँस कर अपने साथियों के मज़ाक का तुर्की-बतुर्की जवाब देते जाते थे।

बगल में हाल की ही बनी हुई पायनियर की शानदार इमारत थी। इस के एक मात्र फाटक से साइकिलों पर दो-तीन सूटेड बूटेड बाबू लोग निकले। यह सब पायनियर के सम्पादकमंडल के सदस्य थे। सभी की तरह इन लोगों को भी कौतूहल जाग उठा और साइकिलें रोक कर उन्होंने इस विशेष कार के पास प्रश्न कर ही डाला,

"क्यों भई! आज क्या है यहाँ पर?"

ड्राइवर श्याम सिंह प्रश्नकर्ता मि० ज़ैदी को जानता था। वे उसके मालिक डा० चक्रवर्ती के बगल के मकान में ही रहते थे। उसने आगे बढ़कर सलाम करते हुए कहा, "सरकार आप लोग तो अखबार वाले हैं। आपको तो सभी बातों की खबर रखनी चाहिए। आज हमारे यूसुफ़ मियाँ की शादी है। देखिए यह सजी सजायी कार और आपकी साहबी पतलून।" मोटर ड्राइवर अपनी मस्ती और आज़ादी में लासानी होते हैं।

मि० ज़ैदी गंभीरतापूर्वक मुसकरा कर रह गये लेकिन साथ के उप-सम्पादक जिंदादिल थे। वे खुलकर हँस पड़े। मि० सिमियन ने कहा, "दुल्हिन कहाँ है? क्या शादी खाली कार से होगी?" ड्राइवरों में कहकहा पड़ गया।

दूसरा ड्राइवर कमरुद्दीन बोला, "सुना जाता है कि दुल्हिन इनकी खसखसी दाढ़ी को देखकर डर गयी और किसी नौजवान के साथ भाग गयी। बड़ी मेहरबानी होगी सरकार! पायनियर में इश्तहार निकल जाय। बेचारा दुआएँ देगा।"

फिर कहकहा पड़ा। मियाँ यूसुफ़ अब की बार वाकई झेंप गये। वैसे तो इस परिहास का भी उत्तर दिया जा सकता था लेकिन वह इतना अशिष्ट होता जिसे इन शरीफ़ बाबू लोगों के सामने मुँह पर नहीं लाया जा सकता था।

ग़रीब खिसियानी हँसी हँस कर रह गया। ज़ैदी साहब ने मुसकरा कर कहा, "अच्छा अब मज़ाक तो काफ़ी हो चुका? अब बतादो कि यहाँ क्या है? यूसुफ़ तुम्हीं बताओ।"

यूसुफ़ ने कहा, "हुजूर! प्रोफेसर साहब की शादी की दावत है।"

"किसकी? प्रोफेसर जितेन्द्र वर्मा की?"

"जी हाँ, ग़रीबपरवर।"

"लेकिन यह दावत तो दो हफ्ते बाद होने वाली थी! आज ही कैसे हो गयी?"

"अब यह तो हम नहीं बता सकते सरकार!"

मि० ज़ैदी उलटे पाँव लौट गये। वे शिफ्ट इन-चार्ज थे। यद्यपि उनकी ड्यूटी खत्म हो चुकी थी तथापि पत्रकारी की वफ़ादारी का तक़ाज़ा था कि किसी नयी खबर को पाते ही वे अपने पत्र को उसकी सूचना दें। मि० ज़ैदी को भी यह फ़िक्र थी कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि रिपोर्टर लोग भी मेरी ही तरह अनभिज्ञ हों और यह महत्वपूर्ण समाचार छूट जाय और नवप्रकाशित नेशनल हेराल्ड पायनियर से बाजी मार ले जाय। दफ्तर दो कदम पर ही था। मि० ज़ैदी को वहाँ जाकर इत्मीनान हो गया कि बर्लिंगटन होटल के समारोह में हमारा रिपोर्टर गया है। फिर भी उन्होंने अपने कर्तव्य की इतिश्री न समझी। प्रो० जितेन्द्र वर्मा का ब्लाक मौजूद था लेकिन उनकी वधू वनमाला भट्टाचार्य का ब्लाक तो क्या फोटो तक न था। पायनियर की शान इसी में थी कि वरवधू का चित्र छापा जाय। समाचार तो हेराल्ड भी देता। अभी तक यह भी इत्मीनान था कि पन्द्रह दिन बाद सार्वजनिक रूप से विवाह का समारोह होगा। लेकिन जब सर पर ही आ पड़ी तो भी काम तो होना ही चाहिये। फोटो का मिलना टेढ़ी खीर थी। रात की शिफ्ट के इन-चार्ज मि० धवन की राय थी कि आज तसवीर छोड़ो कल परसों दे दी जायगी। लेकिन मि० ज़ैदी को सूझ गयी तो सूझ गयी। कोई चपरासी भी इस समय खाली न था। लेकिन यह खुदा का बंदा खुद ही वधू के घरवालों से नितांत अपरिचित होते हुए भी—वधू का फोटो मांगने के लिए लाल बाग की ओर साइकिल दौड़ाने लगा।

उनके साथ के दोनों उपसम्पादकगण ड्राइवरों से एक-आध बात और

करके, खास मेहमानों के नाम वगैरा पूछ कर अपने घर चले गये। ड्राइवर लोग फिर बेफिक्री से हा-हा ही-ही करने लगे।

श्याम सिंह ने फिर चुटकी ली, "यूसुफ़ तुम्हारी बीवी बेवफ़ा निकली।"

यूसुफ़ ने जो उत्तर जैदी साहब के सामने रोक लिया था वह उभर पड़ा। वह बोला, "अमाँ खून का असर थोड़े ही जाता है। आखिर को तुम्हारी ही सगी बहिन थी न!"

"मेरी तो कोई बहिन ही नहीं है, न सगी न सौतेली। हाँ मेरी घर वाली जरूर तुम्हें भाई साहब कहती है। मालूम नहीं क्यों?" श्याम सिंह ने तड़ाक से जवाब दिया।

यूसुफ़ कुछ कहे इसके पहले ही ड्राइवर रामदास बोल उठा, "अरे श्याम सिंह! यूसुफ़ से होशियार रहना। यह बड़ा बहन ··· है।" फिर ठहाके लगने लगे।

इतने में ही चटकीला लाल लहँगा पहने और पीली ओढ़नी ओढ़े एक नयी नवेली ग्राम्य वधू जल्दी-जल्दी चलती दिखायी दी। रामदास बोला, "ले यूसुफ़! पकड़ जा के। वह रही तेरी बीवी।" सबकी निगाहें उधर ही घूम गयीं।

श्याम सिंह बोला, "यह तो अकेली है। इसका यार कहाँ गया?"

कमरुद्दीन ने कहा, "उसे छोड़ कर अब फिर इसके पास आयी है।"

यूसुफ़ लहरा कर गाने लगा, "अरे अकेली मत जइयो राधे ए···जमुना के तीईईर······"

ग्राम्य वधू ने चौंक कर भय-भीत हरिणी की भाँति इन अलमस्तों को देखा और अपनी चाल और तेज़ कर दी। ड्राइवरों के ठहाकों से आसमान तक गूँज गया।

× × × ×

होटल के अन्दर की रौनक़ का क्या कहना। डाइनिंग हाल दुल्हिन की तरह सजा था। लगभग ढाई सौ मेहमानों की खातिर तवाज़े का इंतजाम था। हाल की लम्बाई में छः-छः मेजों की पाँच कतारें लगी थीं और एक किनारे पर एक लम्बी और बड़ी मेज़ थी जिस पर वर-वधू और प्रमुखतम अतिथि बैठे थे।

होटल के मैनेजर खुद एक किनारे खड़े होकर दावत के प्रबन्ध का निरीक्षण कर रहे थे। कुशल वेटर बुर्राक़ वर्दियाँ पहने हुए दौड़-दौड़ कर मेहमानों के सामने बर्फ़ानी क्रीम, काफ़ी, आइसक्रीम, चाय तथा अन्य-खाद्य पदार्थ ला-ला कर रख रहे थे। सारा काम मशीन की तरह हो रहा था। क्या मजाल कि किसी वेटर का शरीर दूसरे वेटर से छू जाय या किसी के पैरों की आवाज सुनायी दे जाय। फिर इतनी फुर्ती का काम कि हर चीज़ दो मिनट में सारे मेहमानों के सामने पहुँच जाती थी। डाइनिंग हाल के फ़र्श पर कीमती कारपेट डाले गये थे, दीवारों पर अंग्रेज़ी प्राकृतिक दृश्यों के चित्र, मेजों पर सफेद बुर्राक़ मेज़पोश और उन पर बड़े-बड़े फूलदानों में ताज़े गुलदस्ते और शीशे के गिलासों में कलापूर्ण ढंग से मोड़ कर रखे हुए नेपकिन। छत से लटकते हुए बारह-बारह और सोलह-सोलह बल्बों के झाड़ों की तेज़ रोशनी में मेजों पर चमचमाते हुए छुरी-काँटे और चम्मच और बिल्लौर जैसी प्लेटें। सारा हाल जैसे ठोस वास्तविकता न हो कर स्वप्नों के कल्पनालोक का एक अंश हो। कहीं से कोई कमी नहीं। मेहमान खुद भी इस दृश्य की शोभा बढ़ाने में कुछ कम भाग न ले रहे थे। सूट और शेरवानियाँ पहनने वालों के बदन पर अपनी चुस्ती की बहार दिखा रही थीं। सारियों और शलवारों की रेशमी सर-सुराहट, सारियों के सुनहले रुपहले बार्डरों, नेकलेसों, अंगूठियों और रिस्टवाचों की चकाचौंध करने वाली जगमग, क्रीम, पाउडर तथा यूडीकोलों की भीनी-भीनी गमक, शारीरिक श्रम की अनभ्यस्त गोरी गुलाबी त्वचाओं की ताज़गी, चाँदी की घंटियों-जैसे कह-कहों के साथ दो पहर की बिजली की भाँति मोतियों की लड़ी जैसे दाँतों की चमक सब कुछ अवर्णनीय था।

लेकिन रूप और गंध के इस झुरमुट में भी वधू की अपनी निराली ही शान थी। यों तो उसका अंग-प्रत्यंग विधाता ने अपने ही हाथों गढ़ा था लेकिन उसकी कमलदल-जैसी आंखों की मुस्कराहट में ऐसा जबर्दस्त खिंचाव था जो मेहमानों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट किये लेता था। वह इस समय सारे पुरुष अतिथियों की मूक प्रशंसा और सारे नारीवर्ग की स्पर्धा का केन्द्र बनी हुई थी। यों तो वह अधिकतर मेज़पोश की ओर ही देख रही थी किन्तु जब भी किसी ओर वह दृष्टिपात करती तो उसकी मुसकराती हुई तरल आंखों से ऐसी

ठंडी बिजली की धाराएँ छूटती थीं कि देखने वालों को अपनी निगाहें नीची ही कर लेनी पड़ती थीं। वह उपस्थित व्यक्तियों में एक को छोड़ कर सारे हृदयों को अपनी खामोश निहागों से झंझोड़ कर रखे दे रही थी। यह अपवाद केवल स्वयं वर महोदय थे। उनके गेहुँए किताबी चेहरे से एक विलक्षण नम्रतापूर्ण आत्म-विश्वास का भाव झलक रहा था। कभी कभी जब वे अधमुंदे नेत्रों से हल्की शांतिपूर्ण मुसकराहट बिखेरते तो सहसा प्रमोद चटर्जी कृत चित्र 'चन्द्रशेखर' की याद आ जाती। उंतालीस की अवस्था होने पर भी न उनका एक भी बाल सफेद था और न चेहरे पर कोई झुर्री।

अभ्यागतों में वाइस-चांसलर, यूनिवर्सिटी के प्राध्यापकगण, वकील, डाक्टर, पत्रकार, अधिकारीगण— गर्ज कि प्रांतीय राजधानी के सारे प्रमुख नागरिक थे। दावत के साथ ही हँसी मजाक और ठहाके भी उड़ रहे थे। प्रो० सलीम ने दूसरे अविवाहित प्राध्यापक डा० मेहता को लक्ष्य करके कहा, "देखिये डा० मेहता, प्रो० वर्मा ने सिलसिला शुरू कर दिया है। अब आप भी जल्दी ही एक से दो हो जाँय।"

डा० मेहता मुसकराकर बोले, "प्रो० वर्मा ने तो शादी का इतना ऊँचा 'स्टंडर्ड' कर दिया है कि अब तो मेरा बुढ़ापा भी 'सिंगिल' ही कटता दिखायी देता है। न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेंगी। न वनमाला–जैसी 'ब्राइड' मिलेंगी न ईजानिब की शादी ही होगी।"

हँसी थमने पर प्रो० वर्मा ने कहा, "आपका मर्ज लाइलाज है। आपके साथ हमेशा यही रहेगा कि यों तो आपको हर लड़की में कुछ 'डिफेक्ट' दिखायी देंगे, लेकिन वही लड़की जब किसी से शादी कर लेगी तो आप हाथ मलेंगे।"

प्रो० सलीम ने कहा, "यह कसूर इनका नहीं, उन फिलासफी के 'जर्म्स' का है जो इनके दिमाग में लाखों अंडे दे चुके हैं।"

बैरिस्टर सिनहा बोले, "फिर? किसी डाक्टर से सलाह ली जाय?"

प्रो० सलीम ने कहा, "जी नहीं साहब! फिलासफी मामूली मर्ज नहीं है। मर्ज बढ़ जाने पर मरीज डाक्टर को काट तक खाता है। इनका केस डाक्टर का नहीं थानेदार का है।" इसपर फिर जोरों का कहकहा पड़ा।

खान-पान धीरे धीरे चलता रहा। हँसी मजाक और कहकहे भी लगते रहे। रूप और गंध का समुद्र ठाठें मारता रहा। सुख-शांति की वर्षा होती रही।

दावत खत्म होने पर वाइस-चांसलर महोदय ने भाषण किया। वर और वधू दोनों के गुणों और प्रतिभा की भूरि-भूरि सराहना करके उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया और उनके मंगलमय भविष्य की सर्वशक्तिमान परमेश्वर से प्रार्थना की।

सबके अंत में प्रो० वर्मा खड़े हुए और बोले, "देवियो और सज्जनो! आप लोगों ने अपनी उपस्थिति से और वाइस-चांसलर महोदय ने अपने शब्दों से हम दोनों के लिए जो उद्‌गार प्रकट किये हैं उन पर आपको रस्मी तौर पर धन्यवाद देना उन उद्‌गारों का पूरा मूल्य न समझना है। मैंने अभी तक विवाह केवल इसीलिए नहीं किया था कि मैं अपने को इतना जिम्मेदार और शक्तिशाली नहीं पाता था कि कुटुम्ब की महान् और पवित्र जिम्मेदारियों को वहन कर सकूँ। आज भी मैं डरते डरते इस जिम्मेदारी को संभाल रहा हूँ। फिर भी मुझे आशा है कि हम दोनों मिलकर एक दूसरे की सलाह और सहारे से और आप लोगों के आशीर्वाद और सतत सहारे से अपनी पवित्र और महान पारिवारिक जिम्मेदारियों को संभालते चलेंगे और अपने जीवन में कुछ ऐसा काम कर जायँगे जो हमारे सामाजिक जीवन को हमारी उचित देन समझा जाय और हमारे अपने व्यक्तित्वों के साथ ही हमारे सामाजिक मर्यादा के धरातल को और ऊँचा कर सके। मुझे आप लोगों के आशीर्वाद की आज ही नहीं, सदैव आवश्यकता है।"

तालियों की गड़गड़ाहट से हाल गूँज उठा। सब लोग दो-दो चार-चार के झुंड में बाहर निकल आये। किसी ने लक्ष्य न किया कि वधू के मुख पर जो प्रसन्नता थी अब कुछ क्षोभ झलक रहा है और वह मेहमानों को जिस दृष्टि से देख रही है उसमें विद्रूप की मात्रा यथेष्ट है।

---

२. माँ की उलझन

मि० ज़ैदी ने लालबाग़ पार करके रटलेज रोड के एक छोटे से सुन्दर मकान के आगे आकर दम लिया। बरामदे में पहुँच कर उन्होंने दीवार में लगे बटन को दबाया। अन्दर घंटी बज उठी और मि० ज़ैदी आराम से बरामदे में पड़ी बेंत की कुर्सी पर बैठ गये। दो मिनट बाद अन्दर से एक छोकरा निकला और यह कह कर कि, "बीबी जी नहीं हैं," फिर अन्दर जाने लगा। मि० ज़ैदी ने उसे रोका तो वह झुँझला पड़ा, "अरे साहब आप लोग तो यह भी नहीं देखते कि मिलने का कौन सा वक्त होता है। सुबह आइयेगा।"

यह लड़का नया ही नौकर था और अभी तक बेचारे ने ऐसे ही अपरिचित आगंतुकों को देखा था, जो अपनी जान-पहचान वालियों की नौकरी या तरक्की की प्रार्थना लेकर इंस्पेक्ट्रेस साहबा के घर आया करते थे। इन गरज़मन्दों के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है वैसा ही छोकरे ने ज़ैदी साहब के साथ किया। ज़ैदी साहब गुस्सा रोक कर बोले, "घर में और कोई है?"

छोकरे में नयी नौकरी की शान थी। वह बोला, "आप भी अजीब आदमी हैं। घरवालों से आप को क्या मतलब! घर में तो सभी हैं। लेकिन बीबी जी सुबह ही मिलेंगी। पहले ही कह दिया। जाइए......सुबह आइयेगा।"

छोकरे ने अन्तिम शब्द कुछ इतनी कड़ाई से कहे थे कि ज़ैदीसाहब यह बिल्कुल भूल गये कि वे एक अपरिचित घर में हैं। उन्होंने उठ कर लड़के का हाथ पकड़ा और दो थप्पड़ उसके मुँह पर जमाये। लड़का बिलबिला कर हाय-हाय करने लगा। घर के अन्दर से लोग दौड़े आये।

चश्मा लगाये और सफेद बगैर किनारे की धोती बंगाली तर्ज़ से पहने सर ढँके हुए एक वृद्धा ने पूछा, "क्या बात है? क्यों चिल्लाता है रामचन्द्र?"

छोकरा रामचन्द्र कुछ कहे इसके पहले ज़ैदी साहब उबल कर बोले, "मैं बताऊँगा आप को कि क्या हुआ। लेकिन पहले यह बताइए कि शरीफ़ आदमियों की बेइज्जती करने वाले नौकरों को रखने में आप लोगों की क्या पालिसी है?"

वृद्धा ने गौर से इन भारी भरकम अधपके बालों वाले सूटेड-बूटेड साहब

को देखा और नम्रता से बोली, "मुझे नौकर की बदतमीज़ी पर बड़ा दुख है। मैं आपसे माफ़ी माँगती हूँ। आइए अन्दर बैठिए।"

जैदी साहब अन्दर ड्राइंग रूम में सोफे पर बैठ गये। वृन्दा की नम्रता ने उनका क्रोध उड़ा दिया था और अब उन्हें अपने व्यवहार पर कुछ कुछ दुख भी हो रहा था। उन्होंने कहा, "मुझे भी अपने व्यवहार पर कम दुख नहीं है। लेकिन मैं मजबूर था। मैं जिस काम के लिए आया था वह इसी समय होना जरूरी है। ऐसा न होता तो मैं सुबह ही आता। आपको इस समय तकलीफ न देता।"

वृद्धा बोलीं, 'कहिए।'

जैदी साहब ने कहा, "मैं पाइनियर का 'रिप्रिजेंटेटिव हूँ। अखबार के काम के सिलसिले में आया हूँ।"

"अखबार के काम से? कहिए! हम क्या सेवा कर सकते हैं!"

जैदी साहब को वृद्धा की साफ हिन्दी और सद्‌व्यवहार से कुछ आश्चर्य हो रहा था। वे समझ गये कि यह इंस्पेक्टरेस साहबा की माँ ही हो सकती हैं। उन्होंने कहा, "हमें इस वक्त आपकी पुत्री का फोटो चाहिए।"

वृद्धा की भृकुटी कुछ तनती हुई दिखायी दी लेकिन उन्होंने संयत स्वर में पूछा, "क्यों? फोटो का क्या होगा?"

जैदी साहब को आश्चर्य हुआ। पत्रों में चित्र निकलवाने के लिए लोग कितने लालायित रहते हैं। खुद ही पत्र के कार्यालय में चित्र भेजते हैं, सिफारिश करवाते हैं कि चित्र अवश्य निकले, और एक यह बुढ़िया है कि फोटो निकलने की बात पर बिगड़ रही है जैसे मैं इसके दरवाजे पर भीख मांगने के लिए आया होऊँ। उन्होंने अचकचाते हुए कहा, "जी, फोटो का? मेरा मतलब है कि आज आपकी पुत्री का विवाहोत्सव है। हम लोग इसकी 'न्यूज' अच्छे ढंग से देना चाहते हैं और चित्र भी। इसीलिए फोटो की ज़रूरत है।"

वृद्धा ने रुखाई से कहा, "वह आजाय तो उसी से मांगिएगा। मुझे नहीं मालूम कहां रखा है।"

"वे कब तक आयेंगी। आप बता सकती हैं?"

"मुझे क्या मालूम ? मुझ से कोई पूछकर जाती है ?" वृद्धा कटुता से बोली।

जैदी साहब उलझन में पड़ गये। इस बुढ़िया से कुछ कहना सुनना बेकार था। फोटो तो मिलना ही चाहिए। नहीं तो भवन साहब चुटकियाँ लिए बगैर न रहेंगे। अगर श्रीमती वनमाला देर से आयीं तो भी क्या लाभ। देर में फोटो मिला तो ब्लाक ही न बन सकेगा। भूख भी लग रही है। उन्हें अपने और पायनियर के ऊपर गुस्सा आने लगा। ख्वाहमख्वाह किस मुसीबत में पड़ गया। घर में खाना ठंडा हो रहा होगा और यहाँ मैं जलभुन रहा हूँ।

लेकिन मजबूरी थी। श्रीमती वनमाला का इंतज़ार करना ही चाहिये। बुढ़िया की ओर देखा तो वह अब तक वैसी ही बैठी हुई थी। उसकी निगाहें फर्श पर जमी थीं। उसके होंठ काँप रहे थे और आँखों की कोरों में पानी की बूंदें झलक रही थीं। चेहरे की झुर्रियाँ पहले से भी गहरी हो गयी थीं। स्पष्ट था कि उसके हृदय में तुमुल द्वंद्व मचा है। कुछ देर तक चुप्पी रही। अंत में जैदी साहब से न रहा गया। वे बोल उठे, "गुस्ताखी माफ़ हो तो एक बात पूछूँ।"

"जरूर पूछिए, वृद्धा उसी रुखाई से बोली।

अपनी बेटी की शादी से आप उतनी खुश नहीं दिखाई देतीं जितना आम तौर पर माताएँ होती हैं।"

वृद्धा के मुख पर विकलता फूट पड़ी। उसके होठों के कोने खिच गये और जब उसने आँखें उठायीं तो उनमें करुणा की इतनी गहरी छाप थी कि जैदी साहब चौंक उठे और बोले, "रहने दीजिए। यह आपका जाती मामला है। मुझे पूछने का कोई हक़ नहीं। माफ़ कीजिएगा। मैं शायद अपनी हद से आगे बढ़ गया।"

लेकिन भावनाओं का बाँध एक बार टूटा तो टूटा। वृद्धा ने कहा, "नहीं बेटा! इसमें हद से बढ़ने की कोई बात नहीं है। मैंने दुनिया देखी है। लोगों की निगाहें पहचानती हूँ। मुझे मालूम है कि तुम पूरी सहानुभूति से पूछ रहे हो। लेकिन डर है कि शायद मेरी दुःख गाथा को तुम कोरी सनक समझो और ऊब उठो।"

"तब तो मैं जरूर पूछूँगा । आप जानती हैं कि 'जर्नलिस्ट' दुनिया में किसी भी बात से ऊबा नहीं करता," जैदी साहब मुसकरा कर बोले ।

वृद्धा ने कहा, "बात यह है कि यह तो आप जानते ही हैं कि मां की अपनी सन्तान का कितना मोह होता है । खास तौर से जब कि माँ विधवा हो और सन्तान अकेली हो और उसके अलावा माँ का कोई सहारा न हो ।"

"बेशक बहुत मोह होता है," जैदी साहब ने हामी भरी ।

"सिर्फ मोह ही नहीं होता बल्कि अपनी औलाद से उम्मेदें भी होती हैं । अपने ही हित के लिए नहीं बल्कि औलाद की भलाई के लिए भी कुछ सपने हर एक माँ के दिल में होते हैं । वह चाहती है कि उसकी औलाद किसी ऐसे रास्ते में पैर न रखे जिससे उसका भविष्य खराब हो । लेकिन इन उम्मेदों को, इन सपनों को जब बच्चे तोड़ देते हैं और मनमानी करने लगते हैं तो बूढ़ी और कमजोर माओं के पास आंसू बहाने के अलावा और क्या रह जाता है ।"

"बेशक," मि० जैदी ने ताज्जुब से कहा, "लेकिन मैं आपकी बात समझ नहीं पा रहा हूँ । आपकी बेटी ने ऐसी क्या बात की जिससे आपको दुख पहुँचा ?"

"क्या आप नहीं जानते कि उसने एक गैर जात के गैर बंगाली से, सारे रस्म रिवाज तोड़ कर शादी कर ली है ? हमारे यहाँ के लोग इस बात पर कैसा तूफान खड़ा कर रहे हैं इसका शायद आपको पता नहीं है ।"

जैदी साहब ने समझाने की कोशिश की, "आप तो काफी पढ़ी लिखी और 'कल्चर्ड' मालूम होती हैं । आप भी ऐसे दकियानूसी ख्यालात रखती हैं ?"

"मुझे मालूम था कि आप यही कहेंगे," वृद्धा मुसकराकर बोली, अपने जमाने में मैं भी बहुत 'ऐडवांस्ड' समझी जाती थी । मैंने उस जमाने में बी०ए० पास किया था जब हमारे बंगालियों की 'एडवांस्ड कम्यूनिटी' में भी लड़कियों का मेट्रिक होना ही बड़ी बात समझी जाती थी । अपने घर और ससुराल की परदे की परम्परा को भी सबसे पहले मैंने ही तोड़ा था । पुराने रिवाजों को तोड़कर मैं सभा-सोसाइटियों में भी बराबर हिस्सा लेती रही । बंगभंग-आंदोलन के समय—जब मेरी शादी नयी नयी ही हुई थी—मैंने अनगिनत सभाओं में भाषण दिये । बीसियों क्रांतिकारियों को अपने घर जगह दी । मुझ पर आप

'आर्थोडाक्स' होने का इल्जाम नहीं लगा सकते। वे 'आर्थोडाक्स' लोग आपने शायद देखे ही नहीं हैं जिनका हमने मुकाबला किया था। लेकिन आगे बढ़ने की भी तो एक हद होती है। जाति-पाँति की कट्टरता मैंने कभी नहीं मानी। खाने पीने के मामले में हम हमेशा लिबरल रहे। लेकिन शादी ब्याह की बात दूसरी है। यह बच्चों का खेल नहीं है। यह बंधन बड़ा पवित्र और जीवनभर का होता है। इसमें भावुकता या अति आधुनिकता से काम नहीं चलता। कम से कम जीवनसंगी चुनने में मां बाप के तजुर्बे की भी जरूरत है। जाति बिरादरी के भी हमारे भारतीय बंधन इतने बुरे नहीं हैं जितने ऊपर से देखने में लगते हैं। हर 'कम्युनिटी' की एक अलग 'कल्चर' होती है। इसका सामंजस्य होने पर ही आजीवन संग की गारंटी होती है। फिर इन देवी जी ने विवाह-पद्धति भी कौन सी चुनी? जिसमें तलाक का पहले से ही विधान है। यानी विवाह की पवित्रता की जड़ पहले से ही काट दी गयी।"

मि० जैदी वृद्धा की इन बातों को ध्यान से सुन रहे थे। उनके लिए इनसे सहमत होना तो असंभव था क्योंकि वे खुद ही इतने प्रगतिशील थे कि घरवालों की हायतोबा को अनसुना करके उन्होंने एक ईसाई लड़की से 'सिविल मैरिज' की थी। किन्तु अन्य पुराणपंथियों की भाँति वृद्धा की बातों पर वे मुँह बिचका न सके। प्राचीनतावाद को वैज्ञानिक तर्क में जिस ढंग से उपस्थित किया गया था उसके काट के लिए वैसे ही तर्क की जरूरत थी। वे यह भी चाहते थे कि वृद्धा को समझा बुझाकर उसका विषाद दूर करें। वे बोले, "देखिए, मैं इस बारे में विवाद करना तो उचित नहीं समझता लेकिन यह जरूर कहूँगा कि आप श्रीमती वनमाला के कार्य पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें। यह भी तो सोचिये कि आपके जमाने में उन बातों को करके—जो निस्संदेह ठीक ही नहीं जरूरी भी थीं—आपने अपने बुजुर्गों की भावना को ठेस पहुँचाया होगी। आज अगर आपकी बेटी आपसे कुछ आगे सोचती है या सोचने का दावा करती है तो आपको इससे इतना दुख तो न होना चाहिए।"

वृद्धा ने मुसकरा कर कहा, "उसने भी मुझे ऐसा ही लेक्चर दिया था। लेकिन जिन बातों को मैं गलत समझती हूँ उन्हें किसी के लेक्चर देने भर से कैसे मान लूंगी। आप चाहें तो मुझे 'आर्थोडाक्स' कह लें लेकिन मेरी पक्की

राय है कि वनमाला ने अच्छा नहीं किया। मेरी तो कुछ ही दिन की और रह गयी है। रोते हँसते कट ही जायगी लेकिन खुद उसके लिए इसका नतीजा अच्छा न होगा।"

मि० ज़ैदी सोच रहे थे कि इस ज़िद्दी बुढ़िया से कुछ कहा जाय या नहीं। स्पष्ट था कि इसे जो मर्मान्तिक ठेस लगी है वह इस कारण नहीं कि वनमाला ने सिविल मैरिज कर ली। विशेष परिस्थिति में बुढ़िया खुद भी शायद इसकी अनुमति दे देती। जाति-पाँति की शादी के पक्ष में उसने जो दलीलें दी थीं वे काफी बेतुकी थीं और उसकी शिक्षा और संस्कृति के साथ मेल नहीं खाती थीं। फिर उसने अपने को घिरते देखकर सहसा बहस भी बंद कर दी थी, जैसे कि उसे अपने पक्ष की कमज़ोरी का पूरा विश्वास हो। फिर यह दुख, खीझ और आँसू किसलिए?

इतने में ही बाहर एक कार आने की आवाज आयी। दो मिनट में प्रो० वर्मा के साथ श्रीमती वनमाला वर्मा ने कमरे में पाँव रखा। उनके पीछे बैरिस्टर सिनहा थे, जिन्होंने खास तौर पर अपनी कार विवाहित जोड़े के इस्तेमाल के लिए दी थी। ज़ैदी साहब प्रो० वर्मा के पूर्व परिचित थे ही। उन्होंने तपाक से उठ कर प्रोफेसर साहब से हाथ मिलाया और उन्हें शादी की बधाई दी। सिनहा साहब का ज़ैदी साहब से परिचय होने के कुछ देर बाद प्रो० वर्मा सिनहा साहब के साथ चलने को तैयार हुए। वे अभी तक बैरिस्टर साहब के घर पर ही रहते थे। उनका अलग कोई मकान न था। ज़ैदी साहब ने चुटकी ली "वर्मा साहब! अब आप बिदा कराने का भी इंतजाम कीजिए।"

बैरिस्टर साहब ने कहा, "देखिए क्या होता है। कहीं ऐसा न हो कि इन्हें घरजमाई बनाना पड़े।" सब लोग हँस पड़े। वनमाला की माँ श्रीमती भट्टाचार्य भी जबर्दस्ती मुसकरा दीं।

प्रो० वर्मा और सिनहा साहब के जाने के बाद वनमाला ज़ैदी की ओर मुड़ी, "कहिए एडीटर साहब कैसे तकलीफ़ की?"

"यह तुम्हारी तसवीर माँगने आये हैं," रुखाई से कहकर श्रीमती भट्टाचार्य अन्दर चली गयीं।

वनमाला ने मुसकराते हुए कहा, "आप इनकी बातों को 'फ़ील' न कीजिएगा। 'ओल्ड एज' में आदमी कुछ 'सिनिक' हो ही जाता है।"

"आपकी माता जी की योग्यता और शालीनता ने मुझे बहुत प्रभावित किया है," ज़ैदी साहब बोले, और जैसे न चाहते हुए भी उनके मुँह से निकल पड़ा, "मुझे इस बात से बड़ा अफ़सोस हुआ कि वे आप की शादी से सन्तुष्ट न हो सकीं।"

वनमाला ने होंठ भींच कर गहरी नज़र से जैदी साहब की ओर देखा।

जैदी साहब ने तुरन्त स्थिति सँभाल कर कहा, "मुझे इस बात पर ताज्जुब हुआ कि आप-जैसी योग्य महिला भी उन्हें इस बात पर 'कनविंस' न कर सकीं कि यह शादी 'आइडियल' है।"

वनमाला के चेहरे का तनाव खत्म हो गया। उसने हँस कर कहा, "जब 'ईगोइज्म' बहुत बढ़ जाता है तो 'कनविंस' होने की गुंजाइश कम ही हो जाती है। मम्मी को मैं क्या सारी दुनिया भी 'कनविंस' नहीं कर सकती।"

जैदी साहब वनमाला के सुन्दर होठों से निकले हुए शब्दों की कठोरता पर गौर ही कर रहे थे कि वनमाला फिर बोली, "आप मेरा फोटो लेने आये थे। मुझे फोटो देने में आपत्ति नहीं है, लेकिन मैं अखबार में फोटो निकलवा कर 'चीप प्रोपेगंडा' करना बहुत पसन्द नहीं करती।"

जैदी साहब ने हँस कर कहा, "आप का फोटो निकलने से आप का 'चीप-प्रोपेगंडा' होगा या नहीं यह तो मैं नहीं जानता लेकिन यह जानता हूँ कि मेरे पत्र की प्रतिष्ठा बढ़ जायगी। फोटो के लिए पायनियर की आप से 'रिक्वेस्ट' है, 'फ़ेवर' नहीं। आप चाहें तो इस दरख्वास्त को नामंजूर भी कर दें, आप की मर्जी।"

पाँच मिनट में जैदी साहब फोटो जेब में डाले पाइनियर की ओर साइकिल उड़ाये हुए जा रहे थे।

३. इन्सपेक्ट्रेस साहबा

जून का महीना था। दो दिन से बहुत सख्त गर्मी पड़ रही थी। सुबह के वक्त भी चैन नहीं था। उम्मेद थी कि दो एक रोज़ में पानी जरूर बरसेगा लेकिन इस समय तो बुरा हाल था। दस बजे दिन से लू के थपेड़ लगने लगते और रात के दस बजे तक गर्म हवा चलती रहती। दो पहर की प्रचंड गर्मी का तो कहना ही क्या, शाम तक पसीने की धारें लगातार छूटती रहती थीं। पिछली रात को तो शायद ही कोई पूरी नींद ले पाया हो।

सुबह आठ बजे एक ताँगा प्रो० जितेन्द्र वर्मा के मकान के आगे रुका। ताँगे में से एक अधेड़ सज्जन एक नवयुवती के साथ उतरे। यह सज्जन इस भयंकर गर्मी में भी मोटी खद्दर की शेरवानी और खद्दर का ही चूड़ीदार पाजामा पहने थे। साथ की नव युवती भी खद्दर की साड़ी पहने थी जिसे शायद अनभ्यस्त होने के कारण सँभाल भी नहीं पा रही थी। बरामदे में दो चार लोग और भी इंस्पेक्ट्रेस साहबा से मिलने के लिए बैठे थे लेकिन नवागंतुक सज्जन को शायद बहुत जल्दी थी। उन्होंने नौकर को डाँट कर कहा कि मेरा 'विज़िटिंग कार्ड' अभी जाकर दो। बेचारे ने फौरन इन स्थूलकाय सज्जन के हुक्म की तामील की।

श्रीमती वर्मा अभी प्रो० वर्मा के साथ नाश्ता करके आफिस में आयी थीं। आज उन्होंने सोचा था कि कई ज़रूरी काम निबटा दूँगी लेकिन विज़िटिंग कार्ड पर 'एस० पी० गुप्त, प्रेसिडेंट डिस्ट्रिक्ट, कांग्रेस कमेटी, बहराइच लिखा देखकर उनके चेहरे पर परेशानी झलक आयी। वे मुँह में ही बड़बड़ाने लगीं, "फिर आगये एक नेताजी। अब यही घंटा भर ले लेंगे।"

नौकर ने शायद उनके विचारों को पढ़ लिया। वह बोला, "हुज़ूर यह सब के बाद आये हैं लेकिन सबसे पहले मिलना चाहते हैं। क्या कहूँ जाकर?"

वनमाला चौंक कर बोली, "कुछ नहीं। ले आओ उन्हें।"

गुप्त जी ने हँसते हुए प्रवेश किया और हाथ जोड़कर बोले, "वंदे।"

वनमाला नवयुवती को देखकर गुप्त जी के आगमन का अभिप्राय समझ गयी और मनही मन हँसी। ऊपर से उसने गंभीरतापूर्वक आगंतुकों को बैठने का इशारा किया। उनके बैठने पर बोली, "कहिए।"

"आपको थोड़ासा कष्ट देना था," गुप्त जी बोले, "वैसे तो मैंने शिक्षा मन्त्री से मिलने को सोचा था लेकिन फिर यह सोचकर आपके पास चला आया कि ज़रा-सी बात के लिए उनका समय क्या बर्बाद करूँ।"

"बिलकुल ठीक है। आप मेरा ही समय बर्बाद कीजिए।"

ही-ही करके हँसते हुए गुप्त जी बोले, "खूब कही आपने। हाँ, तो यह निवेदन था कि यह मेरे एक मित्र और बहराइच के एक सार्वजनिक कार्यकर्ता की पुत्री हैं। पिता ने अपना तन-मन-धन सब कुछ देश के लिए निछावर कर दिया है। उनके घर की हालत खराब है। वे तो कांग्रेस के ही काम में मस्त हैं, उन्हें कोई फिक्र नहीं है। तो आप कृपा करके इन्हें कहीं लगवा दें।"

वनमाला ने गहरी नज़र से लड़की को देखा। मध्यवर्गीय परिवार की लड़कियों जैसी लज्जा और घबराहट के साथ ही उसके चेहरे पर एक अहम्मन्यता का भाव भी झलक रहा था जिससे उसका सहज सुन्दर मुख विकृत-सा दिखाई देता था। वनमाला पर इस लड़की का प्रथम प्रभाव ही अच्छा नहीं पड़ा। उसने रूखे स्वर में कहा, "इस समय जगह मिलना तो मुश्किल ही है। जिस तादाद में नियुक्तियों के लिए प्रार्थनापत्र आ रहे हैं उस रफ्तार से स्कूल नहीं खुल ....।"

गुप्त जी बोले, "ऐसी बात तो नहीं है। कांग्रेस सरकार तो शिक्षा-प्रसार का बहुत कार्य कर रही है। उसकी योजनाएँ ....।"

जिस प्रकार गुप्त जी ने वनमाला की बात काटी थी उसी प्रकार वनमाला ने बीच में टोक कर कहा, "योजनाएँ दूसरी बात हैं और कार्य और चीज़। हमारे सामने तो कोई बात कार्यरूप में आती है तभी हमारे काम की होती है।"

गुप्त जी शायद अपने आने का उद्देश्य भूल गये। उनके स्वर में गर्मी आने लगी। मंच पर खड़े होकर गर्मागर्म भाषण करने वाला हृदय सरकारी दिमाग की दलीलों की क्या कद्र करे। वे कुछ-कुछ आँखें तरेर कर बोले, "मेरी समझ में आपकी बात नहीं आ रही है। क्या आप समझती हैं कि कांग्रेसी सरकार की योजनाएँ कोरी कागज़ी योजनायें हैं, वे कार्य रूप में परिणत नहीं हो सकतीं।"

"मैंने यह नहीं कहा," वनमाला ज़हरीली मुसकराहट बिखेर कर बोली।

"फिर आपने क्या कहा ?" गुप्त जी शायद अभी तक गर्मी में थे।

"मैंने जो कुछ कहा था वह आपको याद रखना चाहिए," वनमाला उसी तरह मुसकराते हुए बोली, "लेकिन मेरा ख्याल है कि आप मुझसे जवाब तलब करने तो नहीं आये थे।"

गुप्त जी का चेहरा लाल पड़ गया। इन सरकारी नौकरों के दिमाग़ अभी तक ठीक नहीं हुए। अभी तक इन्हें नहीं मालूम कि जननेताओं से किस तरह बात करनी चाहिए। उन्होंने छिपी धमकी दी, "जी हाँ, मैं यहाँ आपसे जवाब तलब करने नहीं आया हूँ। आप से जवाब तलब तो आपके अधिकारी-गण ही करेंगे और शायद बहुत जल्दी। अगर आप लोग अपना पुराना रवय्या नहीं छोड़ेंगी तो आपके ही हक में अच्छा न होगा।"

वनमाला ने अपने हृदय में उमड़ता हुआ गुस्सा दबाया और अपने स्वर में ऊबने का-सा भाव लाकर बोली, "उपदेश के लिए धन्यवाद। अब काम की बात कीजिए—अगर आपके पास कोई काम की बात हो।"

गुप्त जी कुछ कहें इसके पहले उनके साथ की नवयुवती बोली, "चाचा जी तो हर जगह पब्लिक प्लेटफार्म ही समझते हैं। काम तो मेरा था। मुझे नौकरी चाहिए। आप मेरी मदद कर सकें तो आभारी रहूँगी।"

वनमाला का क्रोध शांत होने लगा। फिर भी चोट आसानी से तो नहीं भुलायी जा सकती थी। वह बोली, "यह तो मुझे याद था, लेकिन गुप्तजी ने ही बातचीत का रुख़ पलट दिया था। खैर, आपकी 'क्वालीफिकेशन्स' क्या हैं ?"

"'क्वालीफिकेशन्स' तो कोई खास नहीं हैं। इस साल हाई स्कूल किया है। साहित्य-सम्मेलन की मध्यमा परीक्षा भी पास कर चुकी हूँ।"

"यह दूसरी परीक्षा आपने क्या बतायी ? आप का मतलब प्रवेशिका से है क्या ?" वनमाला ने पूछा।

"जी नहीं," नवयुवती गर्वपूर्वक हलकी हँसी हँसकर बोली, "प्रवेशिका हिन्दी महिला विद्यापीठ का पहला इम्तहान है। मध्यमा हिन्दी साहित्य सम्मेलन की दूसरी परीक्षा है। इसका स्टेन्डर्ड ऊंचा होता है।"

वनमाला अपने अज्ञान के खुलने पर झेंप-सी गयी। सरकारी अफसरों की

चाल से उसने फौरन बात पलटी, "खैर कुछ भी हो। यह इम्तहान आपकी कुछ मदद न करेगा। हाई स्कूल का इम्तहान ज़रूर आपकी 'क्वालीफ़िकेशन' है। आपने कोई ट्रेनिंग का इम्तहान भी पास किया है?"

"जी नहीं," नवयुवती इत्मीनान से बोली।

"फिर क्या किया जाय," वनमाला ने दिल में खुश होते हुए लेकिन ऊपर से निराशा दिखाते हुए कहा, "बगैर ट्रेनिंग के गवर्नमेंट सर्विस कैसे मिलेगी।"

गुप्ताजी ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला ही था कि नवयुवती ने उन्हे हाथ के इशारे से रोक कर कहा, "ट्रेनिंग की डिग्री नहीं है इसीलिए तो हम आपके पास खास तौर पर आये हैं, नहीं तो क्यों आते।"

वनमाला हँस कर बोली, "मेरे पास आने से असंभव बात संभव तो नहीं हो जायगी। कायदा तो कायदा ही है।"

नवयुवती चुप होनेवाली नहीं थी। वह और जम कर कुर्सी पर बैठ गयी और वनमाला की नज़र से नज़र मिलाकर बोली, 'क़ायदे के खिलाफ़ भी काम हुआ करते हैं। और यह ज़रूरी भी नहीं है कि आप खास तौर पर मेहरबानी करके क़ायदा तोड़ें। अगर आप मशीन की तरह काम करने की हामी न हों तो आप यह तो मानेंगी ही कि आपके विभाग का उद्देश्य स्त्रियों की शिक्षा का प्रसार है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए आपको जो भी साधन उपलब्ध हों उन्हें आपको काम में लाना चाहिए। आपकी अध्यापिकाओं में क्या सब ट्रेंड ही हैं? और फिर यह क्या ज़रूरी है कि हर एक 'ट्रेंड टीचर' 'अन ट्रेंड' से अच्छा ही काम करे?"

वनमाला समझ गयी कि अब मुक़ाबला कुछ सख्त है। उसने बगलें झाँकते हुए कहा, "उम्मेद तो ऐसी ही की जाती है।"

"लेकिन सवाल यह है कि यह उम्मेद क्या पूरी भी होती है?"

"बाज़ हालतों में नहीं भी होती। लेकिन हम लोगों के पास योग्यता का और क्या मापदंड है? उदाहरण के लिए हम आपके बारे में कैसे यकीन करें कि आपका काम ट्रेंड टीचर्स के बराबर होगा?"

"काम करने का मौक़ा देकर," नवयुवती उसी इत्मीनान से बोली।

वनमाला कुछ देर तक सोचने के बाद बोली, "देखिए मैं आपसे कोई वादा नहीं कर सकती। लेकिन आप 'अप्लाई' करें। अगर मैं आपके लायक कोई जगह देखूँगी तो आपको 'इनफार्म' करूंगी। हाँ लीजिए। इस कागज़ पर अपना नाम और पता लिख दीजिए ताकि मुझे याद रहे।"

"धन्यवाद," कह कर नवयुवती ने फाउंटेन पेन निकाला और अत्यन्त सुन्दर अक्षरों में लिखा। 'मनोरमा सिनहा' मार्फत श्री केदार नाथ सिनहा, बहराइच। कागज़ वनमाला को देकर बोली, "अब तो उम्मेद है कि स्थान रिक्त होने पर मेरी सर्विस लग जायेगी।"

"देखिए, मैं वादा कुछ भी नहीं कर सकती।"

गुप्तजी अभी तक जले भुने बैठे थे। वे बोले, "देखिए साहब यह बातें तो टाल मटोल की हैं। आप साफ-साफ कहिए कि आप इन्हें लगाएँगी या नहीं।"

वनमाला का क्रोध भभक उठा। वह फुफकारती सी बोली, "Mr. Gupta ! I am not habituated to this kind of talk. मि० गुप्त ! मैं ऐसी बात सुनने की आदी नहीं हूँ।"

गुप्तजी भी आग बरसाते हुए बोले, "मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आपको पुरानी साहबियत बदलनी पड़ेगी। अब कांग्रेस का राज है और मैं आप को साफ़ साफ़ बता देना चाहता हूँ कि आप लोग जनता के मालिक नहीं हैं, नौकर हैं और इसी तरह आप को काम करना पड़ेगा।"

"शट अप", वनमाला चीख कर बोली। साथ ही उसने मनोरमा का दिया हुआ कागज़ फाड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया।

गुप्तजी दाँत पीस कर बोले, "अच्छा देख लूँगा आपको भी।" यह कहकर वे मनोरमा का हाथ पकड़ कर तेज़ी से बाहर निकल गये। वनमाला ने बाकी मिलने वालों को एक साथ ही बुला लिया और पाँच मिनट में ही उन सबकी प्रार्थनाएँ अस्वीकार करके उन्हें वापस कर दिया।

इधर गुप्त जी सीधे भिन्नाये हुए मनोरमा को साथ लेकर सेक्रेटेरिएट पहुँचे। दो घंटे प्रतीक्षा करने के बाद शिक्षामन्त्री आये। कार से उतरते ही उनका हाथ गुप्त जी ने पकड़ा। यह दोनों ६ वर्ष पूर्व १६३२ में फैज़ाबाद जेल में साथ-साथ रहे थे और दोनों की दाँतकाटी रोटी थी। गुप्त जी ने फौरन ही कहा, "पहले

यह बताओ कि तुम लोग वाकई मन्त्री हो या कठपुतले। अगर मन्त्री हो तो तुमसे बात करूँ।"

मन्त्री महोदय के आसपास जो अर्दली खड़े थे वे मुँह फाड़कर रह गये। एक वर्ष पूर्व यदि किसी मन्त्री से कोई ऐसी बात करता तो सीधा पुलिस में दे दिया जाता। मन्त्री महोदय भी कम नहीं झेंपे। लेकिन पहले मन्त्रिमंडल के ज़माने की बात थी जब कि ब्रिटिश शासन ही था और मन्त्रीगण भी अपने को मन्त्री कम और कांग्रेसी ज्यादा समझा करते थे और अपनी अधिकार की प्रतिष्ठा से उन्हें सार्वजनिक नेतृत्व की प्रतिष्ठा का अधिक ध्यान रहता था। मन्त्री महोदय मुसकरा कर बोले, "गर्मी बहुत पड़ रही है। अंदर पंखे की हवा में दिमाग़ ठंढा करो तो तुम्हारी बात सुनें।"

आफिस में जाकर मन्त्री महोदय ने गुप्त जी की बातें सुनीं तो उन्हें भी वनमाला की बदतमीज़ी पर गुस्सा आया। उन्होंने फौरन शिक्षा विभाग के सेक्रेटरी को बुलवाया। सेक्रेटरी के आने पर उन्होंने पूछा, "क्यों साहब! यह मिसेज़ वनमाला वर्मा जो इंस्पेक्ट्रेस आफ़ स्कूल्स हैं उनके बारे में आपका क्या ख्याल है? उनका काम कैसा है? उनके सर्किल की प्रोग्रेस क्या है?"

मन्त्री महोदय के तेवर देखकर एक बार तो सेक्रेटरी साहब भी सकपकाये, लेकिन फौरन ही संभल गये। वे जानते थे कि मन्त्रियों की कमज़ोर नस कौन सी है। एक बात और थी जिसका जिक्र यहाँ बेमौका न होगा। यह सेक्रेटरी साहब अविवाहित थे और कवि न होते हुए भी कुछ-कुछ कवियों का हृदय रखते थे। वे वनमाला के रूप के पुराने मौन प्रशंसकों में से थे। उन्होंने कहा, "मिसेज़ वर्मा का काम बहुत अच्छा है। हमें उनसे कोई शिकायत नहीं हुई।"

मन्त्री महोदय का गुस्सा ठंडा पड़ गया। जब एक विभाग का आई० सी०-एस० सेक्रेटरी इत्मीनान से किसी अधिकारी की सिफ़ारिश कर रहा है तो उस पर कोई आपत्ति डालना जोखिम काम है। शासनसंचालन के लिए सेक्रेटरियों का खुश होना कितना ज़रूरी होता है यह एक ही साल के अनुभव से मन्त्रिगण अच्छी तरह समझ गये थे। मन्त्री महोदय ने दूसरा तीर छोड़ा, "इस सर्किल में उन्हें काम करते कितना समय हुआ है?"

"दो साल," सेक्रेटरी श्री कुमार स्वामी बोले।

अगर उनका ट्रांसफर मेरठ डिवीज़न को कर दिया जाय तो ? यह कार्य-कुशल हैं तो वहाँ की खराब हालत संभालने में इनसे बहुत मदद मिलेगी।"

"इम्पासिबिल, योर आनर !" सेक्रेटरी साहब बोले, "हमने इस सर्किल में नयी योजनाएँ शुरू की हैं। नयी इंस्पेक्ट्रेस को वह सब 'फालो' करने में देर लगेगी। 'एडमिनिस्ट्रेटिव व्यू' से इसमें बड़ा नुकसान है। वैसे जैसा आप चाहें।"

मन्त्री महोदय बड़े परेशान हुए। अच्छी मुसीबत सुबह-सुबह पड़ गयी। अगर वनमाला के खिलाफ़ कुछ नहीं करते तो यह ज़हर का पुतला गुप्त हाई कमांड तक बात पहुँचा देगा और सेक्रेटरी की बात नहीं मानते तो शासनयन्त्र ही विरोधी बना जाता है। अंत में सेक्रेटरी साहब की ही जीत रही। मन्त्री महोदय उन्हें बिदा करके गुप्त जी से हँसकर बोले, "यार सची सची बात बताओ। उससे तुम्हारा असल झगड़ा किस बात पर हुआ ?"

गुप्त जी बोले, "क्या मतलब है ? मैंने तो पूरी बात तुम्हें बता दी।"

मन्त्री महोदय ने झुक कर ताकि मनोरमा उनकी बात न सुन पाये, गुप्त जी के कान में कहा, "यार असली बात यह है कि तुम उसे पटाने गये थे और उसकी शादी हो चुकी है सो उसने तुम्हें धता बताया। अब इसमें हम क्या करें ?"

गुप्त जी ने यह तो पहले ही जान लिया था कि आई० सी० एस० का जादू चल गया है और मेरी दाल न गलेगी। इस समय शिक्षा-मन्त्री की बात सुनकर और उनकी आँखों की कुटिलतापूर्ण मुसकान देखकर वे भी अपनी हँसी न रोक सके और जोर से उनकी पीठ पर हाथ मार कर बोले, "बड़े शरीर हो तुम। मन्त्री होकर भी गंभीरता न आयी।" और दोनों ही हँसने लगे।

गुप्त जी उठने लगे तो शिक्षा-मन्त्री ने उन्हें जबर्दस्ती बिठा लिया और अरदली को फौरन रसगुल्ले, समोसे और लेमोनेड लाने का आर्डर दिया। गुप्त जी ने जब भर पेट नाश्ता कर लिया तो उनका अपमान से दग्ध हृदय शांति का अनुभव करने लगा।

मनोरमा इन अधपके बालों वाले 'बालकों' के कार्य पर मनही-मन हँसती रही।

———

४. पति-पत्नी

वनमाला मिलने वालों के बिदा होने के बाद आफिस में तेजी से टहलने लगी।

उसकी बड़ी-बड़ी आखों से आग की लपटें निकल रही थीं। चेहरा बिल्कुल सिन्दूरी रंग का हो रहा था। उभरा हुआ वक्षस्थल बड़ी तेजी से ऊपर-नीचे हो रहा था। अपने कार्य-काल में उसे कभी इतना अपमान सहन न करना पड़ा था। वास्तव में अभी तक उसकी किसी से लड़ाई ही नहीं हुई थी। अपने कार्य से उसने किसी को शिकायत का मौका ही न दिया था। उसका व्यवहार भी ऐसा होता था कि ऊपर से नीचे तक सभी उसका दम भरते थे। उसके जानने वाले कहते थे कि सौंदर्य और प्रतिभा का जैसा विलक्षण सम्मिश्रण उसमें है वह और कहीं दिखायी नहीं देता। अधिकारी गण से लेकर कांग्रेसी नेता तक सभी उसकी प्रशंसा करते थे। आज की घटना इतनी आकस्मिक और अप्रत्याशित थी कि खुद वनमाला की समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो गया। इस समय तो उसे सोचने का अवसर ही नहीं मिल रहा था। उसके कानों, आँखों और नथुनों से गर्मी निकल रही थी, खून तेज़ी से चक्कर काट रहा था और दिमाग़ में सन-सन करके आँधी चल रही थी। पसीने से ब्लाउज ही नहीं साड़ी भी लतपत होने लगी थी।

आध घंटे तक चक्कर काटने पर उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ गये। अचानक उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने उसके शरीर से सारा रक्त निचोड़ लिया हो। वह बुरी तरह हाँफने लगी और चूर-चूर होकर कुर्सी पर धम से बैठ गयी। पसीना और बुरी तरह उमड़ने लगा। वनमाला ने एक मिनट बाद उठ कर छत पर लगे हुए बिजली के पंखे को, जो अभी तक हलकी हवा दे रहा था, पूरी रफ्तार से खोल दिया। कमरे में आँधी सी आ गयी। वनमाला के कसे हुए बाल बिखर कर चेहरे पर उड़ने लगे और वह आराम कुर्सी पर आँखें बन्द करके लेट गयी। उसके सर में धमक हो रही थी और जोरों की प्यास लगी थी लेकिन उसको हिम्मत नौकर को बुलाकर पानी माँगने की भी न हुई।

नौ बज रहा था। वनमाला नियमित रूप से दस बजे अपने दफ्तर पहुँच जाती थी लेकिन आज जैसे उसे दफ्तर जाने का ख्याल ही न रहा हो। बहुत

देर तक वह योंही पड़ी रही। सवा नौ बज गये। प्रो० वर्मा एक मोटी-सी किताब लिये हुए आये। वनमाला वैसे ही पड़ी रही। प्रोफेसर साहब हँसते हुए बोले, "आफ़िस सोने के लिए नहीं होता जनाब!"

वनमाला ने कष्ट से आँखें खोलीं। उसकी लाल आँखों की थकन और बिखरी हुई लटें देखकर प्रो० वर्मा चौंके। उन्होंने घबराये स्वर में पूछा, "क्यों? खैर तो है? कैसी तबियत है?"

"कुछ नहीं। यों ही थक गयी थी," वनमाला ने सँभलते हुए कहा। लेकिन स्त्रियाँ पति की आँखों से अपना कष्ट कभी नहीं छिपा पातीं। प्रो० वर्मा ने पास आकर उसके सर पर हाथ रखकर कहा, "ठीक बताओ। क्या बात है?"

वनमाला को किसी की दया का पात्र होने की आदत नहीं थी। उसने अपनी याद भर में कभी अपनी माँ को भी नहीं बताया था कि इस समय मुझे यह कष्ट है। पति की दया का दान या उनके समक्ष अपनी कोई भी कमजोरी रखना वह नहीं चाहती थी। उसने फिर कहा, "नहीं कोई बात नहीं है।" लेकिन स्वर संयत रखने के पूरे प्रयत्न के बावजूद उसकी आवाज़ न जाने क्यों भर्रा गयी और जब प्रो० वर्मा ने प्यार से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर अपना प्रश्न दुहराया तो वह उनके सीने पर सर रखकर रोने लगी।

उसकी पूरी कहानी सुनने के बाद प्रोफेसर साहब हँसने लगे। पत्नी के कपोलों पर प्यार की हलकी चपत जड़ते हुए वे बोले, "बड़ी पगली हो तुम!"

वनमाला हैरत से उनका मुँह देखने लगी तो वे फिर बोले, "इसमें इतना परे-शान होने की क्या बात है। सभी तरह के लोग आया करते हैं। उसने बद-तमीज़ी की तो तुमने भी उसे निकाल दिया। फिर रोना-धोना क्यों? आखिर हो तो औरत ही।"

वनमाला पर जैसे किसी ने चाबुक छोड़ दिया हो। वह तन कर खड़ी हो गयी और कुछ जवाब देने ही वाली थी कि प्रोफेसर साहब ने दूसरा शोशा छोड़ा, "और दूसरे मिलनेवालों ने क्या कसूर किया था? एक के जुर्म की सजा दूसरों को देना कहाँ का इंसाफ़ है?"

वनमाला को रुलाई-सी आने लगी। आज वह न जाने किसका मुँह

देखकर उठी थी कि सभी उसे परेशान कर रहे थे। वह खीझ कर बोली, "जी हाँ, बातें बनाना बड़ा आसान है। आप पर पड़ती तो जानते।"

प्रोफेसर साहब उसी तरह मुसकराते हुए बोले, "अब मेरा नम्बर है क्या?"

वनमाला उल्टे-सीधे पैरों वहाँ से भागी और गुसलखाने में घुस गयी। प्रोफेसर साहब हँसने लगे।

दफ्तर में भी वनमाला को चैन न मिला। आज संयोग से कागज़-पत्र भी बहुत कम देखने को थे। मिलनेवाले भी आज दो ही तीन आये थे और सब का काम जल्दी ही निबट गया था। अब वह अकेली ही थी। उसके दिमाग में आज सुबह की बातें तेजी से चक्कर काट रही थीं। इस समय उसे क्रोध नहीं था लेकिन एक लज्जा जनित खीझ रह-रह कर उसके हृदय में टीस मार रही थी। उसकी समझ में आ गया था कि गुप्त जी की बात सोचना बेकार है, जितना अपमान उन्होंने मेरा किया है उससे अधिक मैंने उनका कर दिया। उन्हें भी याद रहेगा कि किसी से पाला पड़ा था। उसे उनके कांग्रेसी होने का भी विशेष भय न था क्योंकि वह जानती थी कि सरकार सीधा जवाब तलब तो कर ही नहीं सकती। यह हो सकता है कि अधिकारीगण उसकी कहीं बदली कर दें। लेकिन यदि उनमें बुद्धि होगी तो वे ऐसा न करेंगे। इस सर्किल की योजनाएँ मेरे ही बस की हैं, सेक्रेटरी साहब इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। और 'ट्रांसफर' हो भी जाय तो बला से।

लेकिन उसे सबसे ज्यादा खीझ इस बात पर थी कि अपने पति के हाथों उसे मात खानी पड़ी थी। उन्होंने उसके साथ बिल्कुल ऐसा ही व्यवहार किया था जैसे कोई अपने बच्चे के साथ करे। वनमाला यह कभी मानने को तय्यार न थी कि पति के आगे पत्नी की हैसियत बच्चे जैसी होती है। यों तो उसके पति के दकियानूसी ख्यालात होने का सवाल ही नहीं उठता लेकिन आज तो जैसे पति-पत्नी की सारी मान्यताएँ धूल में मिल गयी थीं। वनमाला को रह-रह कर इस बात पर खीझ उठती कि मैंने उनके सामने ऐसी कमज़ोरी क्यों ज़ाहिर की जिससे उन्होंने मेरे सारे व्यक्तित्व को ही कुचलकर रख दिया, मुझे बिल्कुल अस्तित्व हीन बना दिया।

वनमाला ने अचानक मेज़ पर रखी घंटी बजायी और चपरासी के आने

पर उसे बड़े बाबू को बुलाने का आदेश दिया। बड़े बाबू एक हाथ से धोती और दूसरे से चश्मा संभालते हुए आये तो उसने हुक्म दिया कि 'वेकेंसी लिस्ट' लाओ और अपायंटमेंट रजिस्टर भी। यह दोनों आने पर उसने दिखवाया कि कहाँ कौन सी जगह है। देख-भाल कर बाराबंकी में नये खुलनेवाले सरकारी हाई स्कूल में एक वेकेंसी को काटकर उसने आदेश दिया कि इसमें जूनियर हिन्दी टीचर के स्थान पर कुमारी मनोरमा सिनहा की नियुक्ति कर ली जाय और उन्हें नियुक्ति-पत्र भेज दिया जाय।

बड़े बाबू चश्मे के अंदर से झाँकते हुए बोले, "इनकी अप्लीकेशन?"

"अप्लीकेशन नहीं है। अप्लीकेशन आ जायेगी। आप एंट्री तो करें।"

बड़े बाबू को इंस्पेक्ट्रेस साहबा की उम्मेदवार की नियुक्ति में आपत्ति ही क्या होती। लेकिन उनके सामने जाब्ते की दिक्कत पेश आयी। वे बोले, "लेकिन हुजूर! इनकी क्वालीफिकेशंस' 'डेट आफ़ बर्थ' वगैरा कैसे भरी जायँगी। अप्लीकेशन और सर्टीफिकेट मँगा लीजिए। अपाइन्टमेंट में कितनी देर लगती है।"

वनमाला ने तेज़ी से कहा, "आप मुझे रास्ता न बताएँ। जो कहती हूँ उसे चुपचाप करते चलें। लिखिए एक अलग कागज़ पर 'मिस मनोरमा सिनहा, हाईस्कूल, मध्यमा।' इंदराज करने के बाद इन्हें नियुक्ति पत्र भेज दें, अभी।"

शामत के मारे बड़े बाबू ने दरवाजे पर जाकर फिर पलटते हुए पूछा, "हुजूर! 'अप्लीकेशन' नहीं है तो 'अपाइंटमेंट लेटर' में रेफरेंस' क्या दिया जायगा...।"

वनमाला फट पड़ी, "आप तो बिल्कुल सठिया गये हैं। जाइए...टाइपिस्ट को भेज दीजिए...... एक काम भी ढंग से नहीं कर सकते।"

बड़े बाबू हाँपते काँपते बाहर गये तो वनमाला मुसकरा पड़ी। यह गरीब भी सिर्फ फाइलों और जाब्ते के चक्कर में रहता है। इसका सारा जीवन ही एक फाइल बनकर रह गया है। मोटीताज़ी, मैली-कुचैली, कटी-फटी सी फाइल जिसमें बीसियों छोटे-बड़े, सफेद-पीले कागज़ लाल हरी और नीली रोशनाइयों और टाइप के काले अक्षरों से टेढ़ी-तिरछी सीधी लाइनों में गँजे हुए, उल्टे-सीधे भरे पड़े हैं, जो दो चार और कागज़ लेकर—दो चार साल में पेंशन

पाकर दाखिल-दफ्तर हो जानेवाली है। कितना विचित्र होगा इस प्राणी का जीवन।

वनमाला ने सुबह मनोरमा की चिट फाड़ ज़रूर दी थी लेकिन उसके मोतियों जैसे सुन्दर अक्षर उसकी आँखों के आगे अब भी तैर रहे थे। टाइपिस्ट के आने पर उसने नियुक्ति-पत्र लिखवा दिया। पत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद और टाइपिस्ट को वापस भेजकर वह हँस पड़ी। उसे महसूस हो रहा था कि उसने अपने खोये हुए व्यक्तित्व को फिर से पा लिया है।

वह फिर सुबह की बातों पर गौर करने लगी। उसने सोचा कि आखिर मैं अपनी आदत के खिलाफ आज तैश में कैसे आ गयी। उसने सारी घटना को शुरू से याद की। धीरे-धीरे उसे पता चला कि उसके मानसिक उद्वेग का कारण केवल यह था कि एक मामूली लड़की ने उसे अपनी बातों से हरा दिया था। सुबह का झगड़ा इसी खीझ का परिणाम हो सकता है। उसे याद आया कि सुबह वह उसकी बातों से इतने रक्षात्मक रवय्ये पर उतर आयी थी कि अफ़-सराना शान से उसे साफ़ जवाब भी न दे सकी और उसके साथ बहस भी करती चली गयी।

वह मनोरमा की बातचीत याद करने लगी। आखिर वह मामूली लड़की इतने आत्म-विश्वास के साथ कैसे बात कर रही थी। कहीं नयी कांग्रेसी सरकार की शान में तो नहीं थी। वनमाला की भौवें तनने लगीं। ऐसा हो तो अभी अपाइंटमेंट कैंसिल करना होगा। यह तो मुझे दिखाना ही नहीं है कि मैं किसी के दबाव में आकर कोई काम कर सकती हूँ। उसने एक क्षण को सोचा कि बड़े बाबू को बुलाकर नियुक्ति मंसूख करा दूँ, भले ही क्लर्क लोग मुझे झक्की बतायें। लेकिन नहीं। मनोरमा का आत्म-विश्वास कांग्रेसी होने के नाते नहीं था। ऐसा होता तो वह दो बार गुप्त जी को बात करने से क्यों रोकती? खैर कुछ भी हो। अब तो उसकी नियुक्ति हो ही गयी। बेचारी को इसकी बड़ी ज़रूरत भी थी। लेकिन उसका व्यक्तित्व है दिलचस्प। आयंदा मुआइने के समय उसे अच्छी तरह से देख सकूँगी।

कुछ देर में वह उठ बैठी और ताँगा करके घर की ओर चल दी। घर पहुँचकर उसने कपड़े बदले और स्टडी रूम में पहुँच गयी। प्रो० वर्मा हमेशा

की तरह अर्थशास्त्र की कोई भारी भरकम पुस्तक बड़े मनोयोग से पढ़ रहे थे। वनमाला ने भी एक उपन्यास निकाला और दूसरे सोफे पर बैठकर पढ़ने लगी।

कुछ देर में प्रोफेसर साहब ने पूछा, "अब गुस्सा उतरा जनाब का ?"

वनमाला के हृदय में इस छेड़ से गुदगुदी होने लगी। उसका जी चाहा कि कुछ रूठने का रसमय अभिनय किया जाय, लेकिन उसे अपने व्यक्तित्व की रक्षा करनी थी। इसलिए उसने इस भावना को बलपूर्वक दबाकर मुसकराते हुए कहा, "जी हाँ। गुस्सा तो आता भी है, उतरता भी है।"

"आपका तो गुस्सा आया और उतर गया लेकिन गुप्त जी की उम्मेदवार की तो नौकरी की उम्मेद भी खत्म हो गयी। बड़ा खतरनाक गुस्सा है," प्रोफेसर साहब ने हँसते हुए कहा।

"नहीं, इतना खतरनाक नहीं है जितना आप समझते हैं। मैंने उसे नियुक्त कर दिया है और 'अपाइंटमेंट लेटर' भी भिजवा दिया है।"

"क्या ?" कहकर प्रोफेसर साहब चौंक पड़े और आँखें फाड़कर वनमाला को देखने लगे। वनमाला बराबर मुसकरा रही थी। प्रो० वर्मा ने आधे मिनट में अपने को सँभाल लिया और प्रशंसात्मक स्वर में बोले, "वनमाला ! मुझे तुम्हारे इतने महान होने की आशा नहीं थी। तुम में कमाल का आत्मसंयम है। मैं तुम्हें बधाई दिये बगैर नहीं रह सकता।"

"थैंक्स," कहकर वनमाला विजयिनी की भाँति मुसकराती रही।

उस शाम को दोनों पति-पत्नी विशेष रूप से प्रसन्न थे। शाम के चार घंटे गोमती में नाव की सैर में बीते। गर्मी बुरी तरह पड़ रही थी लेकिन रात के खाने पर खूब लुत्फ़ आया। फिर सिनेमा जाने की ठहरी और दूसरे शो में 'पिक्चर' देखी गयी। एक बजे घर लौटे तो आसमान पर काले-काले बादल घिर आये थे और पुरवय्या चलने लगी थी। जबतक कपड़े बदलें तबतक जोरों का पानी बरसने लगा। ठंडक पड़ गयी थी। प्रोफेसर वर्मा अपने पलंग पर जाते ही खर्राटे भरने लगे लेकिन वनमाला की आँखों में नींद कहाँ !

———

५. दार्शनिक बहस

फरवरी १६४३ में महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार की कूटनीति को अपने सत्याग्रह के पुराने अस्त्र से एक बार फिर पराजित कर दिया। तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिनलिथगो ने सोचा था कि नेताओं को अज्ञात स्थान में बंद करके और जनसाधारण की उभरती हुई स्वतन्त्रता की भावना को संगीनों, जेलों और फाँसी के तख्तों के जरिए दबाकर वह चैन की साँस ले सकेंगे। लगभग ६ महीने तक ऐसा ही हुआ। लेकिन जब राष्ट्र के प्राण महात्मा गांधी के हृदय में स्पंदन हो रहा था तो राष्ट्र को चेतनाहीन समझने की आशा दुराशामात्र ही कही जा सकती है। महात्माजी ने जब तीन सप्ताह का आत्मशुद्धि का अनशन आरम्भ किया तो लार्ड लिनलियगो का रेत का किला ढह गया। उन्होंने घबरा कर तुरन्त ही गांधीजी के साथ होनेवाला पत्रव्यवहार प्रकाशित कराकर साबित कराना चाहा कि यदि गांधीजी इस अनशन में मर गये तो इसकी जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार पर बिल्कुल न होगी। इस अनशन का आध्यात्मिक पहलू छोड़ दें तो भी यह तो स्पष्ट है कि इससे राष्ट्र की सोती नसों में जान पड़ गयी। हर जगह से गांधीजी को रिहा करने के लिए ढेर के ढेर तार और पत्र सरकार के पास पहुँचने लगे, हर जगह सभाएँ हुईं जिनमें प्रतिष्ठित नागरिकों ने गांधीजी की रिहाई की जोरदार माँग की।

अनशन आरम्भ हुए बारह-तेरह दिन हुए थे। सुबह उठकर पत्रों में सबसे पहले यही समाचार पढ़ा जाता था कि गांधीजी के स्वास्थ्य की क्या दशा है। वास्तव में उनकी दशा खराब हो चली थी। भारतवासियों की चिंता बढ़ती जाती थी। रविवार को गंगा प्रसाद हाल में प्रतिष्ठित नागरिकों की एक सभा हुई। इसमें अन्य वक्ताओं के साथ ही प्रो० जितेन्द्र वर्मा ने भी भाषण किया था। इस अवसर पर वे अपने स्वभाव के विपरीत काफी तैश में आ गये थे और उन्होंने ब्रिटिश सरकार को काफी खरी खोटी सुना डाली थीं। यहाँ तक कि सभा के संयोजक कम्युनिस्टों ने उनके भाषण की विस्तृत रिपोर्ट बम्बई से निकलने वाले अपने मुख पत्र 'प्युपिल्स वार' में भेज दी थी और बाद में उक्त पत्र ने उसे ज्यों का त्यों, पूरा का पूरा छाप दिया था।

सभा से लौटते समय वनमाला ने प्रोफेसर साहब से कहा, 'आप लोगों ने सारा इल्ज़ाम सरकार पर ही डाल दिया। क्या आप सचमुच सोचते हैं कि इस अनशन में गाँधी जी की कोई गलती नहीं है ?'

प्रोफेसर साहब का दिमाग़ इस समय उचित और अनुचित की बहस के लिए तैयार न था। वे कई दिन से अखबारों में आनेवाली खबरों से परेशान थे। ऐसा मालूम होता था जैसे मामला गाँधीजी का न होकर खुद उन्हीं का हो। वनमाला के इस प्रश्न पर झुंझलाकर बोले, "जी नहीं, सारी गलती गांधीजी की ही है। सरकार बेचारी तो दूध की धोयी है ."

वनमाला मुसकराकर कहने लगी, "मैंने यह कब कहा···।"

"आपने कहा चाहे जो कुछ हो, मतलब सिर्फ़ यही हो सकता है। और क्यों न हो। सरकारी रोटियाँ अपना असर दिखाये बग़ैर थोड़े ही रहती हैं। लेकिन वफ़ादार सरकारी नौकरों का राजनीतिक विषयों में बोलना भी अपनी सीमा पर कट जाना है," प्रो० वर्मा एक के बाद एक करके यह ज़हर में बुझे वाक्य छोड़ते ही चले गये।

वनमाला के सीने में जैसे किसी ने जोर का घूमा मार दिया हो। उसने ताज्जुब से आँखें उठाकर प्रोफेसर साहब की ओर देखा। चलती कार में उन्होंने अपने तरफ़ की खिड़की में से मुँह निकाल लिया था। वनमाला की आँखों में आँसू छल छला आये, पाँच वर्षों के विवाहित जीवन में प्रोफेसर साहब ने कभी इतनी कड़ी बात न कही थी। आज इन्हें आखिर हो क्या गया ? बड़ी कठिनाई से वह आँखों में उमड़ते हुए आँसू पी गयी। रास्ते भर खामोशी रही।

कहने को तो प्रोफेसर साहब ने यह कह दिया लेकिन अब उनके हृदय में फिर अपनी प्रवृत्ति के विपरीत पश्चात्ताप उमड़ने लगा था। उन्होंने रास्ते में दो एक बार उड़ती नज़रों से अपनी पत्नी की ओर देखा जो इस समय किसी गहरे सोच में डूबी हुई मालूम होती थी लेकिन कुछ बोले नहीं। उनके गम्भीर हृदय-सागर में जोरों से तूफ़ान उठा था। पर्वताकार लहरों की भाँति भावनाएँ हहर-हहर कर एक दूसरे से टकरा रही थीं और मस्तिष्क कोई भी स्पष्ट मार्ग ढूँढने में असमर्थ था। वे चाहते थे कि अपने कड़वे शब्दों के लिए वनमाला से क्षमा याचना कर लें लेकिन जैसे कोई बरबस उन्हें ऐसा करने से रोक रहा था।

घर पहुँचकर भी खामोशी रही। पती-पत्नी के अस्वाभाविक मौन को देखकर नौकर भी दंग थे। आखिरकार चाय के समय प्रोफेसर वर्मा ने मौन भंग किया। वे बोले, "वनमाला! मैंने आपे से बाहर होकर तुम्हें बहुत कड़ी बात कह दी। मुझे माफ़ करना। दरअस्ल मेरा मतलब यह कभी नहीं था।"

बादल छटने के पहले एक बार ज़ोर की झड़ी लग गयी। वनमाला के आँसू अब न रुक सके। उसने बड़ी कातर दृष्टि से पति की ओर देखा। वे भी दुखी थे!

दो मिनट बाद वनमाला सँभलकर बोली, "नहीं आपको माफ़ी मांगने की जरूरत नहीं है। भूल मेरी ही थी। मैंने आपकी भावनाओं का ख्याल नहीं किया, उसकी ठीक ही सजा मिली।"

प्रोफेसर साहब ने कहा, "दरअसल मैं बड़ा उद्विग्न हो गया हूँ। मेरी खुद-समझ में नहीं आता कि इतनी परेशानी आखिर किस लिए? बुद्धि कहती है कि महात्मा जी के अनशन की ज़िम्मेदारी केवल उन्हीं पर है। वे खुद भी यह कहते हैं। यहाँ तक कि उन्होंने इसका कोई राजनीतिक उद्देश्य भी नहीं रखा है। लेकिन हृदय कहता है कि इसकी ज़िम्मेदारी केवल सरकार पर ही नहीं बल्कि सभी लोगों पर है। इस अनशन में महात्मा जी मर गये तो बृटिश सरकार का तो कुछ नहीं, उसे एक न एक दिन बोरिया बिस्तर समेटकर यहाँ से जाना ही है। लेकिन भारतवासियों के मुँह पर हमेशा के लिए कालिख पुत जायगी। हम लोग कहीं मुँह दिखाने लायक न रहेंगे।"

"यह बात मेरी समझ में नहीं आयी। ज़रा और साफ़ कीजिए।"

"मेरा मतलब यह है कि महात्मा गांधी ने अपना अनशन इसलिए किया है कि सरकार ही का नहीं भारतवासियों का भी हृदय-परिवर्तन हो। उन्हें अपना शरीर तभी घुलाना पड़ता है जब हमलोग उनकी अहिंसा को पूरे तौर पर हृदयंगम नहीं कर पाते। अगर जैसा वे चाहते हैं, प्रत्येक भारतीय एक सत्याग्रही बन जाय तो गुलामी एक दिन भी नहीं टिक सकती। जब यह नहीं हो पाता है तभी उन्हें अपने शरीर को स्वतन्त्रता के महायज्ञ में झोंककर ज्वालाएँ ऊँची करनी पड़ती हैं। पिछले छः महीने में क्या हुआ? करोड़ों देशवासी ज्यों के त्यों रहे और सरकार के पाशविक दमन का नंगा नाच चलता रहा। हम लोगों के सोये हुए

हृदय को जगाने के लिए ही उन्होंने अपनी जान की बाजी लगायी है। अगर हमारे हृदयों को वे आशातीत रूप से जगा सके तो वे नहीं मरेंगे। यदि वे मर गये तो इसका मतलब यह होगा कि हम इंसान नहीं पत्थर हैं।"

"जागृति तो हो ही गयी है। अब वे अनशन छोड़ क्यों नहीं देते।"

प्रोफेसर साहब हँसे, "महात्मा जी ऊपरी जागृति में नहीं हृदय की जागृति में विश्वास रखते हैं। हृदय की जागृति यदि हो जाती तो सरकार को झुकना ही पड़ता। वाइसराय इतने इत्मीनान से बैठे ही नहीं रह सकते थे।"

वनमाला को कुछ देर पहले की बात शायद भूल गयी थी। वह जमकर बहस करने लगी, "लेकिन जनता की जागृति द्वारा सरकार का हृदय परिवर्तन होने के कुछ उपकरण तो होंगे? जो उपकरण जनता प्रयोग कर रही है वे यदि उसकी जागृति के द्योतक नहीं हैं तो वास्तविक जागृति के उपकरण कौन से होंगे जिनसे पता चले कि जनता का हृदय परिवर्तन हो गया है। यह तो आप मानेंगे ही कि जनता के हृदय परिवर्तन और सरकार के हृदय परिवर्तन में कुछ समय का अंतर तो होगा ही। जनता का हृदय परिवर्तन कारण होगा और सरकार का हृदय परिवर्तन कार्य। कारण और कार्य के बीच समय का थोड़ा या बहुत अंतर तो होता ही है।"

चाय का प्याला सामने से हटाकर सिगरेट जलाते हुए प्रोफेसर साहब बोले, "कारण और कार्य, पूर्व और पश्चात यह तो सापेक्षिक शब्द हैं। शाश्वत सत्य इनसे कुछ अलग भी हो सकता है। महात्मा जी ने हमें शाश्वत सत्य को ही पहचानने की शिक्षा दी है। कारण कार्य आदि की उलझनों में पड़ना उनकी दृष्टि से ठीक नहीं है।"

"उलझन तो आप ही पैदा कर रहे हैं," वनमाला मुसकराकर बोली, "कारण और कार्य या सापेक्षता को तिलांजलि देना बुद्धि को भी तिलांजलि देना है। फिर आदमी के पास और रहेगा क्या?"

प्रोफेसर साहब भी शायद फुरसत से थे। वे कुरसी पर फैलकर मुसकराते हुए बोले, "सत्य के दर्शन कभी-कभी ऐसी जगह पर भी होते हैं जहाँ बुद्धि की भी पहुँच नहीं है। तुम बुद्धि को ही सर्वोपरि क्यों मानती हो? मानव के पास

क्या बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है? क्या वह केवल बुद्धिमान यन्त्र है?"

वनमाला ने हैरान होकर प्रोफेसर साहब की ओर देखा और बोली, "कैसी बातें आप करते हैं। यदि सुव्यवस्थित ढंग से काम करना यन्त्र होने की दलील है तो मैं तो यन्त्र होने में भी कोई बुराई नहीं समझती, बशर्ते कि वह यन्त्र स्वयं चालित हो। हम लोग मूल विषय से हट जरूर गये हैं लेकिन इसी बात को पहले साफ कर लिया जाय। अगर बुद्धि और व्यवस्था से ऊपर जाने पर ही सत्य के दर्शन हो सकते हैं तो फिर आपके सारे विज्ञान, विशेषतः आपका अर्थशास्त्र बिल्कुल निकम्मा ठहरेगा। क्या आप यही 'पोज़ीशन' लेना चाहते हैं?"

"बिल्कुल निकम्मा तो नहीं है। इसकी भी उपयोगिता है लेकिन एक सीमा तक ही। उसके बाद विज्ञान के बंधन भी काटने पड़ते हैं और जीवन को एक नयी दिशा में मोड़ देना पड़ता है, एक नया पथ प्रदर्शक खोजना पड़ता है।"

"नया पथ प्रदर्शक कौन है? गांधी जी?" वनमाला हँसकर बोली।

"हंसने की बात नहीं है," प्रो० वर्मा गंभीर होकर बोले, वास्तव में एक स्थिति ऐसी आती है जब हमें एक पथ-प्रदर्शक खोजना पड़ता है। ऐसा पथ-प्रदर्शक जो अपनी शक्ति से हम पर छा जाय, जिसके इंगित पर हम बगैर ना-नूँ किए चल पड़ें। मेरे मामले में महात्मा गांधी का व्यक्तित्व यह पथ-प्रदर्शन करता है। अन्य लोगों के लिए अन्य पथ-प्रदर्शक हो सकते हैं। किसी के लिए ईसा, किसी के लिए नानक, किसी के लिए मुहम्मद, किसी के लिए मार्क्स, लेकिन जरूरत सभी को पड़ती है।"

"और खुद गाँधी जी के पथ-प्रदर्शक कौन हैं," वनमाला व्यङ्ग से मुसकरा कर बोली।

"मुझे ठीक नहीं मालूम। वे अपना सहारा राम को बताते हैं। वे झूठ नहीं बोलते। उनके पथ-प्रदर्शक राम ही होंगे।"

"तो आप भी क्यों नहीं राम को ही अपना सहारा बनाते। वे यकीनन गांधी जी से तो अधिक शक्ति-शाली होंगे।"

"हो सकते हैं। लेकिन मैं उनकी शक्ति से प्रभावित नहीं हो सका......"

"यानी वे गांधी जी से कम शक्ति-शाली हैं। गांधी जी यदि अपने से कम

शक्तिशाली का सहारा पकड़ते हैं तो बुद्धिहीनता का काम करते हैं और ऐसी स्थिति में गांधी जी के भक्तों, यानी आपलोगों को क्या कहा जाय ?"

"जो चाहो कहलो। लेकिन तुम तर्क से सत्य को नहीं झुठला सकतीं।"

"आप लोगों ने निकल भागने का यह बड़ा सुन्दर रास्ता ढूँढ़ निकाला है। जब-तक तर्क से आप की बात ठीक हो तब-तक तर्क ठीक, नहीं तो तर्क को धता बता दिया। लेकिन यह तो बताइए कि आप गांधीवादी कब से हो गये। आप तो पहले जबर्दस्त बुद्धिवादी थे। शायद नास्तिक भी थे। यह कंठी कब से पहन ली ?" वनमाला हँसते हुए बोली।

प्रोफेसर साहब मुस्कुरा कर कहने लगे, "नास्तिक तो मैं अब भी हूँ। हाँ बुद्धि और तर्क की सीमितता को जरूर मानने लगा हूँ।"

"ईश्वर पर अखंड विश्वास रखनेवाले गांधी जी के अनुयायी नास्तिक ! यह गोरखधंधा तो आप लोगों की ही समझ में आ सकता है। अच्छा एक बात और पूछूँ ?"

"जरूर पूछो। लेकिन क्या सारी बातें आज ही पूछ डालोगी ?" प्रो० वर्मा हँसकर बोले।

"सिर्फ एक बात। आपने कहा है कि एक सीमा तक विज्ञान और बुद्धि के बंधन भी आवश्यक हैं। सत्य के दर्शन बुद्धि के एक ऊँचे धरातल पर पहुँचने के बाद बुद्धि के बंधनों को काटने पर होते हैं। शायद आप यह भी मानेंगे कि गांधी जी जो हृदय-परिवर्तन चाहते हैं, वह सत्य के दर्शन के बाद ही उपलब्ध होगा। मैं गलत तो नहीं कह रही हूँ ? गलत कह रही हूँ तो बता दीजिएगा।"

"नहीं। बिल्कुल ठीक है," प्रोफेसर साहब ने कहा।

"तो फिर यह तीन सप्ताह के अनशन द्वारा करोड़ों अशिक्षित रूढ़िवादी, अंधविश्वासी लोगों का पलक मारते हृदय-परिवर्तन की क्या ज़रूरत पड़ गयी। पहले उन्हें बुद्धि के स्तर पर तो पहुँच जाने दीजिए। पहले भौतिक ज्ञान-विज्ञान को तो अपना काम पूरा कर लेने दीजिए।"

प्रो० वर्मा चौंक पड़े। उनकी मान्यताओं पर यह प्रहार इतना आकस्मिक था कि वे मुँह फाड़कर पत्नी की ओर देखने लगे।

वनमाला मुस्कुराते हुए बोली, "अरे इसमें परेशानी की क्या बात है। कह

दीजिए कि यह तर्क का विषय नहीं है। गांधी जी जो कुछ करते हैं, ठीक करते हैं। जहाँ विश्वास का सवाल है वहाँ तर्क कैसा ?"

लेकिन प्रोफेसर साहब गहरे सोच में पड़ गये। उन्होंने धीरे-धीरे जेब में हाथ डाला, धीरे-धीरे सिग्रेट की डिब्बी निकाली और धीरे-धीरे दूसरा सिग्रेट निकालकर जलाया और गहरे कश खींच-खींच कर धीरे-धीरे धुआँ निकालने लगे। आधा सिग्रेट खत्म होने तक वे 'टी पाट' की ओर देखते रहे। फिर उन्होंने मुसकराकर वनमाला की ओर देखा और बोले, "तुमने आखिर में मुझे गहरी मात दी है। लेकिन मैं इस बारे में सोचने के लिए समय लूँगा।"

"लेकिन अभी नहीं," वनमाला चहककर बोली, "इस वक्त उठिए। आज 'बोटिंग' करने की तबियत है। चलिए कपड़े पहनिए।"

"अच्छा भाई जैसा चाहो," प्रोफेसर साहब ने मुसकराकर कहा, "तुम्हारी तबियत को रोकने की किसमें ताकत है।"

वनमाला हँसते हुए उठी, लेकिन उसे अचानक चक्कर आया और वह बैठ गयी; पर उसका जी ठीक न हुआ। प्रोफेसर वर्मा अंदर कपड़े बदल रहे थे कि गुसलखाने से अजीब सी आवाजें आनी शुरू हुईं। वे लपककर गुसलखाने की तरफ भागे। नौकर-चाकर भी दौड़कर आ गये। देखा वनमाला बेहाल होकर कै कर रही है। इसी वक्त की चाय के समय खाया गया सारा नाश्ता जैसे का तैसा उलट पड़ा है। वनमाला को फौरन पलंग पर लिटाया गया। डाक्टर को टेलीफोन किया गया। दस मिनट के बाद डाक्टर आ गये तब तक वनमाला को एक बार और कै हुई। वह एकदम निढाल हो गयी।

डाक्टर की कार का दरवाज़ा खुलने के पहले ही प्रोफेसर वर्मा झपटकर गये और उन्हें जल्दी-जल्दी अंदर लाये। रास्ते में बताया कि मीटिंग के बाद से अब तक बहस होती रही है। एक बार बीच में एक मामूली सी बात पर झड़प हो गयी थी। शायद चाय भी आज ज़्यादा 'स्ट्रांग' थी। मालूम नहीं 'नर्वस स्ट्रेन' का असर है या क्या, लेकिन बिल्कुल निढाल हो गयी हैं। मैं तो एकदम घबरा गया हूँ।

डाक्टर भी कम घबराये नहीं थे। डाक्टर लोग जबतक खुद मरीज़ को नहीं देख लेते उन्हें तीमारदार के रोग निदान पर विश्वास नहीं होता। यही नहीं, वे

शायद अचेतनरूप से तीमारदार में साधारण बुद्धि का भी अभाव समझने लगते हैं और तीमारदार के बताये हुए लक्षणों को अनसुना करके अपनी अटकल पर ही विश्वास रखते हैं। इन डाक्टर साहब के दिमाग़ में इस समय था 'कालरा'। फरवरी के महीने में हैजा फैलते सुना नहीं गया। फिर भी चिकित्सा-शास्त्र इसे असंभव तो नहीं बताता। डाक्टर साहब हैजे के 'इंजेक्शन' का सामान ले आये थे और इस समय यही सोच रहे थे कि जाते ही सबसे पहले इंजेक्शन दे दूँगा।

अंदर पलंग पर वनमाला आँखें बंद किए पड़ी थी। गुलाबी गाल बिल्कुल सफेद पड़ गये थे। डाक्टर ने टेम्परेचर लिया, नाड़ी देखी, आँखों की पलकें पलटकर देखीं। उनके चेहरे पर परेशानी सी दिखायी देने लगी।

कुछ देर के बाद उन्होंने झुककर वनमाला से धीरे से कुछ पूछा। उसने आँखें बंद किये हुए ही कुछ होंठ हिलाया। अब डाक्टर ने सीधे खड़े होकर प्रो० वर्मा से मुसकराकरकहा, "I congratulate you, Sir, on the illness of your wife. (मैं आपकी पत्नी की बीमारी पर आपको बधाई देता हूँ।)"

यथासमय वनमाला को एक पुत्री हुई। नाम रखा गया मधु।

---

६. यमुना

शरद ऋतु की एक सुहानी शाम थी। गोमती के किनारेवाली सड़क पर वर्मा परिवार चहलकदमी कर रहा था। प्रोफेसर साहब नन्हीं मधु की पराम्बुलेटर गाड़ी चला रहे थे। महायुद्ध समाप्त हुए तीन महीने हो गये थे। पति-पत्नी में देश-विदेश की राजनीतिक स्थिति की बातचीत चल रही थी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज इस समय सारे देश की चर्चा का विषय बनी हुई थी। आजाद हिंद फौज के तीन खास नेताओं–जनरल शाहनवाज, जनरल प्रेम सहगल और जनरल गुरबख्श सिंह ढिल्लों पर लाल किले में मुकदमा चल रहा था। दोनों पति-पत्नी इसी विषय पर आलोचना करते काफी दूर निकल गये।

अँधेरा बढ़ने लगा तो वापस लौटे। वार्ता का विषय अभी तक वही था। वनमाला कह रही थी, "इन लोगों को सरकार गोली मारे बगैर नहीं छोड़ेगी। कम से कम यह फायदा तो इससे होगा ही कि जनता एक बार फिर उभड़ेगी। इस लिहाज़ से तो इनका मारा जाना ही ठीक है।"

वर्मा साहब ने कहा, "तुम्हारे हृदय में कोमल भावनाओं का कोई स्थान नहीं दिखायी देता। तुम स्त्री न होतीं तो अधिक उचित होता।"

हँसते हुए वनमाला ने कहा, "स्त्री होना कोई........।"

इतने में ही नौकर ने आकर एक तार का लिफाफा दिया। कहा कि जब आप लोग घूमने गये थे तो तार का चपरासी यह दे गया था।

वनमाला ने इत्मिनान से तार खोला। उद्विग्न होने की उसकी आदत ही न थी। लेकिन तार की टाइप की हुई पट्टी पर नज़र डालते ही वह लगभग चिल्ला उठी, "आँय"। उसके काँपते हाथों से तार गिर पड़ा और आँखें फटी रह गयीं।

प्रो० वर्मा ने झपटकर तार उठाया। टाइप की हुई पंक्ति चमक रही थी,

"'Aunt died this morning—Pulin (चाची आज सुबह मर गयीं —पुलिन)।"

वनमाला की माँ श्रीमती भट्टाचार्य वनमाला के विवाह के पश्चात अपने देवर के लड़के पुलिन के पास बनारस में रहने लगीं थीं। इन सात वर्षों में माता और पुत्री के बीच पत्र-व्यवहार तक न हुआ था। केवल एक पत्र श्रीमती भट्टाचार्य ने अपनी पुत्री के पास डाला था। बनारस जाने के दूसरे महीने जब उन्हें वनमाला का भेजा हुआ ५०) का मनीआर्डर मिला था तो उन्होंने उसे वापस कर दिया था और उसके बाद एक पत्र लिखा था कि तुमने अपनी बूढ़ी माँ पर जो दया दिखायी है उसके लिए धन्यवाद लेकिन तुम्हारे बाप मेरे लिए इतना छोड़ गये हैं कि तुम्हें पढ़ाने लिखाने और ठिकाने से लगाने के बाद भी मेरे पास अपनी आयु बिताने के लिए काफी पैसा है। इसका उत्तर वनमाला ने भी कुछ न दिया और न श्रीमती भट्टाचार्य ने ही इसके बाद कोई पत्र भेजा। प्रोफेसर साहब को अपनी सास का ख्याल भी आया करता था, लेकिन जब भी वह वनमाला से उनके बारे में कुछ कहते तो वह कभी चुप हो जाती, कभी हँस कर टाल देती। शनैः शनैः दोनों ही उन्हें भूल-से गये थे।

तार पढ़कर स्तंभित तो प्रोफेसर साहब भी हो गये, लेकिन वनमाला तो बहुत ही विह्वल हो उठी। वह बच्चों की तरह रोने लगी। माँ के मरने पर लड़कियों की विह्वलता तो अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन वनमाला के चेहरे पर विकलता और आँसू कुछ ऐसे अजीब से मालूम हुए कि प्रो० वर्मा की सहज सहानुभूति भी कौतूहल में परिणत हो गयी। उन्होंने कहा, "वनमाला! यह क्या हो रहा है? तुम तो ऐसी कमजोरी पहले कभी नहीं दिखाती थीं। तुम्हारी माँ काफी उम्र पाकर मरी हैं और तार से मालूम होता है कि उनकी मृत्यु भी शान्ति से हुई है। इसमें अफ़सोस करने की क्या बात है?"

वनमाला उठी। गुसलखाने में जाकर उसने मुँह धोया और फिर आकर बैठ गयी। लेकिन उसके चेहरे की रंगत अब भी उड़ी हुई थी और होंठ रह-रह कर काँप रहे थे। प्रोफेसर साहब ने फिर कहा, "भाई जिंदगी की ज़रूरी शर्त मौत है। फिर मौत के लिए रंज कैसा?"

"मुझे उनके मरने पर रंज नहीं है। दुख तो सिर्फ यह है कि उन्होंने अपने अंत समय तक मेरे बारे में कैसी कटु भावना रखी होगी।"

प्रो० वर्मा ने कहा, "यह और अजीब बात है। क्या तुमने खुद ही बराबर यह नहीं कहा कि उनका विचार ही गलत नहीं हैं बल्कि उन्हें कुछ समझाने की कोशिश करना भी गलत है। वे किसी की बात सुनने को भी तय्यार नहीं थीं।"

"यह सब तो ठीक ही है, वनमाला ठंडी साँस भरकर बोली, "लेकिन फिर भी मैंने उन्हें बड़ी ठेस पहुँचायी है। उनकी बात सरासर गलत थी, उनकी ज़िद भी ज़बर्दस्त थी, लेकिन मुझे उनका दिल नहीं दुखाना चाहिए था। वे आखिरकार मेरी माँ थीं। शादी के बाद भी अगर मैं उनके पास जाकर उनका दिल रखने को ही अपनी गलती मान लेती तो भी कोई हर्ज न होता। उनका दिल खुश हो जाता और वे हम दोनों को हृदय से आशीर्वाद देतीं। वे दिल से पुराणपंथी नहीं थीं। मेरी ऐंठ ने ही मुझे उनसे न मिलने दिया। अब सिवा हाथ मलने के और क्या हो सकता है।"

प्रो० वर्मा चुप रह गये। उन्होंने श्रीमती भट्टाचार्य के जीवनकाल में ही कई बार यही बात कह कर वनमाला को समझाना चाहा था, लेकिन वनमाला न मानी थी। आज वनमाला भी यह भूल गयी थी कि प्रोफेसर साहब यही सब कुछ उससे पहले ही कह चुके हैं। प्रोफेसर साहब ने भी इस बात की याद दिलाने में कोई लाभ न देखा। कमरे में खामोशी रही।

दूसरे दिन वनमाला बनारस चली गयी और तीसरे दिन वापस भी आ गयी।

माँ के मरने के बाद उसके स्वभाव में विशेष परिवर्तन हो गया। अभी तक वह पौने दो वर्ष की मधु के लालन-पालन में कठोर वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करती, लेकिन अब यह बात खत्म हो गयी। खाने का समय हुआ हो या न हुआ हो, रोने पर मधु को बिस्कुट जरूर मिल जाते। अब वनमाला वैज्ञानिक नियम के विपरीत उसका खूब लाड़ करती थी और उसे खूब चूमती थी। मधु की शरारतें अब अपनी सीमा को पार करने लगी थीं।

अब उससे किसी का कष्ट नहीं देखा जाता था। फ़कीर जो पहले दूर से ही भगा दिये जाते थे अब उसके दरवाज़े से खूब भीख पाने लगे और खूब भीड़

लगाने लगे। वह घोड़े की पीठ छिली देखती तो ताँगेवाले को कस कर फटकारती। रसोईंदारिन के सिर में दर्द होता तो उसे जबरदस्ती छुट्टी देकर वह दाल-भात से उलझ पड़ती।

हद तो तब हो गयी जब कि तीन महीने बाद उसे नौकरी से इस्तीफ़ा देना पड़ा। बात यह हुई कि एक क्लर्क ने एक नियुक्ति के मामले में रुपया लेकर बेईमानी कर दी थी। एक रिक्त स्थान पर उसने इंस्पेक्ट्रेस के जाली दस्तखत बनाकर एक नियुक्ति करवा दी। उसी स्थान पर एक योग्य पात्र को रखने का वादा वनमाला ने कर लिया। ऐन मौके पर जब भेद खुला तो क्लर्क आकर उसके पैरों पर गिर पड़ा कि नौकरी छूटी तो मेरे छोटे-छोटे बच्चे भूखों मर जायेंगे। छः महीने पहले वनमाला उसे ठोकर मार देती, लेकिन इस समय उसने क्लर्क को क्षमा कर दिया। फिर भी इस अव्यवस्था और उसे रोकने में अपनी आंतरिक असमर्थता से उसे अत्यन्त दुःख हुआ और अन्त में प्रोफेसर साहब की सलाह से उसने इस्तीफ़ा ही दे दिया। अधिकारीगण उस पर इस्तीफ़ा वापस लेने के लिए जोर डालते रहे लेकिन वह न मानी। अब वह सारा समय अपनी गृहस्थी और मधु के लालन-पालन में ही देने लगी।

नौकरी से इस्तीफ़ा देने के पन्द्रह रोज़ बाद की बात है। दोपहर का समय था। प्रोफेसर साहब यूनिवर्सिटी गये थे और वनमाला बरामदे में आराम कुर्सी पर लेटी मधु से बातें कर रही थी। इसी समय डाकिये ने आकर सलाम किया और एक फूलदार लिफ़ाफ़ा वनमाला को दे दिया। यह प्रोफेसर साहब के फुफेरे भाई के विवाह का निमन्त्रण था। निमन्त्रण आगरे से आया था। विवाह दस रोज़ बाद ही होनेवाला था।

यूनिवर्सिटी से प्रो० वर्मा के लौटते ही वनमाला ने खुशी-खुशी उन्हें निमंत्रण दिया। उन्होंने एक नज़र से देखकर उसे रद्दी की टोकरी में फेंक दिया। वनमाला बोली, "क्यों? इस शादी में न चलोगे क्या?"

प्रोफेसर साहब चौंके। न केवल वनमाला की कौटुम्बिक समारोहों के प्रति दिलचस्पी बल्कि उसका आत्मीयतापूर्ण सम्बोधन भी नयी चीज़ थी। प्रोफेसर साहब बोले, "इन बातों से दूर ही रहना अच्छा है।"

"क्यों? चलो न। तुम्हारे रिश्तेदारों से भी मिल आयें।"

प्रोफेसर साहब ने ताज्जुब से उसे देखकर कहा, "आखिर तुम क्यों ज़ोर दे रही हो। निमन्त्रण भेजकर उन्होंने तो सिर्फ रस्म पूरी की है। बुलाना कौन चाहता है।"

अंतर्जातीय विवाह के कारण प्रोफेसर साहब के रिश्तेदार उनसे खिंचे-खिंचे से रहते थे। वे स्वयं ही रिश्तेदारों के पास न फटकते थे। इसी से उनका जीवन शांतिपूर्ण था। इस समय प्रोफेसर साहब ने इसी ओर इशारा किया था।

लेकिन वनमाला पीछे पड़ गयी। अब मेरी तबियत नहीं लगती है। कुछ दिनों के लिए 'चेंज' हो जायगा। वहाँ जायँगे तो कोई भगा थोड़े ही देगा। लोगों को जो कहना होगा आपस ही में तो कहेंगे। और फिर बात पुरानी हो हो गयी है। अब कौन उसे 'फ़ील' करेगा। जाने का असर अच्छा ही पड़ेगा। मैं तो ज़रूर जाऊँगी।

स्त्री हठ के आगे भगवान आशुतोष को भी हार माननी पड़ी थी। बेचारे प्रोफेसर जितेन्द्र किस गिनती में थे। छटें दिन यूनीवर्सिटी से एक हफ्ते की छुट्टी लेकर वे सपरिवार आगरे की ओर चल पड़े। वनमाला बहुत खुश थी। मधु के लिए भी रेलगाड़ी का सफ़र नया था। इसलिए उसे भी खूब उत्साह था। वह अपनी तोतली भाषा में हर चीज़ का नाम पूछ रही थी। सिर्फ़ प्रोफेसर साहब अनमने से नेशनल हेराल्ड का बीस बार का पढ़ा हुआ समाचार पढ़ रहे थे।

आगरेवालों के लिए भी इन लोगों का आगमन अप्रत्याशित था। विवाह का घर रिश्तेदारों से ऊपर से नीचे तक भरा पड़ा था। प्रोफेसर साहब के आने की खबर फौरन फैल गयी। प्रो० वर्मा के फूफा मुंशी कन्हैयालाल को तो पहले विश्वास ही नहीं हुआ। प्रोफेसर साबह बड़े आदमी हैं। वे हम गरीबों के घर क्यों आने लगें। लेकिन जब छोटे लड़के जगदीश ने कहा कि सचमुच वे ही हैं, तो बुढ़ऊ हाँफते हुए दौड़े चले आये और प्रोफेसर साहब को गले लगा लिया। आँसू बहाते, नाक छिनकते, भर्राये गले से बोले,—"भय्या तुम तो हम सभी को भूल गये। ऐसा क्या कसूर किया था हमलोगों ने।" प्रोफेसर साहब ने किसी प्रकार उनसे गला छुड़ाया। लड़कों ने सामान अन्दर रखा।

शादी के घर में कोई किसी का पुरसाँहाल नहीं होता है। जहाँ जिसके सींग समाये वहीं घुस रहा। तकल्लुफ भी खत्म हो जाता है। हर काम दूसरे पर डालने और खुद बैठकर गप लड़ाने की कोशिश की जाती है। किसी को किसी की खातिर-तवाजे की फ़ुरसत नहीं रहती। आवाज़ ऊँची है तो चीख चिल्लाकर जो चीज़ चाहो माँग लो, लेकिन शराफ़त और तकल्लुफ किया तो भूखे बैठे रहो।

लेकिन प्रोफेसर साहब और उनके परिवार के लिए यह सार्वभौमिक नियम बदल गया। बड़े आदमी हैं, तकलीफ़ न होने पाये, इसलिए अलग कमरा दिया गया और मुंशी कन्हैयालाल खुद दौड़-दौड़कर देखते कि किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है। अपने घर की बनिस्बत प्रोफेसर साहब को इस पर भी काफ़ी तकलीफ थी, लेकिन जब वे देखते कि उनकी आँखों के सामने ही दूसरे लोगों को उनसे कितनी ज्यादा तकलीफ है तो उन्हें अपने पर शर्म आने लगती।

वनमाला और भी अधिक आकर्षण का केन्द्र थी। बंगालिन होने के कारण उससे चौके वगैरह का कोई काम कराया तो जा ही नहीं सकता था और कुछ बूढ़ियाँ अलग उसके बारे में खुसर-पुसर करती ही रहतीं, लेकिन आमतौर पर सभी दूसरी औरतें उससे बहुत अच्छा व्यवहार करतीं। इसके कई कारण थे। एक तो यह कि इतने बड़े घर की मालकिन होकर भी उसमें घमंड छू नहीं गया था, गरीब से गरीब रिश्तेदारों से भी खूब घुलती मिलती थी। दूसरे उसका अद्वितीय सौंदर्य, जिसकी ओर भी आँख उठाकर देखे वह चकाचौंध हो जाय। तीसरे, उसकी योग्यता के कारण भी स्त्रियाँ, विशेषतः नयी पीढ़ी की युवतियाँ आकृष्ट थीं। फिर सबसे बड़ी बात यह थी कि चढ़ावे के मामले में वह सबसे बाज़ी मार ले गयी थी।

वनमाला के लिए निम्न मध्य वर्ग के परम्परावादी परिवारों के किसी समारोह में जाने का यह पहला मौका था। इसलिए वह हर चीज़ को हर एक रस्म को बड़ी दिलचस्पी से और ध्यानपूर्वक देख रही थी। यह निरीक्षण किसी मानव समाजशास्त्र के छात्र का सा तटस्थ निरीक्षण नहीं था, बल्कि वह अपने को इस समारोह का एक अंग समझते हुए रुचि से अपना कार्य पूरा करने की चेष्टा कर रही थी। एक से एक बढ़कर बुद्धिहीनतापूर्ण उपहासास्पद रस्में

होती थीं। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ उनपर चोटें करके हँसती थीं, लेकिन वनमाला सब में बड़े शौक़ से शरीक होती थी, यहाँ तक कि बड़ी बूढ़ियाँ भी रस्मों का मजाक उड़ानेवाली लड़कियों को डाँटने लगी, "दो अक्षर अँगरेजी के क्या पढ़ लिए दिमाग़ ही नहीं मिलते। देखो प्रोफेसर साहब की बीबी भी तो हैं। तुम लोगों को दस साल पढ़ा सकती हैं। उन्होंने कभी मुँह बिचकाया है?" और लड़कियों को इस तर्क पर निरुत्तर हो ही जाना पड़ता।

वनमाला यों तो सभी के साथ हँसती बोलती, लेकिन विशेष रूप से उसे एक लड़की ने बहुत आकृष्ट किया। यह मुंशी कन्हैयालाल के चचेरे भाई की लड़की यमुना थी। उसके बाप पाँच-छः साल पहले मर गये थे। दो मकान और कुछ रुपया बैंक में छोड़ गये। माँ ने उसी रुपये के बल पर दो वर्ष पूर्व किसी तरह लस्टम पस्टम उसका विवाह भी कर दिया। लेकिन दुर्भाग्य कहीं भी साथ नहीं छोड़ता। शादी के सालभर बाद ही पति हैजे में चल बसे और उसके छः महीने बाद ससुर। बेचारी की ससुराल में भी कोई नहीं रहा। अब दोनों माँ-बेटियाँ मुज़फ्फरनगर में उन्हीं दो मकानों के किराये के बल पर जिंदगी काट रही थीं।

वनमाला को उसे देखकर बड़ी दया आती। बीस वर्ष की अवस्था, भरा-भरा बदन, साँवला रंग, नाक नक़शा अच्छा, हमेशा नीची नज़र करके बातें करना, किसी काम में आलस नहीं। विधवा होने के कारण सभी उससे कटी-कटी सी रहती थीं लेकिन उसे जैसे किसी से कोई शिकायत ही न हो। बातें करती तो जैसे फूल झड़ते। किसी बात पर गुस्सा नहीं। अपढ़ भी नहीं थी, शादी के ही साल हाई स्कूल का इम्तहान दिया था। वनमाला जब भी उसकी ओर देखती उसका हृदय करुणा से भर आता। वह उस पर विशेष रूप से दयालु रहती।

एक दिन वनमाला ने उससे कह ही दिया, "यमुना! तुम इस तरह से जिंदगी कब तक काटोगी? माँ की आँखे बंद हो जाने पर क्या करोगी? तुमने तो घर से कदम भी बाहर नहीं निकाला है। कहाँ जाओगी।"

यमुना ने आह दबाकर आँसू रोकते हुए कहा, 'जहाँ भगवान ले जायें।'

"भगवान् को छोड़ो। वे खुद आकर तुम्हारी उँगली नहीं पकड़ेंगे।

मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें पढ़ा-लिखा दूँगी। फिर नौकरी कर लेना। माँ को भी बुला लेना।"

यमुना का हृदय इस अप्रत्याशित सहायता से उमड़ने सा लगा। लेकिन उसने निराश स्वर में कहा, "अम्माँ कभी न भेजेंगी।"

वनमाला कोई काम शुरू करके उसे अधूरा छोड़ना न जानती थी। उसने यमुना की माँ को भी घेरा। माँ का दिल तो न चाहता था कि लड़की को इस बंगालिन के साथ लखनऊ भेजे, न मालूम मेरी आँखों की ओट इसका पैर कैसा ऊँचा-नीचा पड़ जाय। लेकिन गरीबी की मार बुरी होती है। मकानों का किराया दो पेटों के भरने को काफी नहीं था। वनमाला की यह दलील भी काम कर गयी कि तुम्हारे पीछे यह क्या करेगी? इस तरह अपने पैरों तो खड़ी हो जायगी। यमुना की माँ यमुना को वनमाला के साथ भेजने के लिए राजी हो गयी।

लेकिन प्रोफेसर साहब को राजी करना आसान न था। उन्होंने यह प्रस्ताव सुनकर टेढ़ी नजरों से देखते हुए कहा, "तुम्हें नौकरी छोड़ने के बाद से क्या हो गया है? इस पचड़े में जबर्दस्ती खींच लायीं। अब यहाँ से खट-खटा भी लगा ले चलोगी।"

वनमाला ने हँसकर कहा, "मैं उसे जरूर ले चलूँगी।"

प्रोफेसर साहब ने समझाया, "देखो यह बच्चों का खेल नहीं है। यह लोग हमारी तुम्हारी तरह नहीं सोचते। तुम इसे पढ़ाने को भी कहती हो। किसी से प्रेम-प्रेम हो गया तो यही सब लोग मुझे नोचकर खा जायेंगे। समझती हो?"

"सब समझती हूँ। कोई कुछ नहीं कह सकेगा। इस समय उसकी मदद करने के लिए कोई नहीं है। बाद में अगर किसी ने इसके लिए कुछ कहा तो मेरी चप्पल उसके लिए तय्यार ही है," वनमाला मुसकरा कर बोली।

प्रोफेसर साहब ने हताश होकर कहा, "अच्छा भाई जो चाहो करो।"

———

७. विग्रह के बीज

यमुना लखनऊ आने के बाद पहली-सी यमुना न रही थी। आठ महीने में ही उसके रंग-ढंग बदल गये। झुका हुआ सर उठ गया, सफेद धोती का स्थान रेशमी शलवार और दुपट्टे ने ले लिया। चोटी एक के बजाय दो हो गयी। दबी मुसकान की जगह उसकी खिलखिलाहट गूँजने लगी। सूने हाथ चूड़ियों से भर गये।

वनमाला उसे बिल्कुल अपनी लड़की की तरह रखती। बारी-बारी से दुलार और फटकार दोनों ही से वह यमुना को अधिक से अधिक अपना बनाती जाती। यों तो उसके स्नेह वर्षण के लिए मधु भी थी, लेकिन बड़प्पन का जो स्तर वनमाला दिखाना चाहती थी उसकी पूर्ति तीन वर्ष की मधु से क्या हो सकती थी। मधु का काम तो इतने में ही चल जाता कि उसे रंग-बिरंगे कपड़े और खिलौने मिल जायँ और समय पर दूध और खाना। यह बातें पूरी करने के लिए प्रोफेसर साहब की आमदनी और आया की मेहनत काफी थी। माँ के स्नेह-दान की न मालून मधु को क्यों जरूरत नहीं मालूम होती थी। वनमाला का थोड़ा बहुत प्यार तो वह बर्दाश्त करती थी लेकिन फिर छिटक कर भाग जाती थी। वह चाहती थी कि उसके साथ का व्यक्ति उसके बराबर का बनकर उसके साथ खेले। वनमाला यह न कर पाती थी। उसे दो ही बातें आती थीं। या तो डाँट-डपट या उठाकर चुम्बनों की वर्षा कर देना। मधु के साथ उसने, खास तौर से नौकरी छोड़ने के बाद, इन दोनों बातों की इतनी ज्यादती कर दी थी कि मधु सचमुच उससे भागने लगी थी और अपनी आया के साथ रहना ज्यादा पसन्द करती थी क्योंकि बूढ़ी होने पर भी वह मधु के साथ दौड़-दौड़ कर आँखमिचौनी खेलती, मधु के मारने पर रोने लग जाती और उसके साथ मूँगफलियों में हिस्सा बाँटा करती थी।

इसलिए वनमाला अपना सारा ध्यान यमुना की ओर ही लगाने लगी। शुरू-शुरू में कुछ दिन यमुना को वनमाला की अजीब-अजीब-सी फटकारें सुन

कर ताज्जुब बल्कि खीझ भी होती थी। माँ के पास थी तो उसे खाना न बनाने पर, झाड़ू न लगाने पर या खिड़की पर खड़े होने पर डाँट खाने की आदत थी। यहाँ वनमाला इस बात पर बिगड़ती कि गन्दे कपड़े क्यों पहनी हो, मेज़ पर किताबें क्यों ठीक नहीं लगीं, यह सूट कल पहना था आज भी इसे पहन कर क्यों कालेज चली गयीं, मि० जैदी बात कर रहे थे तो सर जमीन में क्यों गड़ाये दे रही थी, बुढ़ियों की तरह झुककर क्यों चलती हो, वक्त पर खाना नहीं मिला तो मुझसे आकर रसोईदारिन की शिकायत क्यों नहीं की। भूखी ही कालेज क्यों चली गयीं। यमुना को अब इन बातों की आदत हो गयी थी। बल्कि अब वह खुद ही इस ढंग से रहती जिससे वनमाला को यह डाँट-डपट न करनी पड़े।

उसका नाम एक स्थानिक स्त्री-विद्यालय में लिखा दिया गया था। कालेज में उसे शुरू-शुरू में बड़ी कठिनाई हुई। हाई स्कूल की परीक्षा भी जैसे-तैसे प्राइवेट पास की थी और चूँकि उस प्रमाण-पत्र का उद्देश्य सिर्फ शादी में सहूलत पैदा करना था इसलिए शादी के बाद वह सब कुछ भूल गयी थी। वैधव्य के एक वर्ष में तो रामायण को छोड़कर उसने कोई दूसरी पुस्तक छुई भी नहीं थी। यहाँ कालेज में दाखिला लेते ही इण्टरमीजिएट की किताबों की लम्बी फेहरिस्त देखकर वह घबरा गयी। जिस दिन वनमाला खुद बाजार जाकर यह किताबें खरीद लायी उस दिन तो यमुना का दिल इन ताजी-ताजी लाल, पीली, हरी, स्लेटी किताबों को देखकर ऐसे ही धड़कने लगा जैसे कि यह उसकी जान लेने को ही आयी हैं। उसने रुआँसी होकर वनमाला से कहा, "भाभी! इतनी सारी किताबें मुझ से कैसे पढ़ी जायेंगी? मुझे कालेज से उठा लीजिए।"

लेकिन वनमाला डपटकर बोली, "पागल हो गयी हो। तुमसे क्यों नहीं पढ़ी जायेंगी। इन्हें पढ़ने के लिए क्या देवता आयेंगे?"

और वनमाला ने यमुना के साथ खुद मेहनत करके, उसकी सारी प्रारंभिक कठिनाइयाँ दूर करके, कालेज में पढ़ाये जाने वाले पाठों को दुबारा अच्छी तरह समझाकर यमुना की झिझक बिल्कुल दूर कर दी। यही नहीं, अपनी जन्मजात प्रखर बुद्धि, धैर्य और वनमाला के निर्देशन में अब वह अपने क्लास में बहुत तेज़ चलने लगी थी। उसकी पोज़ीशन पहली नहीं तो दूसरी तीसरी ज़रूर थी।

अब उसे खुद इतनी दिलचस्पी हो गयी थी कि वनमाला अगर किसी काम में लगी होती या उसका पढ़ाने का मूड न होता तो भी यमुना उसके पीछे पड़कर जो चाहती पूछ लेती। कोर्स की पढ़ाई के अलावा उसने और भी आगे हाथ मारना शुरू किया। वह पाठ्य विषयों की ऊँची पुस्तकें भी पढ़ने लगी और प्रोफेसर साहब की लाइब्रेरी को भी ललचाई नज़रों से देखने लगी।

यमुना के इस परिवार में आने से एक परिवर्तन और भी हुआ। अब वनमाला को अपने पति से भी बात करने की अधिक इच्छा न होती। फलतः पति पत्नी काफ़ी अलग-अलग से रहने लगे। पहले का रोजाना शाम का साथ-साथ टहलना कम होते-होते बिल्कुल खत्म हो गया। प्रोफेसर साहब अब सक्रिय राजनीति में भी दिलचस्पी लेने लगे थे। अजीब बात यह थी कि उन्होंने अपने कार्य के लिए पार्टी भी सबसे अजीब चुनी थी—कम्युनिस्ट पार्टी। कम्युनिस्ट १६४२ के दिनों में सरकार विरोधी कार्यों के विरूद्ध रहे हों तो रहे हों, लेकिन इस समय जब कि नेहरू जी नयी दिल्ली में लार्ड वेवेल के अधिकार के अंतर्गत अंतरिम सरकार बनाये बैठे थे, सारे भारत में अंगरेजों का विरोधी कम्युनिस्टों से बढ़कर कोई नहीं था। प्रोफेसर साहब, जो पहले गांधी जी से प्रभावित थे, इस समय उनकी समझौतावादी नीति को ग्रहण करने में असमर्थ थे। इस समय भी वे कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं थे, लेकिन गहरे 'सिम्पेथाइज़र' थे। इसलिए अब पठन-पाठन से उन्हें जो भी समय मिलता, वे कामरेड लोगों से परामर्श करने में लगा देते थे। इधर वनमाला तो यमुना में ही मगन हो रही थी। उसे भी कोई विशेष चिंता नहीं मालूम होती थी।

यमुना घर भर में अगर किसी से भय खाती थी तो वे प्रोफेसर साहब ही थे। यों रिश्ते के ख्याल से वनमाला की अपेक्षा वह प्रोफेसर साहब के ही निकट अधिक थी। लेकिन न मालूम उन्हें देखते ही उसके हृदय में कैसा अज्ञात भय भर जाता। डाँट-डपट करने की तो प्रोफेसर साहब की आदत ही न थी, यमुना से वे और भी मीठे स्वर में बातें करते। लेकिन उनके लम्बे तड़ंगे शरीर, चौड़े कंधों, बड़ी-बड़ी आँखों और घन गंभीर स्वर से उसकी हड्डियाँ तक काँप उठतीं। उसे अकारण ही ऐसा प्रतीत होता कि यही कल्याणकारी शंकर समय आने पर उसके संहारक बन जायेंगे और उस समय भी इनकी तन्द्रिल आँखों की मुसकरा-

हट, इनके उन्नत ललाट की चमक और इनके मुख की शांति ऐसी ही बनी रहेगी जैसी कि इस समय है।

प्रोफेसर साहब अपनी स्वाभाविक गंभीरतावश मितभाषी थे। दस बातें सुनते तो एक कहते। यमुना से वे बात भी किस विषय पर करते। इसलिए उससे बहुत ही कम बोलते। इस अल्प भाषण के कारण जहाँ एक ओर यमुना के हृदय में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी थी, वहीं उनके प्रति अज्ञात भय भी दुगना हो गया था। उसे ऐसा मालूम होता कि वे उसकी बातें सुन-सुनकर और खुद कुछ न कहकर उसके हृदय की, उसके व्यक्तित्व की सारी कमजोरियों और खराबियों को पकड़ रहे हैं और इन्हीं का किसी दिन बुरी तरह दंड देंगे। इसीलिए वह उनसे बातें करते समय उनसे भी कम बोलने का प्रयत्न करती।

वे अपनी लाइब्रेरी से आवाज़ देते, 'यमुना! मेरी चाय यहीं भिजवा दो।" यमुना अपने कमरे में होती तो भी उसका दिल धड़कने लगता और नौकर को यह आदेश देने के पहले खुद उसके लिये भी एक ग्लास पानी पीना जरूरी हो गया।

लेकिन एक दिन अचानक ही प्रोफेसर साहब के व्यवहार में परिवर्तन हो गया।

उस दिन शाम को चाय के समय बैरिस्टर सिनहा और पत्रकार ज़ैदी भी आ गये थे। ज़ैदी साहब ने पाइनियर की नौकरी छोड़ दी थी और स्वतन्त्र रूप से एक अंगरेजी साप्ताहिक 'फ्री इंडिया' निकालने लगे थे, जिसके मालिक, मैनेजर, सम्पादक सभी कुछ वे अकेले ही थे। इस पत्र के लिए जैसे विद्वता-पूर्ण, किन्तु बिना पैसे के लेख वे चाहते थे, वे सबसे अधिक प्रो० वर्मा से ही मिलते थे। इसलिए दोनों की गहरी छनने लगी थी। फिर भी दोनों में एक नया मतभेद पैदा होने लगा था। ज़ैदी साहब सोशलिस्ट और पक्के सोशलिस्ट थे और उन्हें इस बात से बड़ी परेशानी हो रही थी कि प्रो० वर्मा 'गद्दार कम्युनिस्टों' का साथ देने लगे हैं।

मेज़ पर मधु के सिवा सारा परिवार और दोनों अतिथि बैठे थे। पढ़े-लिखे लोग फ़ुर्सत के समय केवल राजनीति की बातें किया करते हैं, सो इस समय भी राजनीतिक वार्ता हो रही थी। फरवरी १९४७ का समय था। लार्ड वैवेल

की वापसी और लार्ड माउण्ट बैटन की नियुक्ति की घोषणा हो चुकी थी। गत दिसम्बर में लंदन में रहस्यपूर्ण वार्ता भी हो चुकी थी जिसमें नेहरू जी और मि० जिन्ना ने ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० एटली से भारतीय स्वतन्त्रता के बारे में बातचीत की थी और उसी के फलस्वरूप शायद यह वाइसराय बदले गये थे। सभी लोगों को आशा थी कि लार्ड माउण्ट बैटन के काल में देश को स्वतन्त्रता मिलेगी। लेकिन साथ ही दिलों में धुकधुकी भी लगी थी कि कहीं यह सब भी अंगरेजों की चालबाज़ी न हो। कम्युनिस्ट तो कहते ही थे कि अङ्गरेज़ भारत को आज़ादी कभी न देंगे, उन्होने तो कांग्रेसी नेताओं को अपनी मीठी-मोठी बातों में फँसा भर लिया है।

बैरिस्टर साहब बोले, "लार्ड वैवेल ने तो कुछ न किया। सारा मामला ज्यों का त्यों रहा। अब देखें यह नये साहब क्या करते हैं।"

ज़ैदी ने कहा, "लार्ड वैवेल क्या करते? जिन्ना साहब के सामने किसी की चले तब तो। शिमला कानफ्रेंस में भी असली अड़ंगा इन्हीं की वजह से लगा।"

प्रोफेसर साहब ने कहा, "जिन्ना साहब को गाली देने से क्या होगा? आप लोग यह क्यों नहीं समझ पाते कि ब्रिटिश सरकार ही कहाँ आजादी देना चाहती है।"

ज़ैदी सोशलिस्ट थे। सोशलिस्ट का पहला कर्तव्य कम्युनिस्टों का हर बात में विरोध करना होता है। कम्युनिस्ट कहें कि सरकार अच्छी तो सोशलिस्ट सरकार और कम्युनिस्टों दोनों की सात पुश्त को ले डालेंगे। कम्युनिस्ट सरकार की निंदा करें तो सोशलिस्ट सरकार की हिमायत करके कम्युनिस्टों पर आग बरसायेंगे। कम्युनिस्ट कहें कि दिन है तो सोशलिस्ट पूरी ताकत से उसे रात साबित करने की कोशिश करेंगे। इस समय कम्युनिस्ट अङ्गरेजों के दुश्मन थे तो सोशलिस्टों का किसी न किसी हद तक उनका दोस्त होना लाज़मी था। ज़ैदी साहब ने कहा, "आप जबर्दस्ती किसी की नियत पर क्यों शक करते हैं। जब जिन्ना साहब समझौता ही नहीं करना चाहते और पाकिस्तान की बेतुकी रट लगाये हैं तो ब्रिटेन की मज़दूर सरकार भी क्या करे? और मुझे तो उम्मीद है कि लार्ड माउण्टबैटन ज़रूर कोई रास्ता निकालेंगे। वे अच्छे आदमी हैं।"

"यह सोचने के लिए आपके पास क्या कारण हो सकते हैं," प्रोफेसर वर्मा मुसकराकर बोले। वे आज .जैदी को पूर्ण तरह घेर कर मारने के लिए तय्यार थे।

.जैदी के बोलने के पहले ही यमुना बोल उठी, "इसलिए कि वे सबसे ज्यादा खूबसूरत राजनीतिज्ञ हैं।"

सबने चौंक कर एक क्षण उसकी ओर देखा लेकिन दूसरे ही क्षण जोरों का ठहाका लगा। वनमाला भी हँसी लेकिन प्रो० वर्मा के गले में तो हँसी के कारण चाय का फंदा लग गया और चाय उनकी पैंट पर छलक गयी। जैदी-साहब झेंप गये लेकिन हँसी उनकी भी न रुक सकी। दो मिनट तक किसी के मुँह से हँसी के सिवा कोई बात नहीं निकली।

कहने को तो यमुना ने यह बात कह दी लेकिन दूसरे ही क्षण वह घबरा भी गयी। वह इन बड़े लोगों के बीच में कभी नहीं बोलती थी। यद्यपि सब लोग हँस रहे थे लेकिन शायद बाद में भाभी और भाई साहब दोनों डाटें। और वे कुछ न कहें तो भी बीच में बोलना है तो अनुचित ही। मालूम नहीं जैदी साहब भी क्या ख्याल करें।

लेकिन जैदी साहब मुसकराकर बोले, "यमुना तो 'पालिटीशियन' हो गयी है। कहाँ से सीखा है यह सब यमुना? भाभी ने सिखाया है? सच बताना।"

यमुना शर्माती हुई सी बोली, 'जी नहीं। मैं खुद कुछ पढ़ने और 'रीडर' करने की कोशिश करती हूँ। इस समय·········।"

यमुना माफी माँगनेवाली थी लेकिन जैदी साहब टोककर बोले, "क्या पढ़ती हो? कौन-कौन से 'पेपर्स' पढ़ती हो?"

"डेली में तो यही हेराल्ड पढ़ती हूं और 'प्युपिल्स एज' भी पढ़ती हूँ।"

"तभी!" जैदी साहब ने मुसकराकर कहा, "वर्मा साहब! आपने अपनी बहिन को भी कम्युनिस्ट बना डाला। आप तो लोगों को 'कनवर्ट' भी करने लगे।"

इस पर भी मामूली सी हँसी हुई और फिर बात-चीत का रुख दूसरी बातों की तरफ पलट दिया गया।

वास्तव में न तो वनमाला को और न प्रोफेसर साहब को ही यमुना के इस

राजनीतिक अध्ययन का कुछ पता था। वनमाला को इस बात से खुशी हुई कि यह गूँगी लड़की चार आदमियों में बैठकर बात तो करने लगी है। लेकिन प्रोफेसर साहब को बहुत खुशी हुई कि उनके घर में ही उनका राजनीतिक समर्थक मौजूद है। वनमाला को सक्रिय राजनीति में कोई दिलचस्पी न थी। फिर वह राजनीतिक प्रश्नों पर भी अपने स्वतन्त्र विचार रखती। खासतौर से इस समय जब कि प्रोफेसर साहब कम्युनिस्ट पार्टी जैसे लौह अनुशासन और एक रूप विचारधारा के दल से सम्बन्ध बनाये थे, वनमाला की स्वतंत्र प्रवृत्ति से उनके साथ सहमत होने की आशा ही व्यर्थ थी। चुनांचे जब प्रोफेसर साहब ने यमुना से पूछकर यह भी जान लिया कि वह केवल कम्युनिस्टों का मुखपत्र 'प्युपिल्स एज' पढ़ती ही नहीं है बल्कि कम्युनिस्टों के विद्यार्थी संगठन 'स्टूडेंट्स फेडरेशन' में भी थोड़ा बहुत काम करने लगी है तो उन्हें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने यमुना की बातों में ज्यादा दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया। वे रोज़ उससे 'स्टूडेंट्स फ्रंट' का हाल पूछते और कुछ न कुछ राजनीतिक वार्ता भी करते। वे उसके राजनी-तिक अध्ययन में भी मदद देने लगे।

प्रोफेसर साहब ने अचानक जिस प्रकार अपना व्यवहार परिवर्तन कर दिया था यमुना उतनी ही जल्दी तो अपनी झिझक नहीं खोल पायी। लेकिन कुछ दिनों बाद वह प्रोफेसर साहब से भी ऐसे ही खुल गयी जैसे वनमाला से खुली थी।

लेकिन जैसे-जैसे इन दोनों का राजनीतिक विचारैक्य घनिष्टता में परिणत होता गया वैसे-वैसे वनमाला में एक अकारण खीझ पैदा होती गयी। पहले वह खुद ही यमुना से कहा करती थी कि तुम भाई साहब से क्यों नहीं बोलतीं, लेकिन अब उन दोनों को दो-दो घण्टे बैठकर बातें करते और राजनीतिक विरोधियों का मज़ाक उड़ाते हुए हँसते देखकर जल उठती और किसी न किसी बहाने यमुना को उठाने की कोशिश करती।

यमुना ने अपने ताजे राजनीतिक जोश में इस परिवर्तन को लक्ष्य न किया। वनमाला भी उससे साफ़-साफ कुछ नहीं कहती थी। वह कहती भी क्या? खुद भी तो पति या ननद के राजनीतिक कार्यों में कोई बुराई न देखती थी। लेकिन उसे यह बिल्कुल पसंद न था कि यमुना जो अभी तक केवल उसी के वात्सल्य की भाजन थी किसी और का सहारा--चाहे वह किसी भी रूप में हो--पकड़े।

मुसीबत यह थी कि वह अपनी इच्छा को भी स्पष्ट समझ नहीं पाती थी, बस यमुना को भाई साहब से बातें करते देख कर खीझ उठती। कुछ दिनों यही क्रम चलता रहा।

यमुना के इम्तहान का आखिरी पर्चा हो गया था। शाम को प्रोफेसर साहब ने उसे अपने साथ कम्युनिस्टों द्वारा आयोजित एक सभा में चलने को कहा। इस पर वनमाला भड़ककर बोली, "बैठो यहाँ यमुना। पढ़ना-लिखना भी है या पार्टी ही······।"

यमुना समझी कि शायद इन्हें इम्तहान खत्म होने की बात नहीं मालूम है। वह चहककर बोली, "आज तो इम्तहान से पिंड छूट गया है। आज जाने में क्या बुराई है?"

वनमाला चीखकर बोली, "बात बहुत काटने लगी हो। कौन सा फाइनल हो गया है? और क्या पढ़ाई खत्म हो गयी है? आगे का पढ़ो।"

वनमाला इस तरह अन्धाधुन्ध पढ़ाई के पक्ष में न थी। इम्तहान के दिनों में भी वह यमुना को बहुत मेहनत न करने देती थीं। यह बात सुनकर यमुना ने वनमाला को आँखें फाड़कर देखा। फिर धीरे-धीरे आँखें नीची करके अपनी आँखों के उमड़ते आँसू छिपा लिए। प्रोफेसर साहब अपने कमरे में कपड़े पहन रहे थे। यमुना उनसे कह आयी, "मैं न चल सकूँगी। मेरे सर में दर्द हो रहा है।"

---

८. प्रतिद्वंद्विता की प्रेतछाया

दो महीनों की छुट्टियों में यमुना अपनी माँ के पास चली गयी।

जब उसने वनमाला से इसके लिए अनुमति मांगी तो उसने खुशी से अनुमति दे दी लेकिन यमुना के जाने के बाद उसे बड़ा सूना-सूना सा लगने लगा। इधर सवा साल से वह अपना ध्यान बराबर यमुना पर ही लगाये रखती थी। यहाँ तक कि मधु से भी उसका प्यार कम हो गया था। अपने प्रति किस आदमी की कैसी निगाह है इसे वयस्क लोगों की अपेक्षा बच्चे अधिक अच्छी तरह समझते हैं। उसकी प्रतिक्रिया भी उनपर तुरंत होती है। मधु अपनी माँ के पास बिल्कुल रहना पसंद न करती। वनमाला ने कुछ दिन कोशिश की कि मधु पर ही अपने सारे ध्यान को केन्द्रित करे। लेकिन मधु ने थोड़ा बहुत यह निमन्त्रण स्वीकार किया भी तो स्थायी रूप से नहीं। मधु बहुत ही चंचल लड़की थी और माँ से शारीरिक सौंदर्य के साथ ही आत्माभिमान भी आंशिक रूप में काफ़ी पाया था। फलतः शीघ्र ही मधु के सम्पर्क से भी वनमाला की तबियत उचटने लगी। वनमाला शुरू से ही अपनी बात बगैर चूंचरा के दूसरों से मनवाने की आदी थी। नौकरी के समय उसके अनुशासन की क्षमता का सभी लोहा मानते थे। यमुना जब तक पास में रही हमेशा उसका हुक्म मानती रही। लेकिन अब तो कोई ऐसा नहीं था कि जो सर झुकाकर उसकी बात मान लेता।

यों तो घर में नौकर चाकर भी थे और सभी उसके हुक्मों पर 'जी, सरकार' 'अभी, सरकार' करके दौड़ते रहते थे। लेकिन उनकी आज्ञाकारिता वनमाला को संतुष्ट करने के बजाय और खिझाने लगती। वह सोचती कि यह लोग भी कैसे आत्माहीन हैं। हर बात से सहमत, हर काम करने को तय्यार। कभी प्रतिरोध की बात भी नहीं सोचते। दूसरे ही क्षण उसे ख्याल आता कि इनकी सारी विनम्रता, सारी आज्ञाकारिता झूठ और पाखंड से भरी है। इनके खीसें निपोरने का मतलब यह नहीं है कि यह वास्तव में मुझे अपने से ऊँचा समझकर, मेरे व्यक्तित्व के बोझ से दबकर मेरी बात पर आत्म-समर्पण करते हों। यह शायद

मेरी बात के औचित्य पर विचार ही नहीं करते। यह किसी भी घर की, जहाँ पर आम तौर से दूसरे घरों की अपेक्षा अधिक वेतन और सुविधाएँ मिली हों मूर्ख, मालकिन के हुक्मों को भी 'जी हाँ' 'जी हाँ' करके मानेंगे और उसके पीठ पीछे उसकी बातों की हँसी उड़ायेंगे। और क्या ठीक है कि यह मेरा मज़ाक भी न उड़ाते हों।

धीरे-धीरे उसकी यह उलझन उपहासास्पद रूप तक बढ़ गयी। एक रोज़ उसे मालूम हुआ कि दाल में नमक तेज़ है। उसने फौरन रसोईदारिन को बुलाया। मामूली तौर पर ऐसे मौकों पर वह केवल एक गंभीरतापूर्ण चेतावनी दे दिया करती थी और यह चेतावनी ही हमेशा के लिए अपना असर दिखा देती थी। इस बार वह शुरू से ही चिल्लाकर बोली, "तुम्हारा जी अब काम करने में लगता है या नहीं? ठीक से काम करना हो तो करो नहीं तो साफ़ कह दो, दूसरा इंतज़ाम किया जाय।"

रसोईदारिन बहुत घबरा गयी। उसके काँपते हुए होठों से सिर्फ यह निकला, "जी—जी—"

"जी जी की नानी," वनमाला गुस्से में चीखी, दाल में नमक क्यों नहीं डाला?" गुस्से में उसे यह भी खयाल न रहा कि क्या कहना चाहिए

रसोईदारिन को अच्छी तरह याद था कि दाल में नमक पड़ा है लेकिन सोचा कि शायद कम हो गया हो। उसने काँपते हाथों से मेज़ पर से नमकदान उठाकर दाल की प्लेट में और नमक डाल दिया और हाथ जोड़ती हुई बोली, "माफ़ करें सरकार! अब ऐसी गलती नहीं होगी। आज भूल हो गयी।"

वनमाला का गुस्सा और बढ़ा। वह चिल्लायी, "नमक क्यों डाल दिया? उसमें तो पहले से ही नमक तेज़ था। तुम्हें बिल्कुल अकल नहीं है।"

रसोईदारिन अभी नौ उम्र थी। अपनी हँसी न रोक सकी।

वनमाला ने लाल पड़ते हुए कहा, "हँसती हो ऊपर से? शर्म नहीं आती!"

रसोईदारिन भी गर्म पड़ गयी। उसने कहा, "बड़ी मुश्किल है मालकिन। कभी आप कहती हैं नमक है ही नहीं, कभी कहती हैं नमक तेज़ है। मैं क्या करूँ समझ में ही नहीं आता।"

वनमाला को अपनी भूल मालूम हुई लेकिन नौकर के सामने अपनी खुली गलती कैसे मानी जा सकती है। अतएव उसने बनावटी खीझ से कहा, करो अपना सर। तुम्हें खुद भी तो याद रहना चाहिए कि नमक डाला है या नहीं। मैं कहूँ कि तुमने दाल में जहर डाल दिया है तो मान लोगी? तुम्हें कुछ याद ही नहीं रहता। याद तो तब रहे जब काम में ध्यान हो। ध्यान से काम किया करो। जाओ।"

रसोईदारिन ने वापस जाकर घर के नौकर और आया से वनमाला के पागलपन की बात खूब मज़े ले लेकर बतायी और वे सब खूब हँसे। इधर वनमाला को खाना ज़हर मालूम होने लगा। वह बगैर खाये हुए ही मेज़ पर से उठ आयी।

बहुत देर तक वह अपनी हालत पर गौर करती रही। अपनी पिछली जिन्दगी से आज की हालत का मुकाबला करती रही। अंत में उसने निश्चय किया कि इस तरह की उलझन कायम रखना अपने को बर्बाद करना है। अब मैं फिर अपने पति से अधिक बात किया करूँगी। बेकार बातें सोच सोचकर दिमाग की उलझन बढ़ती है। कम से कम उनसे राय लूँगी कि क्या करूँ।

और उस दिन शाम को उसने प्रोफेसर साहब से अपनी परेशानी बतायी, नमक वाली बात का भी जिक्र किया। प्रोफेसर साहब सुनकर हँसने लगे। राय उन्होंने भी यही दी कि अपना मन किसी काम में लगाओ। आपत्ति न हो तो तुम भी राजनीतिक कार्यों में भाग लिया करो। वनमाला ने यह बात खुशी से मंजूर कर ली।

लेकिन समस्या का यह हाल देखने में जितना सरल लगता था वास्तव में उतना न था, वनमाला की तबियत जल्द ही इससे उचटने लगी। इन दिनों जन साधारण में राजनीति के प्रति दिलचस्पी खूब बढ़ गयी थी। ३ जून को वाइसराय माउंट बैटन, नेहरूजी, मि० जिन्ना और सरदार बलदेव सिंह की संयुक्त घोषणा हो गयी कि भारत को विभाजित करके स्वतन्त्र करने की बृटिश योजना मंजूर कर ली गयी। इस धब्बेदार आजादी के प्रति लोगों का विशेष उत्साह तो न दिखाई दिया लेकिन बाद में जब कांग्रेस और मुस्लिमलीग दोनों ने इसे मंजूर कर लिया तो आम लोग भी समझने लगे कि यह ठीक ही हुआ।

वनमाला को यह सब कुछ अच्छा न लगा। उसने अन्त में एक दिन प्रोफेसर साहब से कह दिया कि इस बेवकूफ़ी में मेरी तबियत नहीं लगती। प्रोफेसर साहब के ज़ोर देने पर उसने कहा, "मेरी समझ में किसी की भी बात नहीं आती। जो लोग कल कुछ और कह रहे थे वे ही आज दूसरी बात कह रहे हैं। राजनीति को लोगों ने सिर्फ पेशा बना रखा है। किसी में भी ईमानदारी नहीं दिखायी देती। सब अपना-अपना राज बनाने की फ़िक्र में हैं। सब लोग आम जनता को बेवकूफ़ बना रहे हैं।"

प्रो० वर्मा बोले, "क्या कम्युनिस्ट पार्टी भी...।"

"कम्युनिस्ट पार्टी की बातों में बचपन भरा है। वह ईमानदार हो सकती है लेकिन उसमें नेतृत्व देने की क्षमता नहीं है।"

इसके बाद पति-पत्नी में अच्छी खासी बहस हुई किन्तु कोई किसी को संतुष्ट न कर सका। अन्त में प्रोफेसर साहब ने हँसकर कहा, "तुम ज़बर्दस्ती अपने आलस्य को उचित सिद्ध करने की कोशिश कर रही हो। बात असल में यह है कि तुम में अब जोश नहीं रहा है। बुढ़ापा आ रहा है। क्यों यही बात है न? यमुना तो ऐसी बातें नहीं करती।"

वनमाला को अपने साथ यमुना का मुकाबला बड़ा बुरा लगा। यमुना उसके सामने थी ही किस गिनती में। वह तुनक कर बोली, "जी हाँ। एक यमुना जवान है एक आप जवान हैं। तो आप दोनों दुनियाँ को सर पर उठा लीजिए। मैं नौजवान न सही लेकिन आप अपनी ओर तो देखिए। कितने बाल सफेद हो रहे हैं।"

प्रोफेसर साहब का मूड दूसरा था। वे शायद चाहते थे कि छेड़-छेड़ कर ही वनमाला में कुछ जोश भर दें। उन्होंने कहा, "बाल सफेद होने से क्या होता है, जिसका दिल जवान है वह जवान है।"

वनमाला गुस्से में जवाब दिये बगैर उठकर चली आयी। प्रोफेसर साहब ठहाका मारकर हँसने लगे। ऐसे मौकों पर हँसना उनकी पुरानी आदत थी।

वनमाला को उस रात देर तक नींद न आयी। उसके दिमाग में नयी उलझनें शुरू हो गयी थीं। कभी-कभी राह चलते सड़क पर पड़ी कोई सूखी टेढ़ी-मेढ़ी काँटेदार टहनी अचानक ही कपड़ों से उलझ जाती है और इस

बुरी तरह उलझ जाती है कि जितना ही कपड़ों और बदन को काँटों की तीक्ष्ण नोक से बचाते हुए उसे छुड़ाने की कोशिश की जाती है उतनी ही वह और नये-नये कोणों से उलझती चली जाती है। वनमाला के मन में ठीक इसी तरह प्रोफ़ेसर साहब के शब्द चुभ रहे थे, तुम पर बुढ़ापा आ रहा है, यमुना जवान है। वह जितना इस विचार से मुक्ति पाने का प्रयत्न करती उतना ही वह नये-नये तर्कों के साथ नये-नये भयावह रूपों में उसे चारो ओर से घेरने लगा।

वह सोचती कि प्रोफेसर साहब जैसा गंभीर अध्ययनशील व्यक्ति इस प्रकार के विचार नहीं रख सकता। लेकिन फिर उसे ख्याल आता कि गंभीर और अध्ययनशील होना तो कोई सच्चरित्रता की गारंटी नहीं है।

वह सोचती कि कुछ भी हो आखिर को यमुना उनकी बहन है-- रिश्ते की ही सही। फिर जैसे कोई हँसकर उससे कहता कि इन 'मूर्खता की बातों में क्या रखा है। बहिन भाई के सम्बन्ध की पवित्रता कल्पना में अधिक है, वास्तविक जगत में कम। फिर यमुना कौन सगी बहिन है। हिन्दुओं के अतिरिक्त सभी जातियों में इस रिश्ते में शादी तक हो सकती है। और प्रोफेसर साहब तो नास्तिक हैं, केवल प्राकृतिक आचार-विचार को ही मान्यता देते हैं। यमुना को यदि वे अपनी बहिन ही समझते तो पहले उससे खिंचे-खिंचे क्यों रहते? वे उसे बहिन की नजर से देखते ही नहीं, देख ही नहीं सकते।

वनमाला सोचती, लेकिन प्रोफेसर साहब की उम्र अड़तालिस की है। ठीक समय पर शादी कर लेते तो यमुना से बड़ी खुद उनकी लड़की होती।' लेकिन फिर उसके सामने प्रोफेसर साहब के शब्द 'जिसका दिल जवान है वह जवान है' दूर से अंगारों की पंक्ति की भाँति चमकते चले आते और उसके मानस-पटल को दग्ध कर जाते। जैसे कोई कान में कह जाता कि पागल हुई हो? साठ वर्ष के बूढ़ों को पन्द्रह वर्ष की छोकरियो से गाँठ जोड़ते देखा नहीं तो सुना तो होगा/ही।

फिर वनमाला कातर होकर सोचती, फिर भी उन्हें मेरी भावनाओं का तो ख्याल होगा ही। उन्होंने हमेशा हर बात में मेरा ख्याल रखा है। इस समय सब कुछ चाहते हुए भी क्या वे मुझे मर्मान्तिक चोट पहुँचाना चाहेंगे? क्या

उन्हें नौ वर्षों के सुखमय विवाहित जीवन को नष्ट करने में बिल्कुल झिझक न होगी ! लेकिन इसी समय उसके विचारों का अन्तिम भाग जैसे सौगुने जोर से प्रतिध्वनित हुआ, बिलकुल झिझक न होगी। तुममें अब उनकी दिलचस्पी ही क्या रह गयी है ? देखा नहीं, जब तुम तिलमिला कर उठ आयी थी तो भी वे ठहाके लगा रहे थे। अब तुम्हारे दुःख से उन्हें दुःख नहीं, प्रसन्नता ही होगी।'

वनमाला ने धड़कते दिल से अपने तरकश का आखिरी तीर निकाला, 'वाहियात बात है। यमुना का मुझसे कोई मुकाबला हो सकता है ? रानी जी पहले शीशे में अपनी सूरत तो देखें तब आकर मुझसे मुकाबला करने की बात सोचें।' लेकिन उसे जैसे कहीं से भयानक अट्टहास के साथ सुनायी दिया, तुम पागल हो और पागल रहोगी। यह 'ब्यूटी कम्पटीशन' नहीं है, दिल का मामला है। तुम्हारे नखशिख लाख अच्छे हों लेकिन तुम जवान नहीं रही हो। तुम्हारे शरीर में चपलता नहीं है, अङ्गों में कसाव नहीं है, मुसकराहट में जादू नहीं रहा। तुम्हारा दिल बूढ़ा हो गया है, उसमें उमंगे नहीं हैं। तुम्हारा शरीर किसी भी कुशल मूर्तिकार के लिए अच्छा माडेल हो सकता है लेकिन जिस पुरुष के हृदय में उमंगें हैं वह तुम से प्रेम नहीं कर सकता...नहीं कर सकता।'

वनमाला सिसक-सिसक कर रोने लगी। मेरा सारा व्यक्तित्व, सारी प्रतिभा, सारा सौन्दर्य बिल्कुल बेकार है। मैंने जिसे खूब सोच समझ कर अपने जीवन का साथी चुना, जिसके लिए दुनियाँ में अपना कहा जाने वाला सब कुछ छोड़ दिया, जब उसी के हृदय पर अधिकार न रख सकी तो सब बेकार है। मेरा जीवन पेड़ से गिरी पीली पत्ती से भी तुच्छ है।

आँसुओं से उसका आधा तकिया भीग गया, करवट बदलते-बदलते बिस्तर पर बुरी तरह सलवटें पड़ गयीं। ऐसी ही दशा में न जाने कब और कैसे निद्रा देवी ने उस पर कृपा कर दी। फिर भी रातभर बुरे-बुरे सपनों ने उसका पीछा न छोड़ा।

सुबह वह भारी सर, तमतमाया मुँह, बोझिल आँखें और टूटते अंग प्रत्यंग लेकर उठी। कुछ देर जी बहलाने को लान पर टहली। सुबह की ठंडी हवा से मन कुछ प्रफुल्लित हुआ और मस्तिष्क ने आगे की राह दिखाना शुरू किया।

चाय पर उसने प्रोफेसर साहब से कहा, "यमुना जब से गया है, घर बड़ा सूना सूना लगता है। उसकी वजह से चहल-पहल सी रहती थी।"

प्रोफेसर साहब बोले, "इसमें क्या शक है। लेकिन अब यह सूनापन भी अधिक दिन न रहेगा। पन्द्रह दिन बाद तो वह आ ही जायेगी।"

कुछ देर बाद वनमाला बोली, "एक बात बताइए। आपका उसके बारे में क्या ख्याल है? आप उसे क्या समझते हैं?"

"क्या समझता हूँ?" प्रोफेसर साहब ताज्जुब से बोले, "वह एक मामूली सी लड़की है। मामूली लड़की ही समझता हूँ। सीधी सादी है, बुद्धिमान है, बस।"

वनमाला कुछ हिचकते हुए बोली, "सो तो है। लेकिन वह आपकी बहिन भी तो है। आपने यह क्यों नहीं कहा कि मैं उसे अपनी बहिन समझता हूँ।"

"हाँ.... कहने को तो बहिन है ही," प्रोफेसर साहब मुसकराकर बोले, "लेकिन दरअसल बहिन भाई का रिश्ता बड़ी ही जिम्मेदारी का होता है। मैं शायद वह सारी जिम्मेदारियाँ न निभा सकूँ........"

वनमाला का दिल बैठने लगा। उसे लगा कि मेज़ पर का फूलदान, चाय के बर्तन, सामने पड़ी हुई कुर्सियाँ, दीवार पर लगी तसवीरें घूमने लगी हैं और घूमते-घूमते भी उसका मुँह चिढ़ा रहे हैं। उसकी आँखों में आँसू उमड़ने लगे।

प्रोफेसर साहब कहते रहे "........न निभा सकूँ। और जिस बात की पूरी जिम्मेदारी निभाने में मैं अपने को असमर्थ पाऊँ उसका दावा भी नहीं कर सकता। लेकिन यह सवाल क्यों उठा?" उन्होंने आँखें उठाकर पूछा।

यकायक वनमाला को झटका लगा। उसका पुराना आत्माभिमान कातरता के पर्दे फाड़ता हुआ फिर निकल आया। उसने जल्दी से कहा "कुछ नहीं यों ही पूछ लिया .... बात यह है कि मैं सवा साल से देख रही हूँ कि यमुना की बेहतरी में जितनी दिलचस्पी मुझे है उसकी आधी भी आपको नहीं, हालां कि वह मेरी कोई नहीं है।"

प्रोफेसर साहब मुसकराकर रह गये। बात यहां खत्म हो गयी।

लेकिन वनमाला की बेचैनी बढ़ती गयी। उसका जी हर काम से उचट हो

गया। कमरे की सफाई नहीं हुई है तो न सही। जो कपड़ा सोते वक्त पहना, दिन में भी उसे न उतारा। कोई पुस्तक भी पढ़ने को उठायी तो चार लाइनें पढ़-कर फेंक दी। झुंझलाहट भी बढ़ गयी।

प्रोफेसर साहब पूछते कि क्या हो गया है तुम्हें, क्यों खोयी-खोयी सी रहती हो? तो वह टाल-मटोल कर जाती। वे भी परेशान थे कि क्या बात है।

उस दिन बादल घिर आये थे और खूब ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। तीसरे पहर का समय था। प्रोफेसर साहब सदा की भांति अपने पुस्तकालय में बैठे हुए थे। वनमाला बरामदे में खड़ी हवा के कंधों पर उड़ती हुई मेघ राशि को देख रही थी। हलकी-हलकी बूंदें पड़ने लगीं। काले बादलों के सीने में बिजली दमक उठी।

वनमाला पुस्तकालय में चली गयी। प्रोफेसर साहब लम्बे सोफे में पैर पसारे पढ़ रहे थे। वनमाला भी पास जाकर बैठ गयी तो वे सिमट कर बैठ गये और पत्नी की ओर मुसकराकर देखा। वह कई दिन बाद आज खुद उनके पास आयी थी।

"डिस्टर्ब तो नहीं हुआ?" वनमाला ने धड़कते दिल से पूछा।

"नहीं, यों ही पढ़ रहा था। कोई ज़रूरी चीज़ नहीं थी। तुम्हारा जी कैसा है?"

"ठीक है," वनमाला काँपती आवाज़ में बोली।

अचानक उसने पति के गले में बाहें डाल दीं और उनकी आंखों से आखें मिलाकर कहा, "तुम मुझे प्यार करते हो न? सच बताओ, प्यार करते हो?"

प्रोफेसर साहब ने उसका चुम्बन लेकर कहा, 'ज़रूर क्या तुम्हें इसमें शक है।" लेकिन तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं मालूम होती। डाक्टर साहब के यहां चलो।"

"नहीं। अब मुझे किसी इलाज की ज़रूरत नहीं," कहकर वनमाला ने पति के चौड़े सीने पर सर रख दिया और आँसू बहाने लगी। वे उसका सर थप-थपाने लगे।

बाहर बड़े जोरों से बिजली कौंधी और बादल की भयानक कड़क के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी।

———

९. कलह का सूत्रपात

वनमाला आराम कुर्सी पर लेटी बुनाई कर रही थी। किसी ने पीछे से आकर उसकी आँखें बंद कर ली। अपने कालेज के जीवन के बाद से वनमाला को कभी ऐसा अनुभव नहीं हुआ था। उसे बड़ा अजीब-सा लगा। सोचने लगी कि यह कौन है जो मेरे साथ ऐसी हरकत कर सकता है। आँखों को कोमल उँगलियों का स्पर्श हो रहा था। कोई लड़की ही होगी, लेकिन कौन ऐसी लड़की है। प्रोफेसर साहब के मित्रों की जो लड़कियाँ आती थीं वे तो वनमाला का बड़ा सम्मान करती थीं। यह इतनी बेतकल्लुफी आखिर कौन दिखा रहा है? वह उलझन में पड़ गयी।

एक क्षण बाद उसने आँखों पर रखी हुई उँगलियाँ हटायीं तो यमुना खिलखिला कर उससे लिपट गयी। वनमाला की समझ में न आया कि इसे डाटूँ या इसके साथ ही खिलखिला पड़ूँ। किन्तु उसने दूसरा मार्ग ही ग्रहण किया। हँसकर उसके गाल पर चपत जमाते हुए बोली, "बड़ी नटखट हो गयी हो तुम। पर निकल आये हैं। पहले तो हर वक्त मुहर्रमी सूरत बनाये रखती थीं।"

यमुना हँसते हुए अलग कुर्सी पर बैठ गयी। वनमाला ने पूछा, "कालेज खुलने में तो देर है। तुमने तो लिखा भी अगले हफ्ते में आने को था।"

"भाभी तबियत नहीं लगती वहाँ, कहते-कहते यमुना के मुख पर मलिन छाया-सी घिर आयी। फिर जैसे उसने अपने को संभाल कर कहा, "आप लोगों की बहुत याद आती थी। मधु तो रोज सपने में दिखाई देती थी। कहाँ है मधु! वह भी मुझे याद करती थी या नहीं?

"खूब करती थी। लेकिन इस समय सो रही है। तुम उठो सामान वगैरा रखवाओ। कपड़े बदलो, बल्कि नहा डालो। खाना-वाना तो अभी खाया नहीं होगा? चलो जल्दी करो।"

यमुना उठकर चली गयी तो वनमाला सोचने लगी। यह क्या बात है। इस लड़की की अनुपस्थिति में मैं इससे घृणा करने लगी थी। स्वाभाविक भी है, यह तो मेरी ही छाती पर मूँग दलने की तय्यारी कर रही है। लेकिन इसे देखते ही इसके प्रति मेरे हृदय में प्यार क्यों उमड़ आता है। लगता है कि इसे कभी अपनी आँखों से ओझल न होने दूँ। इसे सीने से ही लगाये रखूँ। कितनी प्यारी लड़की है। कितनी हँसमुख और सीधी। किसी बात पर तो नहीं बिगड़ती। बात करती है तो जैसे फूल झड़ते हों।

वनमाला सोचती रही। उसने सोचा कि मैं बेकार ही इस पर शक करती हूँ। इसका हृदय तो रेशम की तरह मुलायम है। यह कभी ऐसी बात सोच ही नहीं सकती। इस पर किसी तरह का शक करना पाप है। वनमाला को अपने से ही घृणा होने लगी कि यमुना के बारे में मैंने कुत्सित विचार अपने मन में आने ही क्यों दिये।

रसोईदारिन काम करके चली गयी थी। वनमाला चौके में खुद गयी और यमुना के लिए खाना परोसने लगी। नौकर को आदेश दिया कि सायकिल पर दौड़कर जाये और दही ले आये। यमुना को मीठा दही बहुत पसन्द था न।

यमुना नहा धोकर आयी तो देखा कि भाभी खुद मेज़ सजा रही हैं। कहने लगी, "अरे आप क्यों यह सब कर रही हैं। रसोईदारिन चली गयी है तो मैं खुद खाना ले लेती।"

वनमाला हँसकर बोली, "आज तो तुम मेहमान हो। अच्छी तरह खातिर करवा लो। कल से तो सब कुछ तुम्हें करना ही पड़ेगा।"

वह घंटे भर पहले ही खाना खा चुकी थी। इस समय यमुना के सामने बैठ गयी कि कोई प्लेट खाली हो तो उसे भर दे। साथ-साथ कुछ बातें भी होनी चाहिए।

वनमाला ने पूछा, "तुम्हारी माँ तो अच्छी तरह हैं न?"

"हाँ अच्छी तरह हैं," यमुना ने संक्षेप में उत्तर दे दिया और चुप रही।

उसकी भाव भंगी देखकर वनमाला ने बात पलट दी और यमुना की पढ़ाई वगैरा के बारे में बातें करने लगी। यमुना फिर प्रफुल्लित सी हो गयी।

खाना खत्म होने के बाद दोनों ड्राइंग रूम में आकर एक ही सोफ़े पर बैठ

गयीं। वनमाला ने कहा, "मुझे ऐसा मालूम होता है कि तुम अपनी माँ के पास जाकर खुश नहीं हुईं। कुछ झगड़ा-वगड़ा हो गया है क्या ?"

"नहीं तो। झगड़ा-वगड़ा कुछ नहीं हुआ," कहते हुए फिर यमुना के चेहरे पर मलिन छाया घिर आयी और आवाज़ कांपने सी लगी।

वनमाला ने पीछा न छोड़ा, "फिर क्या बात है ? उदास क्यों हो गयीं।"

यमुना ने कोई उत्तर न दिया। वह सर नीचा करके बैठी रही। उसके होंठ कांपते हुए से मालूम हुए। स्पष्ट था कि वह कष्ट से अपनी भावनाएँ दबा रही है।

"बतातीं क्यों नहीं ? क्या हुआ ? कोई खास बात हुई है क्या ?" वनमाला ने प्यार भरी खीझ के साथ पूछा।

"क्या कीजिएगा सुनकर," यमुना ने सँभलते हुए कहा, "वही पुरानी बातें हैं। आप तो सब जानती ही हैं। कोई खास बात हो तो बताऊँ।"

"मुझे कुछ नहीं मालूम। साफ़-साफ़ बताओ क्या बात है।"

यमुना हारकर बोली, "अरे वही पुराना किस्सा। यह मत करो, वह मत करो, यह मत पहनो वह मत खाओ। अम्मा हैं और उनकी साथिनें।"

वनमाला समझ गयी, फिर भी बोली, "यह क्या बात बतायी। शुरू से कहो क्या बात हुई। कुछ झगड़ा वगैरा हो गया क्या ?"

यमुना ने अपनी कहानी शुरू की, "मैं जब यहाँ से गयी थी तभी सोच लिया था कि यहाँ जैसा रहन-सहन वहाँ न चलेगा। शलवार सूट, गरारा सूट सब यहीं छोड़ गयी थी। चार सफेद धोतियाँ लेकर ही गयी थी। उलटा पल्ला भी नहीं किया। फिर भी देखते ही अम्माँ की भँवें खिंच गयीं। कहने लगीं, 'यह चूड़ियाँ क्यों पहने हो। तुम्हें शर्म भी नहीं आती। बाप का नाम डुबोओगी ? पहले पहल ही ऐसा स्वागत पाकर जी जल उठा। तबियत होने लगी कि उसी समय वापस चली आऊँ। लेकिन हँसकर चुप हो गयी। चूड़ियाँ ईंट को भेंट कीं। फिर दूसरा हमला हुआ, वे लोग भी बड़े अच्छे आदमी हैं। जवान औरत को अकेले भेज दिया। यहाँ तक आ जाते तो प्रोफेसर साहब के तलवों की मेंहदी घिस जाती ? और तुम भी लाज शरम भूनकर खा गयी हो। चटकती मटकती चली आयीं।' मैं इस पर रोने लगीं तो शायद कुछ दिल पिघला। लेकिन

बात खत्म नहीं हुई। उनकी साथ की बुढ़ियाँ, महाराजिनें, कहारिनें सभी आ आकर उपदेश देने लगीं। बड़ी मुसीबत हो गयी। किताब पढ़ूँ तो भी एतराज़, 'अंगरेजी किताबें पढ़-पढ़कर ही तो धरम-करम सब चौपट हुआ जारहा है। लड़कियाँ पढ़ें तो पढ़ें विधवाओं को तो यह छूनी भी नहीं चाहिए। विधवाओं को तो बस रामनाम से काम रखना चाहिए।' कभी जी खुश हुआ, कुछ गुनगुनाने लगे तो मुसीबत खड़ी हो गयी। एक दिन चोटी करके भूल से बिंदी लगा ली। उस दिन तो मेरे ऊपर सभी पिल पड़ीं। मुझे उस दिन गुस्सा आ गया। मैंने सबके सामने ही कहा, 'लखनऊ वालों के सर पर मुझे मढ़ा था तब नहीं सोचा था कि लड़की यह सब करेगी। तब तो खुश थीं कि अच्छा है इसका पेट न भरना पड़ेगा। अब क्यों टाँय-टाँय करती हो। मुझे लखनऊ में रखना चाहो तो यह सब बर्दाश्त करो। नहीं तो कह दो, वहाँ न जाऊँ। यह भी न करना हो तो सँखिया मँगा कर दे दो। सारा झगड़ा खत्म हो जाय।' इस पर सब चुप हो गयीं। अम्माँ भी रात को बहुत देर तक चुपके-चुपके रोती रहीं। लेकिन फिर मुझसे कुछ नहीं कहा। हाँ, उसके बाद बोल-चाल लगभग बंद ही कर दी। उसके बाद घर और भी फाड़ खाने लगा। हर तरफ़ मनहूसियत। अम्माँ बोलती नहीं थीं, दूसरा कोई बोलने वाला था ही कौन? तबीयत बहुत घबराने लगी तो जल्दी ही भाग कर यहाँ चली आयी।"

वनमाला ने ध्यान से यमुना की लम्बी कहानी सुनी, लेकिन इसके बाद भी कुछ नहीं कहा। यमुना को चोट लगी। उसे आशा थी कि भाभी से कुछ सहानुभूति मिलेगी लेकिन वे तो बुत बनी बैठी हैं। यमुना ने सोचा शायद इन्हें मेरी परेशानी का पूरा अंदाजा न हुआ हो और मेरी बात को कोरा बचपन समझे हुए हों। उसने फिर कहना शुरू किया, "मेरे भाग्य में जो कुछ था सो तो हो ही गया। भगवान ही जानते हैं कि मुझे कितना दुःख है। आपसे हँसती रहती हूँ लेकिन दिल में तो आग सुलगती रहती है। अच्छी तरह उनका मुँह भी नहीं देख पायी थी कि हमेशा के लिए ओझल हो गये। फिर भी जिंदा तो रहना ही है इसीलिए दुःख को हँसी से भुलावे दिया करती हूँ। बारबार यह याद दिलाना कि तुम विधवा हो, पुराने घाव को बारबार कुरेदना ही तो है। किसी का टके भर की जीभ हिलाने में क्या जाता है। मेरे दिल पर बार बार चोट

पड़ती है उसे कोई क्या जाने।" यह कहते-कहते यमुना की आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे, आवाज भर्रा गयी।

वनमाला फिर भी उसकी ओर टकटकी लगाये देखती ही रही। बोली कुछ नहीं।

दो मिनट के बाद यमुना कुछ सँभली। वनमाला की ओर देखा तो उसकी चुप्पी, टकटकी और भावशून्य मुद्रा देखकर उसे कुछ डर-सा लगा। उसने पूछा, "क्यों भाभी? मुझसे इसमें कुछ गलती हुई है? हो सकता है कि मेरी गलती हो, मैं समझ न पायी हूँ। आप बताइए कि मैंने कहाँ गलती की।"

वनमाला जैसे चौंक उठी। उसने कहा, "नहीं तुम्हारी कोई गलती नहीं है। लेकिन फिर भी जो कुछ हुआ अच्छा नहीं हुआ।"

"क्या अच्छा नहीं हुआ?" यमुना ने हैरान होकर पूछा।

"यही। तुम्हारा माँ से झगड़ा ठीक नहीं हुआ।"

यमुना फिर उदास हो गयी। सर झुकाकर धीरे-धीरे बोली, "हाँ मुझे गुस्सा आ गया था। मुझे उनसे ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए थीं। लेकिन अब क्या हो सकता है।" उसकी आँखों से आँसू और उमड़ते हुए मालूम हुए। सर और झुक गया।

वनमाला को उस पर दया आ गयी। उसने हँसते हुए यमुना को अपनी गोद में खींच लिया और उसका गाल थप-थपाते हुए बोली, "तुम बड़ी पगली हो। मैंने यह कब कहा कि तुमने बुरा किया। खैर जो हुआ सो हुआ। अब दुःखी न हो। उठो मुँह धो डालो।"

× × × ×

प्रोफेसर साहब के परिवार में जीवन-क्रम फिर यथावत् चलने लगा। प्रोफेसर साहब अपनी यूनिवर्सिटी और राजनीति में मस्त रहते, यमुना अध्ययन और राजनीति में और वनमाला यमुना की स्नेह डोरियों का ताना-बाना उलझाने-सुलझाने में।

१५ अगस्त का दिन आया। भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम प्रभात। भारत वासियों के बीसियों वर्ष के सपने पूरे हुए थे। सैकड़ों शहीदों का खून रंग

लाया था। अपार आनन्द था सबके मन में। राजा से रंक तक सभी आनन्द विभोर थे। गगनचुम्बी अट्टालिकाओं से मँहगू किसान की झोपड़ी पर तक तिरंगा झंडा फहराने लगा था। घर-घर दिवाली मनायी जा रही थी।

हज़रतगंज, कौंसिल हाउस में बढ़िया रोशनी हुई। वर्मा परिवार में रोशनी देखने की तय्यारियाँ जोर-शोर से शुरू हुईं। कपड़ों का चुनाव, साज-सिंगार का फैलाव, अजीब थी। कपड़ों की अल्मारियाँ खाली कर दी गयीं, लेकिन यह तय ही न हो सका कि कौन क्या पहने। सिंगार मेज़ की बेतरतीबी भी देखते ही बनती थी।

किसी तरह वनमाला और मधु के कपड़ों का चुनाव हुआ तो यमुना पर आकर गाड़ी अटक गयी। वनमाला चाहती थी कि वह जरी के काम का हरा साटन का सूट पहने। आज खुशी का दिन है। पूरी शान से मनाया जाना चाहिए। प्रोफेसर साहब कहते थे कि यह ठीक नहीं है, ऐसे कपड़े भी क्या जो आदमी को बिल्कुल दबाकर रख दें। इस वक्त यमुना को प्याजी रंग की जार्जेट की सारी पहननी चाहिए। इसमें उसका व्यक्तित्व निखरता है।

बहस बढ़ती ही गयी। यों कोई बहस की बात न थी, लेकिन स्वतंत्रता ने सबकी गंभीरता हर ली थी। सबको पागल बना रखा था। वनमाला अड़ गयी कि साटन का सूट ही यमुना पहनेगी। प्रोफेसर साहब उससे भी अधिक बच्चे बन गये। वे यह मानने को ही तय्यार न हुए कि इस समय बगैर प्याजी साड़ी पहने यमुना कहीं जा भी सकती है। अंततः फैसला खुद यमुना पर ही छोड़ा गया। यमुना पहले से ही निर्णय किये बैठी थी। बोली, "मुझे यह भारी भरकम सूट अच्छा नहीं लगता। मैं तो साड़ी ही पहनूँगी।"

प्रोफेसर साहब ज़ोर से हँसे। देर तक हँसते रहे। इतनी ज़ोर से हँसे कि वनमाला के सर में दर्द होने लगा और यकायक इतना दर्द बढ़ गया कि उसने घूमने जाने का इरादा ही छोड़ दिया। उसके यह घोषणा करते ही यमुना और प्रोफेसर साहब दोनों गंभीर हो गये। यमुना सोच ही रही थी कि मैं भी जाने को मना कर दूँ; तब तक बैरिस्टर सिनहा की ड्राइंग-रूम से आवाज़ आयी, "अरे वर्मा! बड़ी देर कर दी। जल्दी चलो नहीं तो भीड़ के मारे रास्ता मिलना असंभव हो जायगा।"

बैरिस्टर साहब की जल्दी में न प्रोफेसर साहब को वनमाला को मनाने का मौका मिला न यमुना को घर पर रुक कर भाभी का क्रोध शांत करने का। यमुना ने दबी जबान से कहा भी कि मैं न जाऊँ लेकिन बैरिस्टर साहब ने प्यार भरी फटकार सुनायी कि रोज़ रोज़ यह सीन देखने को थोड़े ही मिलेंगे। दरअस्ल यमुना का जी खुद ही न चाहता था कि आज के राग-रंग छोड़े जायँ। वह बेचारी दुविधा में पड़कर चली गयी।

यमुना चली तो गयी जरूर लेकिन उसके सारे आनन्द पर पानी फिर गया। उसे चार महीने की बात याद आयी जब कि वनमाला ने उसे प्रोफेसर साहब के साथ मीटिंग में जाने से अकारण ही रोक दिया था। इधर फिर वनमाला का जैसा मधुर व्यवहार हो गया था उससे उसने यह नतीजा निकाला था कि उस दिन वैसे ही किसी बात पर नाराज़ रही होंगी। लेकिन आज पूरी हँसी-खुशी के बाद भी अचानक यह क्या हो गया! क्या भाभी सिर्फ इसीलिए नाराज़ नहीं हो गयीं कि मैंने भाई साहब की पसंद की चीज़ पहन ली। स्त्रियाँ एक दूसरे की शक की निगाहों को बहुत जल्द पहचानती हैं। शायद उनमें जन्म से ही ऐसी शक्ति होती है। यमुना को अब याद आने लगा कि यह क्रम तो कई महीनें से चल रहा है कि मैं जब-जब भी भाई साहब से बोलती हूँ तो भाभी की भौंहें तन जाती हैं। उसका हृदय यह सोचते-सोचते धड़कने लगा। प्रोफेसर साहब बाहर आकर नये-नये तमाशों में वनमाला की बात बिल्कुल भूल गये थे। घर से चलते समय भी उन्हें इसका कोई खास ख्याल न हुआ था। इधर कई महीनों से वनमाला कुछ अजीब-अजीब बातें करने लगी थी। पहले तो प्रोफेसर साहब को इसकी चिंता भी रहती थी, लेकिन इधर तो उन्होंने समझ लिया था कि वनमाला को कोई शारीरिक कष्ट है। आज की घटना से उनका पक्का इरादा हो गया था कि वनमाला को किसी अच्छे डाक्टर को दिखा दिया जायगा और उसकी राय होगी तो पहाड़ पर भेज दिया जायगा। लेकिन इसके लिए आज का प्रोग्राम' 'स्पाइल' करने की क्या जरूरत है। वनमाला का दुर्भाग्य कि ऐसे उम्दा मौके पर तबियत खराब कर बैठी।

यमुना प्रोफेसर साहब की तरह इत्मीनान से नहीं रह सकती थी। उसकी बोटी बोटी काँप रही थी। स्वतन्त्र भारत के नागरिकों का आमोद प्रमोद उसे

पागल बनाये दे रहा था। वह बार-बार अपनी जार्जेट की सारी की ओर देखती और उसे गुस्सा आता कि क्यों इस कमबख्त को पहना। इसी के मारे यह मुसीबत आयी है। हे भगवान ! अब न जाने क्या होगा।

प्रोफेसर साहब और बैरिस्टर साहब आज डटकर घूमने के पक्ष में थे, लेकिन यमुना ने जल्दी डाली कि वापस चलिए, मालूम नहीं भाभी की तबियत कैसी होगी। उन दोनों ने उसे बहुत समझाने की कोशिश की कि भाभी की तबियत कैसी होगी। उन दोनों ने उसे बहुत समझाने की कोशिश की कि भाभी की तबियत कोई खास खराब नहीं है और ज्यादा खराब होगी भी तो वे टेलीफोन करके डाक्टर को बुला लेंगी, लेकिन यमुना न मानी और प्रोफेसर साहब को भी मजबूर होकर साढ़े आठ बजे ही घर वापस आ जाना पड़ा।

घर आते ही यमुना सीधी वनमाला के कमरे में पहुँची। गर्मी काफी थी, लेकिन वनमाला अँधेरे में चुपचाप पलंग पर पड़ी थी। सिरहाने स्टूल पर हमेशा की तरह पंखा रखा था, लेकिन वनमाला ने उसे खोला भी न था। यमुना ने स्विच दबाकर रोशनी की। वनमाला ने उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखा। यमुना धड़कते दिल से उसके पास आकर बोली, "भाभी जी कैसा है ?"

"कोई खास बात नहीं। ठीक है," रूखे स्वर में वनमाला बोली।

"गर्मी बहुत है, पंखा खोल दूँ ?"

वनमाला चुप रही। यमुना ने पंखा खोल दिया और चुपचाप उसके सिरहाने बैठकर उसका सिर दबाने लगी। वनमाला अपने माथे से उसका हाथ हटाकर बोली, "मेरे सर में दर्द नहीं हो रहा है। दबाने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

यमुना का कलेजा मुँह को आने लगा। उसका संदेह सही साबित हो रहा था। वह चुपचाप बैठी रही। उसकी यह भी हिम्मत न हुई कि भाभी से माफी माँगकर उसे शांत कर दे। गुमसुम यों ही बैठी रही।

वनमाला खीझकर बोली, "जाओ कपड़े बदलो, खाना खाओ। क्यों मेरी खोपड़ी पर सवार हो ?"

यमुना घबराकर उठी, चौथाई मिनट तक वनमाला को घबराई नज़रों से देखती रही। फिर धीरे-धीरे पैर रखती हुई बाहर चली गयी।

प्रोफेसर साहब बारामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठे थे। यमुना उनके पास जाकर धीरे से बोली, "भाभी को देख आइए। उनकी तबीयत ठीक नहीं हुई। अंदर पलंग पर पड़ी है। नाराज मालूम होती है।"

प्रोफेसर साहब ने सर उठाकर देखा। हैरानी से बोले, "क्या? क्या कह रही हो? बीमार हैं। नाराज़ मालूम होती हैं। साफ़-साफ़ कहो। किससे नाराज़ हैं?"

"कुछ नहीं। मुझे मालूम हुआ कि शायद नाराज़ हों," कहती हुई यमुना चली गयी।

प्रोफेसर साहब अंदर गये। उनकी समझ में आज की रहस्यमय बातें आ ही नहीं रही थीं। वनमाला का अचानक बीमार हो जाना, यमुना का अजीब बर्ताव। वे चक्कर में थे।

उनके पैरों की चाप सुनकर वनमाला ने दूसरी तरफ़ मुँह फेर लिया। प्रोफेसर साहब अंदर गये और वनमाला के माथे पर हाथ रखकर पूछा, "कैसी तबियत है वनमाला! बुखार तो नहीं मालूम होता। सर में दर्द अभी तक है क्या? चलो डाक्टर को दिखा लाऊँ।"

"मेरी तबीयत बिल्कुल ठीक है। दिखाने-विखाने की कोई जरूरत नहीं है," वनमाला गुर्राती हुई सी बोली। पति का हाथ उसने अपने सर से हटा दिया।

प्रोफेसर साहब समझ गये कि पारा चढ़ा है। वे मनाते हुए बोले, "तो उठो। बाहर खुली हवा में आओ। यहाँ गर्मी में क्यों पड़ी हो। चलो खाने का समय भी हो गया है। चलो उठो।" यह कहकर वे उसका हाथ पकड़कर उठाने लगे।

लेकिन वनमाला ने उनका हाथ झटक दिया और झुँझलाकर बोली, "मुझे परेशान न करो। मैं खाना नहीं खाऊँगी। भूख नहीं है।"

प्रोफेसर साहब कुर्सी खींचकर बैठ गये। कुछ देर बाद धीमे से बोले, "आखिर क्यों नाराज़ हो? कुछ पता तो चले। बताओ क्या बात हुई?"

वनमाला चुप-चाप पड़ी रही।

प्रोफेसर साहब ने फिर कहा, "तुम आज रोशनी देखने भी नहीं गयीं।

आज की सजावट देखने के काबिल थी। ऐसी चीज़ें बार-बार देखने को थोड़े ही मिलती हैं।

वनमाला ने करवट बदलकर इधर मुँह फेरा। प्रोफेसर साहब उसे देखकर चौंक पड़े। घृणा और क्रोध ने उसकी मुखाकृति को अत्यन्त विकृत कर दिया था, चेहरा लाल हो रहा था और आँखों से क्रुद्ध सर्पिणी की आँखों की भाँति ज्वालाएँ निकल रही थीं। आधे मिनट तक वह प्रोफेसर साहब की ओर ऐसे ही देखती रही, फिर झटके के साथ उठकर बैठ गयी। वह बुरी तरह हाँफ रही थी। प्रोफेसर साहब एक बार फिर चौंक पड़े।

आँखों से अंगारे बरसाती हुई वह बोली, "मैं नहीं गयी तो क्या हुआ? तुम तो मौज उड़ा आये। अब तुम्हें मेरे मरने-जीने की क्या फ़िक्र है? क्यों मेरा सर खा रहे हो?"

प्रोफेसर साहब संयत स्वर में बोले, "लेकिन आखिर बात क्या है?"

वनमाला फुफकारती हुई सी बोली, "मेरे सामने बनते हुए शर्म नहीं आती? बात क्या है। अपनी लाड़ली से जाकर क्यों नहीं पूछते क्या बात है?"

प्रोफेसर साहब ने हैरान होकर कहा, "क्या बकती हो? कौन लाड़ली?"

"वही तुम्हारी यमुना, जिसे देखकर तुम्हारे मन की कली खिल जाती है, जो तुम्हारे बूढ़े दिल को जवान बनाये दे रही है, जिसके बनाव-चुनाव में तुम सारी कारीगरी खर्च कर देना चाहते हो और जो तुम्हारी पसंद के लिए सारी दुनिया ठुकरा सकती है।"

प्रोफेसर साहब वनमाला की पूरी बात नहीं सुन पाये। यमुना का नाम सुनते ही उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मेरे सर पर चट्टान गिर पड़ी है। उनकी आँखों के सामने जमीन उठकर आसमान की ओर जाने लगी और छत नीचे-ऊपर होने लगी। आसपास की चीजें घूमती हुई मालूम होने लगीं। वे स्तंभित से बैठे रहे और भावशून्य दृष्टि से अपनी पत्नी की ओर देखते रहे। कुछ देर में वे कुछ स्वस्थ हुए तो बोले, "तुमने यह वाहियात बातें कहने के पहले यह भी सोचा कि यमुना मेरी बहिन है।"

"क्या कहने हैं ऐसी बहिन के!" वनमाला ज़हर भरी हँसी हँसकर बोली "अजी हज़रत अगर रहने के लिए शानदार बंगला और उसे घुमाने के लिए

कार न होती तो दोनों बहिन-भाई किसी पार्क में पकड़े जाते और जेल में बंद होते।……और क्या तुमने खुद ही नहीं कहा है कि वह तुम्हारी बहिन सिर्फ कहने भर के लिए है, तुम उसे बहिन नहीं मानते हो?"

प्रोफेसर साहब ने भवें टेढ़ी करके कहा, "उसे यहाँ लाया कौन है? तब मेरे पीछे पड़कर उसे यहाँ घसीट लायीं और अब ऐसी बातें कहती हो। उसे भी न घर का रखा न घाट का और मेरे मुँह पर भी कालिख लगाने की तय्यारी है। क्या कहने हैं आपके!"

"हाँ मैंने ही यह आस्तीन का साँप पाला है। लेकिन कालिख तो तुम खुद अपने मुँह में लगा रहे हो। तुम्हें अपने सफेद बालों का भी ख्याल नहीं है।"

कुछ देर खामोशी रही। दोनों हृदयों में क्रोध का ज्वार आया हुआ था। अन्त में प्रोफेसर साहब ने कहा, 'तुमसे मुझे ऐसी नीचतापूर्ण बातें सुनने की आशा न थी।" और वे उठकर चले गये।

वनमाला जलती आँखों से उन्हें जाते देखती रह गयी।

---

१०. मन का शैतान

वनमाला रात भर बिस्तर पर बेचैनी से करवट बदलती रही। प्रोफेसर साहब जब उसे मनाने गये थे तो उसने सोचा था कि यह झूठ-मूठ की सफाई देने आये हैं और मुझे इनकी बातों में न आना चाहिए। उसे केवल क्रोध था, वास्तविक अर्थ में क्रोध। इससे पहले भी उसकी भवें कई बार तनी थीं, उसके शब्द कटु निकले थे, किन्तु उसे सचमुच क्रोध कभी न आया था। बहुत कुछ वह केवल दिखाने के लिए क्रोध करती थी। उसका ऐसा करने में कोई न कोई उद्देश्य होता था। लेकिन इस बार उसे नितांत क्रोध था। वह इसकी झोंक में यह भी भूल गयी थी कि मैं चाहती क्या हूँ। उसने बस यही सोचा था कि मुझे कोई भी समझौता नहीं करना है। क्या करना है, इतना सोचने-समझने का उसके पास दिमाग ही न रह गया था।

लेकिन प्रोफेसर साहब के उठकर चले जाने के बाद वह निढाल होकर पलंग पर गिर पड़ी। उसे मालूम हुआ कि जैसे किसी ने उसके शरीर से जीवन शक्ति खींच ली है। अभी तक सर में खून के तेजी से दौड़ने के कारण केवल सन-सन हो रही थी, अब दर्द और धमक भी होने लगी। गुस्सा उतरने की तो कोई बात ही न थी, लेकिन अब गुस्से के साथ ही खीझ, कष्ट और विवशता ने भी जगह कर ली। उसकी आँखों से आँसुओं की धार बहनी शुरू हो गयी।

वह सोचने लगी कि वाक़ई अब प्रोफेसर साहब मुझे बिल्कुल नहीं चाहते। अगर ऐसा होता तो मुझे समझाने-बुझाने के बजाय खुद ही क्यों तुनक कर उठ जाते। यही नहीं, खाने के लिए भी एक बार नौकर को भेज कर रस्म पूरी कर दी और बस। ठीक है, उन्हें अब मेरी चिंता ही क्या है। उन्हें तो अच्छा ही लगेगा अगर मैं रो-रोकर मर जाऊँ।

उसे अपनी दिवंगता माँ की याद आयी। शादी का उन्होंने कितना विरोध किया था, लेकिन मैं अपनी ज़िद पर ही कायम रही। उनकी बात मान लेती तो आज काहे को यह दिन देखने को मिलता। जिस आदमी के लिए मैंने अपनी

स्नेहमयी माँ का प्यार छोड़ा उसी ने मुझे ऐसा धोखा दिया। उसके दिल में बड़े जोर की टीस उठी। आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। वह जोर से रोकर कहने लगी, "मम्मी! तुम जहाँ भी हो मुझे क्षमा करो। तुम्हारा कहना न मान कर, तुम्हारा दिल दुखा कर मैंने उसकी खूब सज़ा पा ली।"

सुबह चार बजे के करीब उसे नींद या अर्ध-मूर्छा सी आ गयी। सुबह सात बजे जब यमुना उसके लिए स्वयं चाय लेकर आयी तो भी वह पलंग पर उल्टी-सीधी पड़ी थी।

पैरों की चाप सुनकर उसकी नींद टूटी तो सामने यमुना चाय का प्याला लिए दिखायी दी। अभी उसकी कुछ अच्छी तरह समझ में भी नहीं आया था कि यमुना बोली, "भाभी, चाय लीजिए।"

वनमाला चुपचाप उठ बैठी और प्याला ले लिया। जल्दी से उसे खत्म करके बोली, "एक प्याला और ले आओ।"

यमुना को आश्चर्य हुआ। वह तो कुछ और ही सोचकर आयी थी, लेकिन यहाँ तो कुछ और ही हुआ। न डाँट फटकार, न चीख-पुकार। जैसे कोई बात ही नहीं हुई। यह भी नहीं कहा कि तुम खुद ही क्यों चाय लायी हो, नौकर को क्यों नहीं भेजा।

यमुना के जाने के बाद वनमाला को पश्चात्ताप ने घर दबाया। वह सोचने लगी कि मेरी अक्ल मारी गयी है क्या? यह भोलीभाली लड़की मेरी छाती पर पैर रखने की बात सोच ही कैसे सकती है? मैंने इसे क्यों लांछन लगाया? यह अपने मन में मेरे लिए क्या सोचती होगी? जो कुछ हुआ भी उसमें इसका क्या दोष है? प्रोफेसर साहब की आँखें पलट भी जायँ तो यह तो मुझे कभी धोखा नहीं दे सकती? कैसा नीच विचार है··· छिः छिः·········।"

उसने सोचा कि यमुना को खुश करना जरूरी है। जब यमुना दूसरा प्याला लेकर आयी तो वनमाला ने मुस्कुराकर कहा, "क्यों, उदास क्यों हो? रात भर जागी हो क्या?"

"जी नहीं। मैं उदास नहीं हूँ," यमुना ने मरी मुसकराहट के साथ कहा?

वनमाला अब चाहते हुए भी और कुछ बात न कर सकी। उसका जैसे

अपने मस्तिष्क पर अधिकार ही नहीं था। चुपचाप चाय पीती रही। यमुना सर झुकाये बैठी रही।

"भाभी! आप नाराज़ न हों तो एक बात कहूँ" यमुना सर झुकाये हुए ही बोली।

"कहो," वनमाला ने धड़कते हुए दिल से कहा।

"अब मैं यहाँ से जाना चाहती हूँ। अम्माँ के पास ही......।"

"हिश्त पगली," वनमाला ने अपने पर काबू पाकर डाँटा, "तुझे इन बातों से क्या मतलब?"

यमुना ने हैरान होकर वनमाला की ओर देखा और झिझकते हुए बोली, "लेकिन ऐसी हालत में मेरा यहाँ रहना कैसे हो सकता है।" उसकी आँखों में रोकते-रोकते आँसू छलछला आये। गला साफ़ करके वह बोली, "सब लोग मुझी को......।"

फिर बात काटकर वनमाला बोली, "तुम्हें कौन दोष देगा जब मैं कुछ नहीं कहती। मैंने तुमसे कुछ कहा है?"

यमुना और भी हैरान हुई। उसने कहना चाहा कि आप कहती नहीं हैं तो समझती तो हैं, यही क्या कम है? लेकिन उसकी हिम्मत साफ-साफ कहने की न हुई। वह बोली, "आपके न कहने से क्या होता है? आप दोनों में झगड़ा रहेगा तो कहने वाले कहेंगे ही। नौकर-चाकर अभी से खुसर-पुसर करने लगे हैं। मैं यहाँ कैसे रह सकती हूँ?"

"तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा," वनमाला मुस्कुरा कर बोली, "तुम्हारे लिए मैं सब कुछ करूँगी। झगड़ा-वगड़ा कुछ न रहेगा। नौकर-चाकर सब ठीक कर दिये जायेंगे। तुम फ़जूल बातें न सोचा करो। चलो।" कहकर वह ग़ुसलखाने की तरफ़ चली गयी।

यमुना भी खोई-खोई-सी उसके पीछे कमरे के बाहर चली गयी।

प्रोफेसर साहब ने भी रात का अधिकतर भाग टहलते हुए बिताया था। उन्हें अपने आस-पास की सारी चीज़ों से एक-बारगी घृणा हो उठी थी। उन पर यह वार इतना अचानक हुआ था कि उनका सहज गंभीर हृदय भी स्थिर न रह सका। उन्होंने कितना सोच-समझकर अपनी शादी का चुनाव किया

था। लेकिन वनमाला भी अपढ़ गँवार स्त्रियों की भाँति ही निकली। उनकी हालत उस व्यक्ति की-सी हो रही थी जो किसी धनराशि को दिल से अपनी समझ कर उपयोग में ला रहा हो और जिसे अचानक पलक मारते ही उससे वंचित कर दिया जाय। उनकी समझ ही में न आ रहा था कि वनमाला को क्या किया जाय।

नाश्ते के समय वनमाला ने फ़जूल ही उनका इन्तजार किया। उन्होंने नौकर से अपने पुस्तकालय ही में नाश्ता मँगवा लिया था। वनमाला ने उनके बगैर ही नाश्ते का समय हँसी-खुशी से बिताने की कोशिश की, लेकिन यमुना की मनहूसियत और जबर्दस्ती की हँसी ने मज़ा बिगाड़ दिया। लाचार वनमाला को मधु से ही छेड़-छाड़ करनी पड़ी।

नाश्ते के बाद वह सीधी पुस्तकालय में गयी। हँसते हुए उसने प्रोफेसर साहब से पूछा, "आज यहाँ क्यों नाश्ता किया? वहाँ क्या कोई भगा देता?"

प्रोफेसर साहब का जी और जल गया। वे मुँह फेरकर बोले, "यहीं कर लिया तो क्या हुआ?"

वनमाला ने कुर्सी के हत्थे पर बैठकर उनकी गर्दन में हाथ डाल दिया और बोली, "मुझे माफ़ कर दो। कल मैंने तुम्हें बड़ी कड़ी बातें कह दीं। बाद में मुझे बड़ा अफसोस रहा।"

प्रोफेसर साहब कुछ देर चुप रहकर बोले, "मुझे बिल्कुल ख्याल नहीं था कि तुम्हें ऐसा शक है। नहीं तो ......।"

वनमाला दुलारते हुए बोली, "अब खत्म करो उस बात को। मेरा तो यों ही दिमाग खराब हो गया था। मैं तो माफ़ी भी माँग चुकी। माफ़ न किया हो तो जो चाहो सजा दे लो। लेकिन उस बात का ख्याल दिल में न रखो, भूल जाओ।"

उस दिन प्रोफेसर साहब यूनीवर्सिटी न गये। घंटों तक पति-पत्नी में बातें होती रहीं। मालूम होता था कि शादीवाले दिन फिर लौटकर आ गये हैं। पिछली रात की जगाई इस समय असर दिखा रही थी। दोपहर को खाना खाने के बाद जो सुलाई शुरू हुई तो शाम की खबर ली।

यमुना कालेज से लौटी तब भी दोनों सो रहे थे। वह सोच ही रही थी कि

क्या किया जाय ? उसका मन आज पढ़ने में न लगता था और अन्यमनस्कता के कारण दो बार कालेज में उसे पर डाँट पड़ी थी, लेकिन चाय पर जब सब लोग जमा हुए तो वातावरण ही बदला हुआ था। इतना घुल मिलकर नाश्ता करते तो उसने पहले भी इन दोनों को न देखा था। खैर, जो भी हो, उसके सर से बोझ उतर गया और वह भी खुलकर हँसने लगी। लेकिन उसके हृदय में रह-रहकर जैसे कोई कह जाता था कि इस शान्ति के पीछे भयंकर तूफ़ान छिपा हुआ है। यह चकाचौंध करनेवाला प्रकाश बिजली की दमक है, क्षण भर के बाद वही घटाटोप अँधियारी छा जायगी।

जीवन-क्रम फिर चलने लगा, लेकिन कुछ बहुत ही हलके परिवर्तन के साथ। वनमाला यमुना और प्रोफेसर साहब दोनों के प्रति व्यक्तिगत रूप से पहले से अधिक सहिष्णु हो गयी। यमुना वनमाला के पास अधिक से अधिक रहने लगी और प्रोफेसर साहब से कम से कम बोलने लगी। वह नहीं चाहती थी कि फिर वनमाला के 'दिमाग खराब होने" का मौका आये। धीरे-धीरे उसकी मनःस्थिति में इस बचाव की प्रतिक्रिया इतनी मज़ेदार हो गयी कि उसे प्रोफेसर साहब से डर लगने लगा। उन्हें दूर से आता देखकर उसका हृदय धड़कने लगता और वह सोचती कि ऐसा तो नहीं है कि यह पास आकर मुझे दबोच लें और...... । वह घबराकर इधर-उधर देखती और तभी आश्वस्त होती जब कि आस-पास कोई नौकर होता या खुद वनमाला ही होती। कुछ महीनों में तो यह हाल हो गया कि वह प्रोफेसर साहब के चित्रों से भी डरने लगी जैसे कि वे चित्र साकार होकर उसे अपने चंगुल में फँसा लेंगे, मसल देंगे।

यमुना के स्वभाव परिवर्तन को वनमाला तो लक्ष्य करती ही क्या, प्रोफेसर साहब भी न कर सके। उनका खुद यह हाल हो गया था कि यमुना के सामने आते ही उनकी आँखें नीची हो जातीं और वे लम्बे-लम्बे डग भरते हुए निकल जाते। सबसे ज्यादा मुसीबत चाय और शाम के खाने के वक्त आती। उस समय मेज़ पर सब लोग इकट्ठे होते। वनमाला चाहती कि पहले जैसी हँसी खुशी की बातें हों। यह दोनों भी एक दूसरे की ओर देखे बग़ैर अपने को सहज स्वाभाविक दिखाते, लेकिन कुछ बनती नहीं थी। बाद में अक्सर यह होने लगा कि इन मौकों पर भी या तो यमुना या प्रोफेसर साहब खुद ही अलग रहने

लगें। कभी उन्हें ही इतना आवश्यक अध्ययन करना होता कि पुस्तकालय में ही नाश्ता और खाना पहुँचाया जाता। कभी यमुना को खाने के समय भूख न लगती और वह बाद में खाती या नाश्ता किसी क्लासफेलो के घर कर लेती। कभी-कभी दोनों ही मेज़ पर से गायब रहते।

प्रोफेसर साहब ऊपर से यमुना से जितना भागते उनका मन उतना ही और उसमें उलझता जाता। उसे देखते ही उनका हृदय धुक-धुक करने लगता और वे आँखें नीची कर लेते। लेकिन उसके आँखों के आगे से हटने पर भी उसकी मूर्ति उनकी निगाहों के आगे तैरती-सी रहती। यूनीवर्सिटी में पढ़ाते समय उन्हें यमुना का ख्याल आ जाता। दूर से गुज़रती हुई लड़कियों को देखकर उन्हें यमुना का ख्याल आ जाता। काफ़ी हाउस में काफ़ी पीते हुए प्याले से उठते धुएँ से यमुना की सूरत बन जाती। वे झुँझलाकर सोचते कि मुझे क्या हो गया है। लेकिन झुँझलाने से कोई राह न मिलती। उलझन बढ़ती ही जाती थी।

कुछ दिनों में उन्होंने अपने मन को समझा लिया। यमुना बहुत अच्छी लड़की है, बड़ी भोली-भाली। उससे घबराने की क्या ज़रूरत है। वनमाला का वाक़ई दिमाग़ खराब हो गया था। नहीं तो मुझ पर, जो उम्र में यमुना के बाप से भी ज्यादा उम्र का हूँगा, ऐसा वाहियात शक क्यों करती। उन्हें वनमाला पर तरस आने लगा, हँसी भी आयी। साथ ही उन्हें अपने पर भी हँसी आयी। वनमाला ने तो बेवकूफ़ी की ही है, मैं क्यों इतना बेवकूफ़ बन गया कि उससे ख्वाहमख्वाह भागने लगा। उन्होंने तो तय किया कि यह दिमाग़ी उलझन खत्म कर देनी चाहिए तभी हम सब का कल्याण है, नहीं तो ऐसी तनाव की हालत में कितने दिन कटेंगे।

चुनांचे उन्होंने यमुना से साधारण रूप से बातचीत शुरू कर दी। वे उसकी पढ़ाई-लिखाई और राजनीतिक कार्यों में फिर दिलचस्पी लेने लगे थे। हाँ अब वे पहले की भाँति उससे घुल-मिलकर नहीं, बल्कि बुजुर्गों जैसी गंभीरता से बातें करते। यमुना को भी उनका यह नया रवय्या बहुत पसंद आया और उसकी घबराहट खत्म हो गयी।

लेकिन शैतान दिल के किसी कोने में कुछ ऐसा छिपा बैठा रहता है कि जब

वह मौक़ा पाकर अचानक हमला करता है तो अच्छे-अच्छे मुँह के बल गिर पड़ते हैं। पहले जहाँ प्रोफेसर साहब के सामने यमुना का घबराया हुआ मुखमंडल रहता था वहाँ अब कुछ और रहने लगा। अब उनकी निगाहें यमुना के भोले भाले मुख तक ही सीमित न रहकर कुछ नीचे भी फिसलने लगीं।

कुछ दिनों में नयी परेशानी पैदा हो गयी। यमुना की मुस्कराहट से उनके शरीर में सनसनी पैदा होने लगी। चलते समय उसके अङ्ग सञ्चालन से उनका दिल धड़कने लगा। उसके उन्नत उरोजों पर निगाह जाते ही जैसे उन्हें नशा चढ़ आता हो, वे बहुत देर तक अपनी निगाहें हटा ही न पाते। बारीक रेशमी साड़ी जब तेज हवा में उसके शरीर से चिपक कर उसके सुडौल अंगों की झलक दिखा जाती तो उनकी प्रौढ़ावस्था और गंभीरता मुँह छिपा लेती।

उनकी निगाहों की इस तब्दीली पर यमुना और वनमाला दोनों का ध्यान गया। पुरुष की बदली हुई निगाहें पहचानने में स्त्रियों को ज़रा भी देर नहीं लगती। यमुना की घबराहट, जो कुछ दिनों के लिए खत्म हो गयी थी, फिर दूने जोर से पैदा हो गयी। लेकिन अब शायद प्रोफेसर साहब अपना आपा खो चुके थे। अब वे उससे भागने की बजाय उसे अधिक से अधिक देखने और उसके पास रहने का प्रयत्न करने लगे थे। इस खींचातानीमें स्थिति वनमाला के सामने और स्पष्ट हो गयी और उसकी भँवें फिर तनी रहने लगीं।

वनमाला की उलझन बढ़ गयी। वह यह बिलकुल नहीं चाहती थी कि यमुना को उसके घर से ऐसी हालत में जाना पड़े जब कि उसकी जिंदगी की एक भी मंज़िल पूरी नहीं हुई थी। अगर उसे अपने पैरों खड़े होने के योग्य होने के पहले ही यहाँ से हटना पड़ा तो बड़े शर्म की बात होगी। यह वनमाला के मान-अपमान का सवाल था। लेकिन अब किया क्या जाय। प्रोफेसर साहब के तो रङ्ग-ढङ्ग ही निराले हो रहे हैं। इनसे क्या कहा जाय? कहने से भी वे क्या मान जायँगे? फिर क्या झगड़े की जड़ यमुना को ही दूर कर दिया जाय? लेकिन यह अपनी माँ के पास जाकर क्या करेगी? कितना धक्का इसे लगेगा! जब तक यहाँ नहीं आयी थी, अपनी किस्मत पर सब्र किये बैठी थी। अब फिर उसी अन्धेरे में इससे कैसे रहा जायेगा। खुली जिंदगी तो इसने पहले देखी ही न थी। इसके बारे में इसे कोई ख्याल ही न था। लेकिन अब तो वह बात

नहीं रही। अब तो माँ के पास यह घुट-घुटकर मर जायेगी। हे भगवान ! कैसी उलझन पड़ गयी।

वनमाला फिर उदास और खीझी-खीझी-सी रहने लगी। उसकी निगाहें हमेशा अपने पति की ओर ऐसी ही लगी रहती थीं जैसी पुलिस अधिकारियों की नम्बरी बदमाशों की तरफ़। उसे यह देखकर बड़ी परेशानी होती कि प्रोफेसर साहब अपने नये पागलपन में नौजवानों को भी मात किये दे रहे हैं। वे यमुना की ओर ऐसे देखते जैसे कि उसे पी ही जायेंगे। तरह-तरह की हँसी-मज़ाक़ की बातें करके उसका दिल खुश करने की कोशिश करते, उसकी ज़रा-ज़रा-सी आराम-तकलीफ का पूरा ध्यान रखते और वनमाला से जाजिबी-वाजिबी, रस्मी तौर पर हँसते-बोलते, जिसमें दिखावा साफ झलक जाता।

यमुना की दोनों ओर से मुसीबत थी। वह भाभी और भाई साहब दोनों की नज़रों से डरने लगी थी। एक की आँखों से क्रोध की लपटें निकलतीं, दूसरे से वासना की। वह इस स्थिति से खीझ उठी थी। कई बार उसने सोचा कि बगैर किसी से कुछ कहे सुने घर से भाग जाऊँ, फिर भाग्य में जो कुछ होगा देखा जायगा। अगर यह नहीं तो भाभी से साफ़-साफ़ कह दूँ कि अब मेरा गुज़ारा नहीं हो सकता। लेकिन भाभी के सामने आते ही उनकी आँखों की नफ़रत और चिढ़ की आग से वह झुलस कर गश खा जाती। उसके होंठ जम जाते और वह कुछ भी न कह पाती। वह अपना अधिक से अधिक समय पार्टी के काम में देने लगी अधिक से अधिक समय घर के बाहर रहने लगी, लेकिन बाहर रहने की भी तो कोई हद होती है। जब भी घर आती उसे प्रोफेसर साहब की खोजती हुई निगाहों से दो-चार होना पड़ता और उसके पीछे वनमाला की जलती निगाहें। हमेशा डर रहता कि कहीं विभ्राट न हो पड़े।

और एक दिन सचमुच विभ्राट हो ही गया। वनमाला अधिक दिनों तक बर्दाश्त न कर सकी। उसने तय कर लिया कि प्रोफेसर साहब से सहूलत से बातें कर ही ली जायँ। उस रोज़ इतवार था। दोपहर का खाना खाने के बाद वह प्रोफेसर साहब के पास पुस्तकालय में गयी। उसने कहा, "आपका हर्ज न हो और आप बुरा न मानें तो आप से एक बात कहूँ जो बहुत दिनों से कहना चाहती थी।"

प्रोफेसर साहब का दिल धड़कने लगा। वे जबर्दस्ती मुसकराकर बोले, "कहो।"

"देखिए बुरा न मानिएगा। आपका रवय्या यमुना के प्रति अजीब सा होता जा रहा है। इसका बड़ा बुरा असर पड़ता है। और तो और, नौकर-चाकर तक बदनामी ...... ।"

चोर की चोरी पकड़ी जाने पर डर तो लगता ही है, खीझ भी बढ़ जाती है और वह उचित-अनुचित हर तरीके से अपनी चोरी छिपाने का प्रयत्न करता है। प्रोफेसर साहब एक दम भभक उठे, "तुम्हारा तो दिमाग खराब हो गया है। कैसा हो गया है मेरा रवय्या ?"

वनमाला ने एक क्षण स्तंभित होकर उनकी ओर देखा। फिर अपने स्वर को संयत करके बोली, "बिगड़ने की बात नहीं है। एक दफे को मान लिया कि आपके दिल में कोई पाप नहीं...... ।"

प्रोफेसर साहब फिर बिगड़े, "एक दफे को मान लिया! यानी वैसे तो मेरे दिल में पाप है ही। लेकिन एक दफे को मान लिया कि नहीं है। दिल का हाल तो आप खूब पढ़ लेती हैं।"

"आप तो बात ही नहीं करने देते," वनमाला कुछ गर्म होकर बोली।

"बात क्या करने दूँ ? फ़जूल की बातों के लिए मेरे पास वक्त नहीं है ?"

अब वनमाला से जब्त न हुआ। वह बिगड़ कर बोली, "हाँ मेरी बात सुनने के लिए वक्त नहीं है। उसकी चटक-मटक घंटों देखने के लिए वक्त है। शर्म नहीं आती इस लफ़ङ्गेपन पर।"

"बंद करो यह बकवास" प्रोफेसर साहब चीखे।

"हर्गिज नहीं बंद करूँगी। मैं तो खूब चीख-चीख कर कहूँगी। तुम्हारी इज्ज़त का जितना ख्याल करती हूँ, उतना ही तुम दोनों मेरे सीने पर पैर रखते चले आते हो। वह हरामज़ादी भी खूब तुम पर डोरे डाल रही है और तुम भी खूब छैले बनते जा रहे हो। बहुत हो चुका, अब यह सब न चल सकेगा," वनमाला गुस्से में अनाप-शनाप बकती चली गयी।

इतने में ही यमुना ने प्रवेश किया। पति-पत्नी दोनों उसे देखकर चौंक उठे। यमुना का यह रूप सर्वथा नया था। उभरा हुआ सीना, तनी हुई गर्दन,

फूले नथुने, आग बरसाती हुई आँखें। वह कोई किताब लेने प्रोफेसर साहब के पास आ रही थी। दरवाजे के पास बातचीत सुनकर रुक गयी थी। इस समय वह भी आखिरी फैसला कर डालने की नियत से आयी थी।

इस कमरे में दो ही कुर्सियाँ थीं इसलिए वह मेज़ पर ही टिक गयी और वनमाला को घूरते हुए बोली, "बस कीजिए भाभी। कलह न बढ़ाइए। मैंने पहले ही जाने को कहा था, तब तो लाड़ चुपड़ा था। अपने ऊपर भी मुझे साफ-साफ लांछन लगवाना था? इसीलिये आपकी बातों में आ गयी। नहीं तो चैन से माँ के पास होती। आधी रोटी ही मिलती, लेकिन बेगुनाह मुँह में कालिख तो न लगती। दूसरे की रोटियाँ खाकर सब कुछ बर्दाश्त करना पड़ता है। आपके तर माल आपको मुबारक रहें। मेरी रूखी-सूखी ही भली। कल यहाँ से चली जाऊँगी।"

यमुना के मुँह से ठेठ मध्य-वर्गीय मानसिक ग्रन्थि शब्दों के रूप में फूटी पड़ रही थी। जन्म से लेकर अभी तक धन से खेलती हुई वनमाला के लिए यह खाने के अहसान का विचार इतना गया था कि वह बिल्कुल चकरा गयी। उसका गुस्सा हवा हो गया। बड़ी मुश्किल से वह सिर्फ यह कह सकी, "तो तुमने छिप कर हमारी बातें सुनी हैं। यह हरकत भी सीख गयी हो?"

यमुना ने कहा, "अब आपको मुझे शिक्षा देने की जरूरत नहीं···।"

इतने में डाकिए की आवाज आयी। यमुना उठकर गयी और एक पोस्टकार्ड लेकर वापस आयी। पोस्टकार्ड उसी के नाम था। उसने उसे एक नजर में पढ़ लिया। पढ़ते ही उसकी आँखें फटकर रह गयीं। एक क्षण बाद वह "हाय अम्मा," कह कर गिरी तो बेहोश······।

वनमाला और प्रोफेसर साहब दोनों झपट कर बढ़े। वनमाला ने यमुना को उठाया प्रोफेसर साहब ने कार्ड को। एक नजर में उसे पढ़कर वे सूखे स्वर में बोले, "यमुना की माँ मर गयी।"

---

११. स्पष्टीकरण और भ्रम

पाँच दिन बाद, शुक्रवार के दिन रेडियो पर समाचार आया कि नाथूराम गोडसे नामक एक पागल ने महात्मा गाँधी को गोली मार दी और उनकी कुछ ही देर में मृत्यु हो गयी।

यों तो सारे भारत के पैंतीस करोड़ निवासियों के सर पर इस भयानक समाचार से वज्रपात हुआ और सारे देश पर रंज के बादल छा गये, लेकिन प्रो० जितेन्द्र वर्मा पर इसकी प्रतिक्रिया अत्यंत तीव्र हुई। कठोर शीत के बावजूद वे बेचैनी से ग्यारह बजे रात तक अपने बंगले के लान पर टहलते रहे। वनमाला को बापू की मृत्यु से दुःख न हुआ हो, ऐसी बात नहीं थी। वह भी इंसान थी, पत्थर नहीं। लेकिन इस सिलसिले में जब उसने पति से कुछ बात छेड़ी तो उनके चेहरे की झुर्रियों में इतनी गहराई और बड़ी-बड़ी आँखों में ऐसी घनीभूत वेदना दिखायी दी कि वह डर-सी गयी। उसने जो कुछ कहा था प्रोफेसर साहब सुन ही न सके। बात को समझे बगैर ही वे उसपर मुसकुरा दिये। उस मुसकुराहट में जितनी करुणा और व्यथा थी आँसुओं में शायद उसका दशमांश भी न मिलती। वनमाला ने इसके बाद कोई और बात करना मुनासिब न समझा और वापस घर में चली गयी।

प्रोफेसर साहब अकेले ही टहलते रहे। उनका हृदय फटा जा रहा था। बापू की मृत्यु का दुख तो था ही, लेकिन इससे भी बढ़कर आत्म-ग्लानि उनका दिल चीरे डाल रही थी। कुछ ही दिन पहले बापू ने भारत-पाकिस्तान के लेन-देन के झगड़े को निबटाने और भारतस्थित मुसलमानों की सुरक्षा के लिए एक बार फिर प्राणों की बाजी लगाकर अनशन शुरू कर दिया था। आत्म-बलिदान के इस यज्ञ में उन्हें पूरी सफलता मिली थी। उस समय देश की सारी प्रगतिशील शक्तियों ने उनका साथ दिया था और उनकी माँगों के लिए आंदोलन किया था। ऐसे काम में कम्युनिस्ट पार्टी कब पीछे रहनेवाली थी, उसने डट कर साम्प्रदायिक ऐक्य का आंदोलन शुरू कर दिया था।

प्रोफेसर साहब सोच रहे थे कि इतनी बातें हो गयीं लेकिन मैंने क्या किया ? कुछ भी नहीं। क्यों ? क्या मुझे इन बातों की खबर नहीं थी ? ऐसी बात तो नहीं है। अखबार तो रोज़ ही सामने आता था। फिर क्या इन बातों का कोई महत्व नहीं था ? यह भी कैसे कहा जाय। तो फिर यही बात थी न कि मुझ पर यमुना का जादू इतना चढ़ा था कि मैं सारी दुनिया को, अपने कर्तव्य को, सभी बातों को भूल गया था और कुत्ते की भाँति वासना के चक्कर में पागल होकर दौड़ता रहा। उफ़ ! जितेन्द्र तुम कुत्ते से भी बदतर हो। कुत्ते के लिए तो यही बात स्वाभाविक होती है। लेकिन तुम इतना ज्ञान अर्जन करके, इतनी उम्र पाकर भी इस श्वान प्रवृत्ति से आगे न बढ़ सके। और आज जिस समय कि नयी दिल्ली में भारत का भाग्य सितारा टूट रहा था, उस समय भी तुम क्या कर रहे थे ? तुम तब भी रेडियो सुनती हुई यमुना की ओर देख रहे थे। धिक्कार है तुम्हें ! धिक्कार है। हज़ार बार धिक्कार है।

वे सोच रहे थे कि महात्मा गांधी को भी कुछ-कुछ ऐसी ही स्थिति में आत्म-ग्लानि हुई थी। लेकिन उन्होंने इसी पश्चाताप में अपने गुनाह को सारी दुनिया के सामने रख दिया। क्या मुझमें भी ऐसी हिम्मत है ? फिर उनकी भूल का मेरे पाप से मुकाबला ही क्या ? उनकी उस समय अवस्था ही क्या थी ? और फिर वे थे भी कहाँ ? जहाँ रहने के लिए उन्हें हमेशा क्षमा किया जा सकता था। लेकिन मैं ? इस उन्चास वर्ष की अवस्था में मैंने क्या-क्या तमाशे किये और किसके पीछे मँडराता रहा ? जो अवस्था में मेरी आधी भी नहीं है। छिः छिः।

थककर चूर हो गये तो बिस्तरे पर गये। थकावट से अंग-अंग टूटा जा रहा था, लेकिन नींद कोसों दूर थी। दो घंटे तक करवटें बदलते रहे। न जाने किस प्रकार नींद आयी।

सुबह उठे तो सर भारी था। नाश्ता-खाना तो सब गोल था। सभी ने उपवास किया था। नौ-दस बजे तक बुखार भी चढ़ आया। पत्नी और बहन के हज़ार समझाने पर भी कार निकलवा कर मोतीमहल के पुल के पास गये, जहाँ श्रद्धालु जनता ने बापू की प्रतीकात्मक दाह क्रिया की थी। काँपते पैरों से उन्होंने अरथी को कंधा दिया और अग्नि संस्कार के समय गोमती के सीले तट पर घंटे भर बैठे रहे। धूल के बगूले उड़ाती हुई ठंडी हवा चल रही थी। लेकिन

प्रोफेसर साहब को न हवा की चिंता थी न आत्मीयजनों के समझाने-बुझाने की। बैठा नहीं गया तो वहीं किनारे के कगार से उठंग गये। चार बजे कार पर बंगले को वापस हुए तो बुखार और तेज़ हो गया था और रात होते-होते बेहोश हो गये। बुखार १०४° जा पहुँचा था।

स्वस्थ मनुष्य बीमार पड़ता है तो बुरी तरह से पड़ता है। प्रोफेसर साहब का बुखार एक हफ्ते में जाकर उतरा। डाक्टरों ने बताया कि इन्हें जबर्दस्त मानसिक धक्का लगा है। इससे किसी को आश्चर्य न हुआ। गांधीजी की हत्या का धक्का सिर्फ उन्हीं को नहीं लगा था। कई लोग तो इस समाचार को सुनते ही मर गये थे। यही खैरियत थी कि प्रोफेसर साहब को इतना गहरा धक्का नहीं लगा। यह सभी के लिए अच्छा हुआ। अगर और कोई मौक़ा होता तो लोग अटकलें लगाने की कोशिश करते और शायद कोई उनके मानसिक उद्वेग की तह तक पहुँचने में सफल भी हो जाता। इस वक्त ऐसा नहीं हुआ। उनकी बीमारी से भी उनकी इज्ज़त लोगों की निगाहों में बढ़ गयी।

यमुना बड़ी उलझन में पड़ी। माँ की मृत्यु के समाचार ने तो उसकी कमर ही तोड़ दी थी। उसके चेहरे की हँसी गायब हो गयी थी। अब उसको यहाँ रहना जरूरी हो गया था, जाती भी कहाँ। वनमाला ने अपने मान-अपमान का ख्याल न करके उससे माफी माँग ली थी। यही नहीं, वनमाला से सलाह करके प्रोफेसर साहब ने मुज़फ्फ़रनगर स्थित अपने एक वकील मित्र की मार्फ़त यमुना की पढ़ाई और शादी के खर्चों के लिए दोनों मकान बिकवाने का भी इंतज़ाम कर दिया था। अब तो उसे यहाँ रहना ही था।

लेकिन वनमाला के माफ़ी माँगने के बाद भी उसका जी इतना खट्टा हो गया था कि उसने प्रोफेसर साहब से ही नहीं, वनमाला से भी बातें करना बहुत कम कर दिया। उसके लिए जो पढ़ने का एक छोटा सा कमरा दिया गया था वहीं उसने अपना पलंग भी डलवा लिया और कालेज के अलावा अपना अधिकतर समय यहीं बिताने लगी। उसकी गंभीरता अचानक इतनी बढ़ गयी थी कि वनमाला भी उससे कुछ-कुछ डरने लगी थी।

फिर भी प्रोफेसर साहब की बीमारी में वह इतनी अलग-अलग न रह सकी। उसने जी-जान से उनकी सेवा-सूश्रूषा आरंभ कर दी, यहाँ तक कि एक हफ्ते तक कालेज भी नहीं गयी। वनमाला को रात को जबर्दस्ती सोने को भेज देती और रात भर प्रोफेसर साहब के सरहाने आरामकुर्सी पर बैठकर नावेल पढ़ती रहती। वनमाला से यह प्रस्ताव भी उसने अजीब आत्मविश्वास के साथ किया था। उसने जैसे इसकी परवा ही न की कि वनमाला इसका कुछ उलटा सीधा मतलब तो नहीं लगायेगी। रातभर बीमार की ज़रा-ज़रा सी आहट पर उठकर उसे आराम देना, सर में तेल लगाना, हाथ-पैर दबाना, समय पर दवा देना—और दिन में तीन-चार घंटे सोकर फिर अपना मामूली काम लिखाई पढ़ाई करना, यही उसका कार्यक्रम हो गया। इस कठोर परिश्रम का उस पर असर साफ़ था। आँखों के गिर्द गढ़े पड़ने लगे थे, गंभीरता अस्वाभाविक रूप से बढ़ गयी थी, चलने में पैर कांपने लगे थे। लेकिन इन सब के बावजूद चेहरे पर रूखापन आने की बजाय एक अजीब सी स्निग्धता आ गयी थी।

बुखार उतरने के बाद भी आठ-दस दिन तक प्रोफेसर साहब को आराम करना जरूरी हो गया। इस अरसे में भी यमुना ने उनकी सेवा में कोई कमी न की। प्रोफेसर साहब को इस बात पर ताज्जुब होता। उन्हें इसका कोई कारण न सूझता। वे सोचते कि कहीं यमुना भी तो अपने हृदय की गहराइयों में मुझे ·· ···। बात पागलपन की ज़रूर है कि लेकिन जब मैं ही बुढ़ापे में बहक गया हूँ तो यह तो लड़की है। ऐसा हुआ तो बड़ी मुसीबत आ जायगी। यह भूत जब सर पर चढ़ता है तो किसी के समझाने का असर नहीं होता है। बात आगे बढ़ी तो फिर क्या होगा? वनमाला तो मुसीबत ही कर देगी। यह कौन देखेगा कि मेरा कसूर नहीं है। फिर यही क्या ठीक है कि अपने स्वास्थ्य की बलि देकर जिस भूत को मैंने उतारा है वह फिर सर पर चढ़ बैठेगा। यमुना को किसी तरह समझाना ही पड़ेगा। लेकिन साफ़-साफ़ उपदेश देने से तो कोई फ़ायदा ही नहीं। वह मानेगी ही काहे को कि उसके दिल में कोई ऐसी बात है। तो पहले उससे उगलवाना चाहिए और फिर जड़ से इस मरज़ को दूर करना चाहिए।

बीमारी में दिमाग़ अजीब तरह से काम करता है। प्रोफेसर साहब ने यह बेतुका प्रयोग आरंभ कर दिया।

एक दिन रात के दस बजे यमुना उन्हें दवा देने आयी। वनमाला सो गयी थी। दवा पीने के बाद प्रोफेसर साहब बोले, "यमुना ज़रा देर बैठो। तुमसे मुझे कुछ बात करनी है।"

यमुना चकित सी बैठ गयी। प्रोफेसर साहब ने कहा, "तुमने आजकल मेरे पास आना कम क्यों कर दिया है। आज दिन भर हो गया, नहीं आयीं, इस वक्त आयी हो।"

यमुना का ताज्जुब और बढ़ा। क्या बात है? इधर तो यह बिल्कुल गंभीर हो गये थे।

क्या पुराना पागलपन फिर चढ़ रहा है? वह बोली, "कोई खास बात नहीं है। आज कुछ 'बिजी' रही।"

प्रोफेसर साहब ने आँखों में करुणा भरकर कहा, "नहीं, तुम्हारे बगैर मेरी तबीयत बिल्कुल नहीं लगती। तुम्हें नहीं मालूम कि मैं तुम्हें कितना प्रेम करता हूँ मेरी रानी!"

यमुना ने एक क्षण आँखें फाड़कर देखा फिर खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

प्रोफेसरी एक चीज़ है और ऐक्टर होना दूसरी। प्रोफेसर साहब ने अट्ठारह वर्ष के प्रेमी का जो अभिनय करना चाहा वह एकदम असफल रहा था। आवाज़ में प्रेम का कंपन नहीं था, बल्कि थानेदार जैसी झुड़क सी आ गयी थी। यमुना के तीक्ष्ण मस्तिष्क को यह समझते देर न लगी कि प्रोफेसर साहब का पुराना भूत फिर नहीं चढ़ा है, बल्कि उनका झक्की प्रोफेसराना दिमाग़ कोई नया मनोवैज्ञानिक प्रयोग करना चाहता है। वह जी भरकर हँसने के बाद बोली, "मुझे भी आपसे गहरा प्रेम है। आप जैसे भाई को कौन बहिन प्यार नहीं करेगी। लेकिन भाई साहब! आज यह ड्रामा आप क्यों कर रहे हैं? आराम से सोते क्यों नहीं।"

प्रोफेसर साहब बुरी तरह झेंप गये। खिसियानी हँसी-हँसकर बोले, "तुम बहुत होशियार हो यमुना। तुमने मेरी चोरी पकड़ ली। अब मुझे स्वीकार करना पड़ता है कि मैं तुम पर ग़लत तरीके से यह शक करता था कि तुम पर

वनमाला के पागलपन का ग़लत असर पड़ा है। और तुम्हारे दिल में मेरे बारे में कुछ पागलपन के ख्यालात पैदा हो गये हैं। मैं इस चीज़ को दूर करना चाहता था इसीलिए यह ड्रामा करने की ज़रूरत हुई। खैर अब मुझे खुशी है कि ऐसी कोई बात नहीं है। लेकिन फिर भी मेरी समझ में नहीं आता कि तुमने इतनी लगन और मेहनत से मेरी सेवा क्यों की जोकि शायद वनमाला के लिए भी संभव नहीं थी?"

यमुना गंभीर हो गयी। उसके चेहरे पर परेशानी सी झलकने लगी। लेकिन वह चुप रही।

प्रोफेसर साहब भवें चढ़ाकर बोले, "क्यों? क्या इसकी कोई न बताने लायक भी वजह हो सकती है। ऐसा हो तो जाओ। आराम करो जाकर।"

"जी नहीं," यमुना हिचकते हुए बोली, "कुछ गुस्ताखी होती, इसलिए नहीं बता रही थी। खैर, जोर दे रहे हैं तो सुनिए। मेरा ख्याल है कि कुछ दिनों पहले आप मुझे कुछ दूसरी नज़र से देखने लगे थे। मेरी माँ की मृत्यु के बाद आपका रवय्या एकदम बदल गया और आप पूरी तरह गंभीर हो गये। महात्माजी के मरने के दिन रात को आपके इतनी देर टहलने से मुझे ऐसा लगा कि आपको अपने पुराने विचारों के लिए पश्चाताप हो रहा है। और शायद यही धक्का आपकी बीमारी का कारण बना था। संभव है यह मेरी अटकल ही हो। लेकिन मैंने ऐसा ही सोचा था। मैं आपकी बीमारी का कारण अपने को ही समझती थी इसलिए 'मारेली' में अपने को आपकी सेवा के लिए मजबूर पाती थी। दूसरी वजह शायद यह हो कि माँ की मौत के बाद से मेरा दिल हँसी-खुशी की बातें करने को बिल्कुल नहीं चाहता था। मैं अधिकाधिक गंभीर रहना चाहती थी। और मैंने देखा कि ऐसी गंभीरता में रोगी की परिचर्या से जितनी शान्ति मिलती है उतनी किसी चीज़ से नहीं मिलती। इसीलिए जो कुछ हो सकता है वह किया है। वैसे तो किया ही क्या .....।"

प्रोफेसर साहब अभी तक करवट से लेटे थे। अब वे ठंडी साँस भरकर सीधे लेट गये और बोले, "नहीं यमुना! तुमने बहुत कुछ किया है। एक तरह से तुम्हीं ने मुझे अच्छा किया है। यही नहीं, तुम उम्र और लियाकत में मुझसे इतनी कम होते भी मुझे रास्ता दिखा सकती हो। काश मैं और वनमाला

भी तुम्हारे जैसे बुद्धिमान होते। मैंने एक बार वनमाला से तुम्हारे बारे में कहा था कि मैं तुम्हें मामूली लड़की समझता हूँ, बहिन की नज़र से भी नहीं देखता। अब मैं मानता हूँ कि यह मेरी भूल थी। तुम मामूली लड़की हरगिज़ नहीं हो। और अब तो मैं तुम्हें अपनी बहिन ही नहीं, बड़ी बहिन की तरह समझने लगा हूँ।" इस बार प्रोफेसर साहब वास्तव में भावुक हो उठे थे। उनका कंठ स्वर भर्रा गया था।

कमरे में कुछ देर निस्तब्धता रही। यमुना भी भावनाओं में डूब उतरा रही थी। कुछ देर में प्रोफेसर साहब बोले, "जाओ अब सोओ। बहुत देर हो गयी है।" यमुना उठकर चली आयी।

प्रोफेसर साहब, यमुना और वनमाला तीनों अपने-अपने बिस्तरों में घुसे हुए अपनी-अपनी उधेड़ बुन में लगे थे। तीनों में से किसी को नींद नहीं आ रही थी।

प्रोफेसर साहब ऐसी शांति का अनुभव कर रहे थे जो उन्हें कई महीनों बाद नसीब हुई थी। इतनी गहरी और आकस्मिक थी यह शांति कि उन्हें उत्तेजना सी भी हो रही थी। जैसे तूफानी लहरों में जीवन की आशा छोड़कर प्राण-पण से अपनी टूटी नाव को खेकर किनारे लगालेने वाला माँझी तट पर लस्त होकर पड़ा हुआ भी सामने उठती हुई लहरों में अपने को फँसा पाता है, तूफान का ख्याल दिल से नहीं निकाल सकता, इसी तरह की दशा इस समय प्रोफेसर साहब की हो रही थी।

यमुना सोच रही थी कि न मालूम जिंदगी में क्या-क्या देखना है। आज प्रोफेसर साहब ने उसे अपने से भी ऊँचा बताया था। निस्संदेह वह इस परीक्षा में उत्तीर्ण भी हो गयी थी लेकिन अभी तो पहाड़ सी जिंदगी सामने पड़ी है। क्या वह हमेशा इसी तरह साबित कदम रह सकेगी? क्या उसके पाँव कभी न डगमगायेंगे? क्या कभी किसी भूले-भटके क्षण में उसकी प्राकृतिक भावनाएँ उस पर विजय न पा लेंगी? आज तो वह अपना सारा ध्यान अपने भविष्य में केन्द्रित किये है, किन्तु क्या सदैव ही ऐसा रह सकेगा?

वनमाला की स्थिति ऐसी हो रही थी जैसे कि किसी की ऊँचाई से भूमि पर पटक दिये जाने के बाद अर्ध मूर्छित अवस्था में होती है। उसके सारे सपने

टूट गये थे, उसकी आशा की डोर का छोर भी हाथ से छूट गया था। उसके मस्तिष्क में तूफ़ान उठा था, लेकिन उसके हाथ पैर सुन्न हो रहे थे जैसे किसी ने उनकी सारी ताक़त निकाल ली हो और उसे सिसक-सिसक कर मरने के लिए छोड़ दिया हो। जिस बात को उसने मूर्खतापूर्ण विचार कहकर जबर्दस्ती दिल से निकालने की कोशिश की थी, वह आज अचानक साकार होकर भयानक अट्टहास करती हुई उसके सीने पर चढ़ बैठी थी।

हुआ यह कि अचानक उसकी आँख खुली तो उसने सोचा कि पति को देख आऊँ। कमरे के बाहर से उसे जो आवाजें सुनाई दीं उन पर वह ठिठक कर सुनने लगी। प्रोफेसर साहब की आवाज़ आयी, "...तुम्हें कितना प्रेम करता हूँ मेरी रानी।" और फिर यमुना की हँसी। वनमाला के सर पर जैसे किसी ने हथौड़ा मार दिया। वह लड़खड़ाते पैरों से लौट आयी थी।

१२, धारा का मोड़

वनमाला अब आश्चर्यजनक रूप से सीधी और सहिष्णु हो गयी थी।

प्रोफेसर साहब और यमुना दोनों को जिंदगी की साफ़ और सीधी राहें मिल गयी थो, दोनों हँसी-खुशी अपनी-अपनी दिशाओं में बढ़े चले जा रहे थे। यह किसी को चिंता न थी कि वनमाला बीहड़ रास्ते में काँटो से उलझ-उलझ कर अपने दामन को ज्यादा से ज्यादा फाड़े दे रही है। चिंता तब होती जब वनमाला की परेशानी का उन्हें कुछ आभास मिलता। उसने तो अपने दिल की धधकती हुई आग को इस बुरी तरह दबा रखा था कि उसकी लपटें तो क्या, धुएं की भी किसी को हवा न लग सकती थी।

उसका दुख अब निराशा की उस स्थिति पर पहुँच गया था जब कि मानसिक शक्तियाँ बिल्कुल जवाब दे देती हैं। कभी-कभी वह सारी घटना पर गौर करती तो उसे मालूम होता कि उसकी हैसियत बाढ़ के पानी में पड़े हुए तिनके से अधिक नहीं है। वह कितना ही जोर लगाये लेकिन उसे बहना ही पड़ेगा, बहना ही पड़ेगा, तट का सुखदायिक स्पर्श उसके भाग्य में ही नहीं है। उसे कभी-कभी यमुना और प्रोफेसर साहब की हँसी की मिली-जुली आवाज़ सुनायी देती तो वह पूरे ध्यान से उसे सुनने लगती, लेकिन अब इस आवाज़ ने उसके दिल की धड़कन बढ़ाना, खून का दौरान तेज़ करना' मस्तिष्क में उत्तेजना भरना बंद कर दिया था। उसे यह आवाज़ें निहायत दिलचस्प, लेकिन सैकड़ों बार की सुनी सुनायी कहानी जैसी मालूम होती जिसे सुनकर उत्तेजना पैदा होने की बजाय जम्हाइयाँ आने लगती है। और वास्तव में वनमाला इस आवाज़ के बंद होने पर थककर कुर्सी या पलंग पर पड़ी रहती।

कभी वह सोचती कि मुझे इस बात से परेशान होने की ज़रूरत ही क्या है, मैं इस हाल में भी क्यो खुश न रहूँ। उसी समय उसके दिल के अंधेरे सन्नाटे में नींद में डूबी अलसायी सी प्रतिध्वनि होती, "ठीक है, परेशान होने की ज़रूरत ही क्या है ......।" इसके बाद जैसे उल्लू बोलता और फिर उदास, घना,

काला, नीरव अंधकार छा जाता। प्रसन्नता की स्वर्ण रश्मि को इस घने अंधेरे को चीर कर आने की राह ही नहीं मिल रही थी। साथ ही दुःख, जलन, पीड़ा, आँसू आदि ने भी उसका साथ छोड़ दिया था और नैराश्य के इस विषैले अंधेरे में वे भी घुट-घुट कर दम तोड़ चुके थे और उनकी सड़ी हुई बदबूदार लाशें वातावरण को और विषाक्त बनाकर वनमाला के समस्त मन प्राण जीवन को धीरे-धीरे कसे भींचे डाल रही थीं।

वनमाला का व्यक्तित्व वातावरण के इस क्रूर हत्याकारी प्रयत्न का विरोध न करता हो ऐसी बात नहीं थी। वह कभी-कभी सोचती कि मैं पहले क्या थी और अब क्या हो गयी हूँ। उसे अपने विवाह और उसके बाद का समय याद आता। तब वह एक शक्तिशालिनी नारी थी। उसका सर ऊँचा उठा हुआ था। उसकी दृष्टि पास की चीजों को देखना पसंद ही नहीं करती थी। जीवन संग्राम में वह एक विजयी सेनानायक की भाँति ऊँचे मचान पर से दूरबीन लगाये, रणस्थल में बहते हुए खून, उठती हुई चीखों और गिरती हुई लाशों पर दया किये बगैर केवल विजय के स्वप्न देखा करती। सैनिकों के पावों तले आने वाले गढ़े उसकी निगाह में ही न आते। उसके उद्देश्य ऊँचे थे, उसका माथा ऊँचा था। और आज? आज तो वह खुद एक खून में लथपथ सैनिक की तरह किसी कँटीले तार से उलझी पड़ी तड़प रही है....नहीं, तड़प भी नहीं पा रही है। अन्य सैनिक सीना ताने दर्राते बढ़े जाते हैं। उसकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देता।

घायल वनमाला के हृदय में भी विजय का ख्याल रह-रहकर उठा करता है। वह बार-बार उठने का प्रयत्न करती है। लेकिन उसका शोणित रहित शरीर, उसकी थरथराती टाँगे नहीं सँभाल पाती और वह फिर गिर जाती है। काँटेदार तार उसके गिर्द और ज्यादा उलझ जाता है। उसके भाग्य में शायद यही सिसक-सिसक कर दम तोड़ना है।

वनमाला ने कई बार सोचा कि इन बेकार की उलझनों को छोड़ो, किसी काम में मन लगाओ। उसने सोचा कि फिर कहीं नौकरी कर ली जाय। पति को उसने बताया तो वे हँस पड़े। कहने लगे, "तुम भी खूब हो। क्या ऐसी जरूरत पड़ गयी नौकरी की। खर्च की कमी पड़ रही है क्या? या 'जमींदारी

अबालीशन' के लिए पहले से तय्यार हो रही हो। जमींदारी टूटने पर भी तो बैंक में काफी रुपया है। शेयर भी अच्छी खासी तादाद में ले लिए हैं। फिर यह लालच क्यों है ?" उन्होंने हँसते हुए अपने आर्थिक वैभव को ऐसे बताया जैसे वनमाला को पहली बार यह मालूम हुआ हो।

वनमाला मुसकराने का प्रयत्न करती हुई बोली, "लालच की बात नहीं है। घर में तबीयत उलझा करती है ? कुछ काम तो आदमी के पास होना ही चाहिए।"

प्रोफेसर साहब ताज्जुब से बोले, "तो फिर नौकरी छोड़ी ही क्यों थी। दो साल बाद यह क्या सनक सवार हुई ?"

"सनक तो सनक ही है," वनमाला ने मरी-मरी मुसकराहट के साथ कहा।

"तब भी नौकरी करने की क्या जरूरत है ? तबीयत ही लगाना है तो कुछ लोक-सेवा का काम उठाओ जिसमें दूसरों का भी भला हो। राजनीति न सही किसी 'सोशल वर्क' में ही मन लगाओ। महिला संघ में तो बहुत 'स्कोप' है।

"नहीं। यह काम मेरे बस का नहीं है। मुझे सभासोसाइटियों में भाषण देने के नाम से ही उबकाई आती है। मेरा दिमाग तो सिर्फ 'आफिस वर्क' के ही योग्य है।

खैर साहब नौकरी के लिए भी कोशिश शुरू हुई। इंस्पेक्टरी तो अब रखी कहाँ थी, हेड मिस्ट्रेस का पद भी मिलना दुर्लभ था। अब बारह बरस पहले का जमाना न था। क्लर्कों की जगहों तक के लिए उम्मेदवार एम० एल० ए० लोगों की सिफ़ारिश लेकर आते थे। बेचारे वर्मा साहब को, अधिकारीगण से काफ़ी जान पहचान होते हुए भी सिफ़ारिश कहाँ से मिलती। वे तो कम्युनिस्ट मशहूर हो चुके थे। कांग्रेसी नेता सोचते कि जरूर यह हज़रत कुछ सोचकर अपनी बीवी को सरकारी पद पर भेजना चाहते हैं। खैर सरकारी नौकरी न सही, प्राइवेट स्कूल में ही सही। मालूम हुआ कि एक स्थानीय स्कूल अगली जुलाई से इंटर कालेज होनेवाला है और प्रिंसिपल के पद के लिए अभी से कोशिश हो रही है। वनमाला उसके मैनेजर से मिलने गयी।

मैनेजर साहब से मिलने कई लोग आये थे। बरामदे में रखी दो टूटी

कुर्सियों और एक नंगे तख्त पर पाँच-छः व्यक्ति बैठे थे। वनमाला के लिए कुर्सी तो खाली कर दी गयी और वह बैठ भी गयी लेकिन उसे इस गंदे वातावरण में उबकाई-सी आने लगी। बरामदे के बाहर एक सहन-सा था जिसमें एक ओर कूड़ा पड़ा था और मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। सामने की खुली नाली में कीड़े बजबजा रहे थे। दीवारों का चूना उखड़ा हुआ था। मिलने वालों के चेहरे पर ऐसा भाव था कि अगर उन्हें मैले-कुचैले कपड़े पहना दिये जायँ तो सदाव्रत की आशा में कतार लगाये हुए भिखमंगे ही मालूम हों। वनमाला को बुखार-सा चढ़ने लगा, मुँह कड़वा होने लगा।

दस मिनट बाद अधेड़ मैनेजर साहब आधी धोती पहने और बाकि आधी नंगे बदन पर ओढ़े तशरीफ़ लाये। वनमाला को देखकर आँखें फाड़कर घबराये स्वर में बोले, "कहिए देवी जी! कैसे कष्ट किया?"

वनमाला ने आने का कारण बताया तो वे आश्वस्त होकर दूसरी खाली कुर्सी पर, जिसे एक अन्य मिलने वाले ने खाली कर दिया था, बैठ गये और बोले, "आपका अभी तक का 'एक्सपीरिएंस' हमें नहीं मालूम है।"

वनमाला ने शांतिपूर्वक अपनी योग्यता बतायी तो मैनेजर साहब की घबराहट और बढ़ गयी और आँखें फट गयीं। मैनेजर साहब के पूछने पर उसने यही भी बताया कि मेरे पति प्रोफेसर जितेन्द्र वर्मा है।

मैनेजर साहब और भी घबराये। कुछ देर बगलें झाँकने के बाद बोले, "हमारा स्कूल छोटा है। प्रिंसिपल की 'पे' भी हम २००) से ज्यादा न रख सकेंगे।"

"जो कुछ भी हो वही ठीक है," वनमाला थकी मुसकराहट के साथ बोली।

मैनेजर और परेशान हुए। उनका यह वार भी खाली गया। प्रोफेसर साहब और उनका राजनीतिक लगाव मशहूर हो चुका था। मैनेजर साहब ने जानबूझकर कम वेतन बताया था ताकि प्रोफेसर साहब की पत्नी उसे अस्वीकार कर दें और बात खत्म होजाय। इस पर भी उन्हें पद स्वीकार करते देखकर मैनेजर साहब का यह शक पक्का हो गया कि इनका उद्देश्य नये कालेज को कम्युनिज्म का अड्डा बनाने का है। अगर ऐसा हुआ तब तो सर्वनाश हो जायगा। मैनेजर साहब को खुद कम्युनिज्म से घृणा नहीं थी लेकिन सरकारी ग्रांट के बंद

हो जाने का डर तो था ही। नहीं नहीं अपने हाथों से अपने पैर पर कुल्हाड़ी कैसे मारी जायगी। अब तो साफ़ साफ़ बात करनी ही होगी।

मैनेजर साहब ने सारा साहस संचित करके कहा, "आप जैसी योग्य महिला को पाकर हमारा स्कूल धन्य हो जाता। लेकिन इसे हमारा दुर्भाग्य ही कहिए। यह कांग्रेसी सरकार भी न मालूम किस तरह सोचती है·······।"

वनमाला बात काटकर बोली, "मैं आपका मतलब समझ गयी। जाने दीजिए ·········अच्छा नमस्कार!" और वह उठकर जाने के लिए तय्यार हो गयी!

मैनेजर साहब भी भड़भड़ाकर उठ बैठे और गिड़गिड़ाते स्वर में बोले, "देखिए आप कुछ गलतफ़हमी में न पड़िएगा। हम तो दरअस्ल कम्युनिज्म ही को अच्छा समझते हैं। और निःसंदेह कम्युनिज्म ही इस कांग्रेसी राज में पैदा हुई अंधेर गर्दी को दूर कर सकता है। लेकिन हमारा स्कूल अभी इतना मज़बूत नहीं है कि सरकार को नाराज़ करके अपनी जिंदगी चला सके। इसीलिए······।"

वनमाला खड़ी होकर विनोदपूर्वक सुनती रही।

मैनेजर साहब ने चलते-चलते मक्खन चुपड़ने में भी कोई हानि न समझी। वे बोले, "और देखिए। हमने आपको जवाब नहीं दिया है। मैं कमेटी के सामने आपके नाम की सिफ़ारिश ज़रूर करूँगा। अगर कमेटी ने मान लिया तो हमारे कालेज के भाग्य ही खुल जायेंगे—हें-हें-हें··।"

वनमाला की तबियत हुई कि मैनेजर साहब की खिचड़ी मोछों के नीचे झाँकती हुई पीली, मटमैली बत्तीसी पर थूक दे, लेकिन वह चुप-चाप चली आयी।

लम्बी टेढ़ी-मेढ़ी गली को पार करके खुली सड़क पर पहुँच कर उसने आराम की साँस ली। उसे मैनेजर साहब के घर और उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही उनके स्कूल की भी कल्पना रोमांचित कर रही थी। वह सोच रही थी कि अगर मैनेजर साहब ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली होती तो कैसी मुसीबत आती। कैसे उस गंदे स्कूल में रहा जाता।

सड़क पर रिक्शा करके जब वह यूनिवर्सिटी की ओर बढ़ी तो उसका हृदय

बड़ा प्रसन्न था। शुरू अप्रैल का महीना था। दस बजे धूप गर्म ज़रूर हो गयी थी लेकिन असह्य न थी। उसे दिन-रात हृदय को खाये जानेवाली उदासी और निश्चेष्टता से मुक्ति मिली थी और वह इस नई मनःस्थिति में छोटी-छोटी बातों में आनन्द ले रही थी। उसे रह-रहकर मैनेजर की घबराई मुख-मुद्रा, हकलाती बोली और कांपते हाथ-पैरों का स्मरण करके हँसी आ रही थी। बेचारा गरीब आदमी! ऐसा डर रहा था जैसे मैं फांसी की सज़ा सुनाने गयी हूं। और यही हज़रत दूसरे उम्मेदवारों के आगे कैसे शेर हो गये होंगे। यह मध्य वर्ग के लोग भी कितने दिलचस्प होते हैं।

महिला कालेज से लड़कियाँ हाईस्कूल और इंटर के इम्तहानों के पर्चे करके निकल रही थीं और बड़े मनोयोग से एक दूसरे से अपने उत्तरों का मिलान कर रही थीं, जैसे इन्हीं तुच्छ परीक्षाओं पर उनका सारा भाग्य टिका हो। अमीनाबाद में व्यापारी और ग्राहकगण मोल-तोल में उलझे थे। वनमाला का इन दृश्यों से बड़ा विनोद हुआ।

कैसर बाग के बाद सुनसान पार्कों और सड़क को देखकर उसे फिर अपनी समस्या याद आयी। नौकरी तो मिलने से रही, और मिले भी तो ऐसी गंदगी में पड़े कौन। फिर क्या प्रोफेसर साहब की बात मानकर 'सोशलवर्क' ही शुरू कर दिया जाय। क्या हर्ज है। जी ही तो बहलाना है। कुछ नहीं तो वहाँ की बेवकूफियों से ही जी बहलेगा। तो महिला संघ ही ठीक रहा। लेकिन उफ! मुझे भी तो उस मूर्खता में भाग लेना पड़ेगा। इसमें भी क्या हर्ज है। अपने पर भी हँसने का मौका मिलेगा।

वनमाला इसी सुखदायक उधेड़बुन में घर पहुँची। ड्राइंग रूम में प्रोफेसर साहब और यमुना एक ही सोफे पर बैठे हुए थे। यमुना का आज अर्थशास्त्र का पहला पर्चा था। उसी को यह दोनों देख रहे थे। पर्चे पर झुके दोनों के सर मिले से जा रहे थे।

वनमाला को मालूम हुआ कि जैसे उसकी छाती पर किसी ने जोर का घूंसा मार दिया हो। उसने पहले भी इन दोनों को कई बार इसी तरह बैठे देखा था लेकिन तब उसके हृदय पर ऐसा आघात न होता था। इस समय पन्द्रह बीस मिनट की रिक्शे की यात्रा में जो अवसाद के बादल दूर हुए थे वे न केवल घिर

ही आये बल्कि उनमें बिजली भी तड़पने लगी। वनमाला को क्रोध न आया बल्कि रुलाई सी छूटने लगी।

उसके दाखिल होने पर प्रोफेसर साहब ने प्रफुल्लित स्वर में कहा, "आज तो यमुना ने कमाल कर दिया। दूसरा पर्चा भी ऐसा हो गया तो 'डिस्टिंक्शन मार्क्स' भी आ सकते हैं।" वनमाला बात अनसुनी करके अंदर चली गयी।

वनमाला दिन भर सोचती रही। शाम को उसने प्रोफेसर साहब से पैदल घूमने का प्रस्ताव किया। उन्होंने बड़ी खुशी से मंजूर कर लिया।

चिर परिचित गोमती तट की सड़क पर दोनों चलने लगे। वनमाला पति की बातों का उत्तर हूँ-हां करके देती जा रही थी। उन्हें इससे आश्चर्य न था, दो महीने से वनमाला अनमनी रहती ही थी, यही क्या कम था कि वह आज खुद घूमने आयी थी।

लेकिन वनमाला की चुप्पी साधारण न थी। वह अपने को इस बात के कहने के लिए तय्यार कर रही थी जिसे कहने के लिए उसने घूमने का बहाना निकाला था। कुछ देर बाद वह बोली, "हमारी शादी को कितने दिन हुए, जितेन्द्र?"

"ठीक दस वर्ष। लेकिन क्यों?" प्रोफेसर साहब ने शंकित स्वर में पूछा।

वनमाला दूसरी ओर मुँह करके बोली, "कुछ नहीं। अगर हम लोग अब यह बंधन तोड़ दें तो कैसा रहे?"

प्रोफेसर साहब जैसे आसमान से गिर पड़े। मुँह फाड़कर बोले, "क्या? कुछ पागल हो गयी हो क्या? फ़जूल बातें क्यों करती हो।"

वनमाला ने पति से निगाहें मिलाकर कहा, "मैं पागल नहीं हूँ। कुछ लड़ाई करने के लिए भी यह बात नहीं कही है। मैंने खूब सोच समझ कर गंभीरतापूर्वक यह फैसला किया है। मेरे पास इस फैसले के लिए अच्छे कारण मौजूद हैं।"

"क्या कारण है? कुछ बताओगी भी?" प्रोफेसर साहब घबराते हुए हुए बोले।

"बात को सीधे ही कह डालना अच्छा है। मैं तुम्हारे और यमुना के संबन्धों के बारे में अपने को संतुष्ट नहीं कर पायी। बखेड़ा न खड़ा हो इसलिए

कुछ कहा नहीं। लेकिन यह ख्याल मुझे घुन की तरह अन्दर ही अन्दर खाये डाल रहा है। अब मैं इस यंत्रणा को बर्दाश्त नहीं कर पा रही हूँ। यमुना का तुम्हारे अलावा कोई ठिकाना नहीं रहा है। वह बेचारी दर-दर की ठोकर खायेगी। मैं इतनी संग दिल नहीं होना चाहती कि उसे हटाने का तुमसे प्रस्ताव भी कर सकूँ। मेरी बात दूसरी है। मैं आर्थिक दृष्टि से भी बिल्कुल मुहताज नहीं हूँ। नमक रोटी पर जिंदगी गुजारने लायक मेरे पास रुपया है। हाथ-पैर हिलाकर कुछ कर भी सकती हूँ। इसीलिए मैंने सोचा है कि बगैर झगड़े-झंझट के खामोशी से तलाक़ ले लिया जाय।"

प्रोफेसर साहब अशक्त से सुनते रहे। फिर धीरे से बोले, "मेरा ख्याल था कि तुम्हारा दिल हम दोनों की तरफ से साफ़ हो गया है। तुमने पहले क्यों नहीं कहा, नहीं तो तुम्हें संतुष्ट करने के लिए मैं और सतर्क रहता।"

"इससे तो केवल तुम्हारा ऊपरी व्यवहार ही बदलता," वनमाला मुसकराकर बोली, "असली प्रश्न तो हृदय की भावनाओं का है। बहस करने से कोई फायदा नहीं। मैं अपनी बात का सबूत कुछ न दे सकूँगी। तार्किक दृष्टि से देखने पर मुझे भी अपनी बात ही गलत मालूम होती है, लेकिन दिल तो यह कबूल करने के लिए तय्यार नहीं होता। इसे क्या करूँ?"

प्रोफेसर साहब से अधिक कौन वनमाला के जिद्दी स्वभाव से परिचित होता। उन्होंने ठंडी साँस भरकर कहा, "तुम्हें किसी बात से भी कोई नहीं रोक सकता। लेकिन इतनी प्रार्थना और करूँगा कि एक बार और सोच लो।"

वनमाला तो सब कुछ सोच चुकी थी। दो महीने से इसी संभावना पर विचार कर रही थी। और आज अन्तिम निर्णय भी कर चुकी थी। दोनों ही पति-पत्नी ने एक मत से यह तय किया कि आज यमुना को यह बात न बतायी जाय। कल वह आखिरी पर्चा कर ले तब उसे मालूम भी हो जाय तो कोई हर्ज नहीं है।

दूसरे दिन बैरिस्टर सिनहा की मदद से तलाक की कार्रवाई खामोशी से हो गयी। वनमाला और प्रोफेसर वर्मा बारह बजे अदालत से लौटे तो वे पति-पत्नी न थे।

---

१३. जीवन का शून्य

वनमाला जिस समय घर को वापस हुई तो बड़ी खुश थी। खाने का समय हो गया था इसलिए सब लोग खाने पर जम गये। यमुना का आज अर्थशास्त्र का दूसरा पर्चा भी कल की ही भाँति अच्छा हुआ था, इसलिए वह भी बहुत खुश थी। सिर्फ प्रोफेसर साहब का ही चेहरा सफेद पड़ा था और उनके होंठ रह रहकर काँप उठते। यमुना कल की ही तरह उन्हें अपने परीक्षा के उत्तरों के बारे में बताती जा रही थी, लेकिन वे अन्यमनस्क से सिर्फ हूँ हाँ कर रहे थे। वे खाना भी नहीं खा पा रहे थे। थोड़ा सा चावल खाकर उन्होंने हाथ रोक दिया था। वनमाला बराबर मुसकराती जा रही थी।

यमुना ने अपनी खुशी में यह परिवर्तन कुछ देर से लक्ष्य किया। अन्त में उससे न रहा गया। वह बोली. "आपकी तबियत कुछ खराब है भाई साहब ?"

"नहीं," प्रोफेसर साहब ने संक्षिप्त उत्तर दिया। उनके चेहरे पर व्यथा और बढ़ गयी। वनमाला मुसकराने की बजाय हँसी पड़ी। यमुना और चक्कर में पड़ी।

फिर उसने वनमाला से पूछा, "क्या बात है भाभी ? मेरी कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। आपलोग आज कहाँ गये थे ?"

वनमाला हँसकर बोली, "आज से मैं तुम्हारी भाभी नहीं रही। समझीं !"

प्रोफेसर साहब से बर्दाश्त न हुआ। वे उठकर चले गये।

वनमाला कहती गयी "......आज हम लोगों ने तलाक़ कर लिया है।"

यमुना के हाथ में पानी से भरा ग्लास था। वह वैसा ही मेज़ पर रखी रायते की प्लेट पर गिर पड़ा। ग्लास और प्लेट दोनों टूट गये। पानी मिला रायता मेज पोश को तर करके यमुना की शलवार पर गिरने लगा, लेकिन उसे इसकी खबर न हुई। वह आँखें फाड़े रह गयी, जैसे उसकी वाग्शक्ति ने जवाब दे दिया हो। वनमाला पूर्ववत खाती रही। उसे आज वास्तव में सुख अनुभव हो रहा था। इतने दिनों तक वह अपने अंतर की आग में जलती रही थी और

यह दोनों उसकी आँखों के आगे ही हँसी खुशी में मस्त रहते थे। आज इन दोनों को परेशान देखकर उसे हार्दिक प्रसन्नता हो रही थी।

यमुना कुछ सँभली तो परिस्थिति उसकी समझ में आयी। वह माथे पर हाथ मारकर बोली, "हाय भाभी! यह आपने क्या किया। मुझे इसकी हवा तक न लगने दी, नहीं तो मैं ही यहाँ से मुँह काला कर जाती। आपने यह क्यों किया?"

वनमाला शांतिपूर्वक बोली, "अब तो जो होना था वह हो ही गया।"

यमुना खाना अधूरा छोड़कर उठ बैठी और रोती हुई अपने कमरे में चली गयी।

लेकिन अब वनमाला ने भी खाना न खाया। वह भी हाथ धोकर अपने कमरे में जाकर लेट रही। कुछ देर बाद उसे नींद आ गयी और वह खुर्राटे भरने लगी।

लेकिन दो घंटे के बाद जब एक परेशान करने वाला सपना देखकर वह जागी तो उसकी प्रसन्नता गायब थी। उसने देखा था कि मैं यकायक बूढ़ी हो गयी हूँ और इसी लखनऊ के एक गंदे मुहल्ले में एक टूटे-फूटे मकान में अकेली रहती हूँ। इस मकान को भी रेंट कन्ट्रोल अफसर ने किसी दूसरे को 'अलाट' कर दिया है। नये किरायेदार के बड़ी-बड़ी मोछें हैं और उसने पुलिस की मदद से मेरा सामान घर के बाहर फेंक दिया है और मेरे मना करने पर एक पुलिसमैन ने मुझे हाथ पकड़ कर बाहर फेंक दिया है और डंडा तानकर मेरा सर तोड़ने को आ रहा है।

वह इस सपने पर विचार करने लगी। हाँ, ठीक ही तो है। अब यह घर मेरा रहा कहाँ है। अब तो इस पर दूसरे का कब्जा है। तीन घंटे पहले यह सब चीजें, यह बंगला, यह पलंग, यह कपड़े, यह सिंगार मेज़ सब मेरी थीं लेकिन अब तो यह मेरी नहीं हैं। क्या हुआ अगर प्रोफेसर साहब ने खुद मुझसे तब तक यहीं रहने की प्रार्थना की जब तक मेरा कोई दूसरा इंतज़ाम नहीं हो जाता। मेरी हैसियत तो बस मेहमान की सी है जिसकी शराफ़त इसी में है कि मेज़बान की आँखें बदलते देखते ही घर को छोड़ दे। अपना और पराया, कितना अन्तर होता है इनमें! यह अन्तर वनमाला के दिमाग़ में पहले शायद

न आया था। अब तो उसे हर चीज़ ऐसी लग रही थी जैसे कि किसी साधा-रण से परिचित व्यक्ति की सम्पत्ति हो, जिससे उसे कभी कोई लगाव न रहा हो।

सब छूट गया ··· सब छूट गया। दस वर्ष का समय, प्रेममय जीवन। दस वर्षों की चाँदनी रातें, दस वर्षों की वसंती हवाएँ, दस वर्षों की सावनी फुहारें, नदी की सैर, फूलों की सेज, दो हृदयों की उफनती हुई प्रेम धाराओं का संगम, आँखों की मौन भाषा में हृदयों के गूढ़तम रहस्यों की व्याख्या, सृष्टि के आरंभ से आजतक अरबों-खरबों बार कही जाने पर भी नयी की नयी कहानी, सब कुछ सपना हो गया। क्यों हो गया? ऐसा होना ही था इसलिए।

अब मैं सबसे दूर हूँ। इस घर से, इस घर के रहने वालों से, घर के मालिक से, घर के नौकरों से, यमुना से, मधु से......।

मधु का ध्यान आते ही वनमाला के हृदय में शूल सा चुभ गया। वह उछलकर बैठ गयी। अब उसे यह घरबार छूटने का संताप होने लगा। उसे आश्चर्य हुआ कि मुझे मधु की याद इतनी देर में क्यों आयी। शायद पहले आती तो मैं तलाक में इतनी जल्दी न करती। हाय भगवान! अभी तक मैंने मधु के बारे में कुछ सोचा भी नहीं। शायद इसीलिए कि वह हमेशा मुझसे अलग रही है। फिर भी मैं उसकी माँ हूँ। मेरी बच्ची! उसके भविष्य के बारे में मैंने एक क्षण को भी न सोचा।

वह सोचने लगी कि अब मैं तो इस घर में रह ही नहीं सकती। यहीं रहना हुआ तो फिर इस तमाशे का फायदा ही क्या हुआ। तो क्या मधु को अपने साथ ले जाऊँ? प्रोफेसर साहब तो सहृदय हैं। वे मान ही जायेंगे; यही ठीक है। मधु मेरे साथ ही रहेगी। लेकिन कहाँ रहेगी। मेरा ठिकाना क्या निश्चित है। मधु भी क्या मेरे साथ मारी-मारी फिरेगी? मैं तो उसके भविष्य की बात सोच रही थी? उसका भविष्य तो यहीं रहने में चमकेगा। मैं तो अपनी कमज़ोरी में उसका जीवन ही बरबाद कर दूँगी। उसे यहीं रहना चाहिए। लेकिन हाय! उसे छोड़ने के विचार से ही कलेजा फटने लगता है। अपने हृदय के किसी कोने में सोते हुए वात्सल्य के इस प्रकार उमड़ पड़ने पर वनमाला बिल्कुल किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गयी।

उठकर वह गुसलखाने में गयी। नहा-धोकर कपड़े बदले और सोचा कि

प्रोफेसर साहब से कुछ बात की जाय। लेकिन नौकर ने बताया कि वे दो-पहर को ही कार लेकर कहीं चले गये हैं और बता भी नहीं गये हैं कि कहाँ गये हैं। वनमाला को बड़ी झुंझलाहट हुई, बल्कि रुलाई सी आने लगी। आश्चर्य की बात यह थी कि पिछले दस वर्षों में उसे कभी ऐसे मौक़े पर परेशानी नहीं हुई थी। वह सोच लेती थी कि इस समय नहीं तो कभी तो आयेंगे ही। लेकिन इस समय वह सोच रही थी, "ठीक ही तो है। वे अब मुझसे बात करने के लिए क्यों बैठे रहें। मैं उनकी अब रही ही कौन हूँ।"

अब क्या किया जाय। करने को तो पहले भी कुछ नहीं था। लेकिन दिमाग़ी उलझनें तो थीं जिनसे उसे फ़ुरसत न मिलती थी। अब तो कुछ नहीं, बिल्कुल शून्य। वह फिर कमरे में गयी, लेकिन उसका चिर परिचित कक्ष जैसे उसे काटने लगा।

अब वह अनिच्छापूर्वक उठी और यमुना के कमरे में पहुँची। यमुना सूजी और लाल आखें लिये पलंग पर लेटी थी। वनमाला को देखकर धीरे से उठकर बैठ गयी। वनमाला कुर्सी पर बैठ गयी, लेकिन उसकी समझ में न आया कि क्या बात करूं।"

कुछ देर बाद वह जबर्दस्ती मुसकराकर बोली, "क्या अभी तक रोती ही रही हो?"

यमुना एक ठंडी सांस भरकर चुप हो रही।

वनमाला ने कहा, "तुम बड़ी पगली हो। इसमें रोने की क्या बात है?"

यमुना भर्राये गले से बोली, "आपने मुझे काँटों में घसीट लिया। आपने मुझे आश्रय दिया, मेरी जिन्दगी बनायी और मैंने ही आपके पीठ में छुरा मारा। मान लिया कि मैंने नहीं मारा तो भी आपको मेरी ही वजह से घर छोड़ना पड़ा। यह कसक तो मेरे जी में हमेशा बनी रहेगी। वैसे रहना तो यहाँ अब मुझे भी नहीं है।"

वनमाला का सर घूमने लगा। उसके सामने अब उसके पारिवारिक सुख को छीननेवाली मायाविनी यमुना नहीं थी, बल्कि वही सीधी-सादी निश्छल यमुना थी जिसे वह ज़िद करके आगरे से अपने साथ ले आयी थी। वह यमुना अपने आँसू रोक नहीं पा रही थी। वनमाला से भी न रह गया। उसने झपटकर

यमुना को अपने अंक में भर लिया और दोनों फूट-फूटकर रोने लगीं। वह रोना तभी रुका जब नौकर ने आकर चाय तैयार होने की घोषणा की।

चाय पर वनमाला ने कहा, "यमुना तुम पागलपन न करो। मैं चाह कर भी तुम पर कोई शक नहीं कर पाती। खैर, उन बातों से क्या लेना-देना है। मैं कह यह रही थी कि मेरे सर पर तो भूत सवार था और वह यहाँ से हटे बगैर उतरता भी नहीं। लेकिन तुम यहीं रहो और कम से कम तब तक रहो जब तक बी० ए०, एल० टी० न कर लो। फिर जहाँ चाहना जम जाना। मैं तुम्हें जिस उद्देश्य से लायी थी, कम से कम वह तो पूरा होना ही चाहिए। नहीं तो पूरा तमाशा ही हो जायगा।"

यमुना आँखें नीची किये चुपचाप बैठी रही।

वनमाला ने फिर कोंचा, "मानोगी हमारी बात ?"

यमुना ने दो मिनट चुप रहकर धीरे से हामी भर ली।

वनमाला को बड़ा संतोष हुआ, जैसे उसने जुए में कोई भारी दाँव मार लिया हो! चाय पर इसके बाद और कोई बात नहीं हुई।

इसके बाद क्या हो? अब तो कुछ करने को भी नहीं, सोचने को भी नहीं। सारी समस्याएँ हल। कितनी निर्मम थी यह शांति! कितनी हृदय बेधक थी यह निष्क्रियता! भूत अतीत के गर्भ में समा गया, भविष्य की रूपरेखा तक नहीं, वर्तमान शून्य महाशून्य। जिन्दगी जैसे चलते-चलते अचानक रुक गयी हो।

वनमाला की रात बेचैनी से कटी। न मालूम क्यों प्रोफेसर साहब के वापस आने पर भी उसने उनसे कोई बात न की। दोनों खोये-खोये से रहे।

सुबह वह देर तक अन्यमनस्कता से अखबार उलटती रही।

अचानक एक विज्ञापन पढ़कर वह उछल पड़ी। उसने बार-बार पढ़ा। पढ़ कर बड़ी देर तक कमरे में टहलती रही, सोचती रही। फिर उसके मुँह से निकला, "हूँ। यही ठीक है। मैं जो चाहती थी वह मुझे मिल गया।"

विज्ञापन विचित्र था। बम्बई के एक डाक्टर हबीब कुरैशी आगामी वर्षा ऋतु में सुंदरवन में मलेरिया पर कुछ प्रयोग करने वाले थे। विज्ञापन में ऐसे लोक सेवी बलिदानियों की माँग की गयी थी जो इन प्रयोगों को अपने शरीर पर कराने के लिए तय्यार हों। प्रयोगों में मरने का पूरा भय था, यद्यपि इस बात का

आश्वासन दिया गया था कि मरने से बचाने और दुबारा स्वास्थ्य दान देने का पूरा प्रयत्न किया जायगा। सरकार से इन प्रयोगों की विशेष अनुमति ले ली गयी थी।

वह बड़ी देर तक सोचती रही। यहाँ तक कि खाने का समय हो गया। कल रात की तरह आज भी सभी ने अपने-अपने कमरों में खाना मँगा लिया। खाना खाने के बाद उसने डा० कुरेशी को एक लम्बा पत्र लिखा और उसे डाकखाने में डलवा दिया। इसके बाद वह खुश-खुश प्रोफेसर साहब की लाइब्रेरी में गयी जहाँ वे एक पुस्तक पढ़ने का बहाना कर रहे थे।

उसने चहक कर कहा, "प्रोफेसर साहब! मैं आपकी एक ही हफ्ते मेहमान रहूँगी। मधु की तो आप फिक्र कर ही लेंगे।"

प्रोफेसर साहब ने कहा, "अच्छा कहाँ जा रही हो?"

वनमाला ने मुसकुराकर विज्ञापन सामने कर दिया।

प्रोफेसर साहब ने विज्ञापन पढ़ा। एक मिनट तक वनमाला को हैरत से देखते रहे, फिर आँखें झुका लीं। पानी की दो-तीन बूँदें उनकी पुस्तक पर चू पड़ीं।

१४. बलिदान की तय्यारी

पंजाब मेल बम्बई की दिशा में उड़ी जा रही थी।

वनमाला ने झुँझला कर उपन्यास बंद कर दिया और खिड़की के बाहर झाँककर देखने लगी। संयुक्त-प्रान्त के खेतों का सिलसिला कब का खत्म हो चुका था। अब तो पेड़ भी बहुत कम देखने को मिलते थे। मध्य-भारत की छोटी-छोटी काली, नंगी पहाड़ियाँ दूर से दिखायी दे रही थीं, जैसे किसी ने जगह-जगह कूड़े-करकट के ढेर लगा दिये हों। हर तरफ़ उदासी और खामोशी छायी हुई थी।

पाँच मिनट में ही वनमाला ऊब गयी। अभी तो पूरे चौबीस घंटे इसी बर्थ पर गुजारने हैं। कैसे कटेंगे यह चौबीस घंटे। अभी से वनमाला का ज़ोड़-जोड़ दुखने लगा था। लेकिन सफ़र तो पूरा करना ही होगा, ज़िदगी के सफर की तरह रोकर या हँसकर किसी तरह यह सफ़र भी पूरा करना ही होगा।

अब उसने सहयोगियों पर नज़र डाली। कई घण्टे से वह उपन्यास पढ़ने में लगी थी और उसने यह भी न देखा था कि कौन-कौन नये यात्री डिब्बे में आ गये हैं। सामने की बर्थ पर एक लाला जी शायद अपनी बहू को लिए जा रहे थे। शायद बहुत देर से वे आँखें फाड़े वनमाला को देख रहे थे। वनमाला ने उधर निगाहें की तो लाला जी ने फौरन घबराकर आँखें दूसरी ओर कर लीं जैसे उन्हें किसी ने चोरी करते पकड़ लिया हो। साथ ही उनकी निगाह अपनी बहू की ओर गयी जो थोड़ा-सा घूँघट उठाकर कम्पार्टमेंट की दीवार पर लिखी हिदायतों को पढ़ने की कोशिश कर रही थी। लाला जी घुड़ककर बोले, "सीधे बैठो बहू।" बहू बेचारी सिटपिटा कर फिर सर झुका-कर बैठ गयी। वनमाला के बगल में बैठा हुआ शिक्षित आधुनिक जोड़ा लाला जी की हरकत पर हँस पड़ा। लाला जी उन्हें बुरी तरह घूर कर देखने लगे।

वनमाला भी मुसकुराये बगैर न रह सकी। यह दुनिया भी कितनी दिलचस्प है। हर जगह उदासी, हर जगह मसखरापन। और मैं इसी दिलचस्प दुनिया को छोड़ने की तय्यारी कर रही हूँ। लेकिन मुझे तो यह करना ही है।

उसे याद आया कि लखनऊ से चलते समय प्रोफेसर साहब कैसे बच्चों की तरह रो दिये थे, यमुना तो घर ही पर गश खा चुकी थी और स्टेशन तक भी पहुँचाने न आ सकी थी, नौकर-चाकर भी कितने उदास थे जैसे किसी घर वाले के मरने की खबर पा चुके हों। क्या पागलपन है। रोना-धोना! क्या रोने-धोने की, तकलीफ़-आराम की कोई असलियत है? हर आदमी रोता है, फिर हँसता है, फिर रोता है। सब तमाशा ही तो है, एक बड़ा तमाशा जिसमें सभी तमाशा करनेवाले हैं, तमाशबीन कोई नहीं। सभी इस तमाशे को असलियत समझते हैं, इसीलिए रोते-हँसते हैं। लेकिन इस तमाशे को अगर तमाशे की हैसियत से देखा जाय तो कितना दिलचस्प मालूम होता है। कितना मज़ा आता है यह ड्रामा देखने में।

लेकिन शायद मुझे यह तमाशा भी ज्यादा दिन नहीं देखना है। सुंदरबन के किसी घने हिस्से में कुछ महीने बाद मेरी आँखें बंद हो जायँगी। इन तमाम रंज और खुशी, बुद्धिमानी और मूर्खता, प्रेम और डाह के दृश्यों पर मौत का काला पर्दा पड़ जायगा। बुरा होगा। लेकिन बुरा क्यों होगा? तमाशा तो तमाशा ही है। हमेशा देखा जाय तो दिलचस्पी ही क्या रहे। इसकी सीमितता ही तो इसे अधिक मनोरंजक बनाती है।

और फिर मौत का भी तो तमाशा ही है। जिंदगी और मौत—तमाशे के अलावा और कुछ नहीं। जिंदगी का तमाशा ही इतना दिलचस्प है तो मौत का क्या इससे कम दिलचस्प होगा? ज्यादा ही होगा। मौत जिंदगी से ज्यादा जोरदार है। मौत अपने झटके से जिंदगी को झंझोड़ डालती है। मरनेवाले के अलावा दूसरे लोगों की जिंदगी भी उलट-पलट हो जाती है। मेरी माँ, यमुना की माँ दोनों मरीं और साथ ही हम सभी की जिंदगी में तूफ़ान उठा गयीं। लेकिन जिंदगी कभी मौत के कदम डगमगा न सकी। यकीनन मौत जिंदगी से बड़ी है। तो मौत का तमाशा जिंदगी के तमाशे से मजेदार क्यों न होगा। खिंचती हुई नसें, डूबता हुआ दिल, आँखों के आगे घना होता हुआ अंधेरा…”

"आप कहाँ जा रही हैं ?"

विचारों की शृंखला टूट गयी। वनमाला ने चौंककर देखा। बगल में बैठा हुआ जोड़ा उसे उत्सुकतापूर्वक देख रहा था। स्त्री पूछ रही थी, "आप कहाँ जा रही हैं ?"

"बम्बई। और आप लोग ?" वनमाला को भी शिष्टतावश पूछना पड़ा।

"हम लोग भी बम्बई जा रहे हैं," तरुणी बोली। वनमाला उसे देखती रही। इसकी शक्ल कुछ-कुछ यमुना से मिलती-जुलती दिखायी दी।

"आप लोग घूमने जा रहे हैं या किसी काम से ?" वनमाला ने पूछा।

"मै वहीं रहता हूँ। यह मेरी 'वाइफ' है," अब की बार नवयुवक बोला।

वनमाला ने मुसकुराकर कहा, "आप लोगों की शादी हाल में ही हुई मालूम होती है।"

"जी हाँ," नवयुवक बोला। तरुणी शरमा सी गयी।

"मैं आपलोगों के सुखी दाम्पत्य जीवन की कामना करती हूँ," वनमाला ने मुसकुराकर कहा। युवक ने धन्यवाद दिया।

बात-चीत फिर खत्म हो गयी। वनमाला फिर विचारों में डूब गयी। यह नये खिलाड़ी हैं, खूब उछल-कूद मचा रहे हैं। अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करके इंटर क्लास में बैठे हैं। कुछ दिन के बाद जीवन की नग्न वास्तविकताएँ सामने आयेंगी तो यह सारा प्रेम सपने का इन्द्रजाल मालूम होगा।

दूसरे दिन तीसरे पहर वनमाला विक्टोरिया टर्मिनस पर उतरी तो उसका उसका सर घूम रहा था और अंग-प्रत्यंग टूटा सा जा रहा था। वह जल्दी से जल्दी डाक्टर कुरेशी के मकान पर पहुँच जाना चाहती थी। प्लेटफार्म से स्टेशन के बाहर आने में ही आधा घंटा लग गया। एक पुलिसमैन ने उसका सामान रुकवा लिया। कहने लगा, "तुम्हारा बक्स में क्या है ?"

वनमाला को एक क्षण झुँझलाहट हुई, लेकिन फिर उसने विनोद करना ही ठीक समझा। रही-बची जिंदगी को हँस-खेलकर क्यों न काटा जाय। वह बोली, "चरस, अफ़ीम, भंग, कोकीन वगैरा-वगैरा।"

संयुक्त प्रांत के दशहरे के तमाशे में बंदर बननेवालों जैसे कपड़े और चप्पल पहने हुए महाराष्ट्रीय पुलिसमैन गुर्राया, "मजाक करना माँगता है ?"

"नहीं है तो न सही, जाने दो," वनमाला मुसकुराकर बोली।

"नहीं-नहीं, हम तलाशी लेंगा," कहकर पुलिसमैन ने चाबी माँगकर बक्स खोल डाला और वनमाला की साड़ियाँ और ब्लाउज प्लेटफार्म पर बिखर गये।

"इसमें तो कुछ नहीं है," पुलिसमैन फिर गुर्राया।

"तो तुम खा गये होगे, वनमाला बराबर मुसकुराये जा रही थी। सामान उठाने वाला कुली खिलखिलाकर हँस पड़ा। पुलिसमैन भल्लाकर दूसरी तरफ चला गया। वनमाला की सारी थकान मिट गयी।

बाहर आकर उसने टैक्सी ली और सीधे दादर पहुँची। डाक्टर कुरैशी अपने आफिस में ही थे। वनमाला का विज़िटिंग कार्ड पाकर खुद ही बाहर आये। सामान देखकर बोले, "आप सीधी स्टेशन से यहीं चली आ रही हैं? अच्छा आइए। हशमत! आपको ऊपर वाले कमरे में पहुँचाओ। आप थोड़ा आराम कर लें मिसेज़ वर्मा! फिर बातें होंगी।"

"मैं चाहती हूँ कि सारी बातें जल्दी ही हो जायँ…."

"सब हो जायगा। आप घबराती क्यों हैं," डाक्टर ने बजती सी आवाज में कहा। फिर नौकर को डाँटा, "चलो हशमत! क्या कर रहे हो। बड़े काहिल आदमी मालूम होते हो।"

पाँचवी मंजिल पर वनमाला को एक कमरे में पहुँचा दिया गया। वह नहा-धोकर लौटी तो हशमत चाय ले आया। चाय खत्म हुई ही थी कि डाक्टर साहब आ गये। सारा काम इस तरह हो रहा था जैसे मशीनों से हो रहा हो। वनमाला के लिए यह नया अनुभव था।

डाक्टर साहब ने इतमिनान से सिगार जलाया। फिर बोले, "देखिए अब आपको अपने 'एक्सपेरीमेंट्स' की बातें बताऊँ ..।"

वनमाला ने कहा, "आपके 'एक्सपेरीमेंट्स' के बारे में तो विज्ञापन ही था। मैं तो उसके लिए तय्यार ही होकर आयी हूँ। मुझे उसकी बातें नहीं सुनना है, तय्यारी करना है।"

डाक्टर साहब मुसकराकर बोले, "फिर भी कुछ बातें करना ज़रूरी है। खतों में तो सारी बातें नहीं बतायी जा सकतीं। मैं चाहता हूँ कि आप सारी बातें सुन लें, उन पर अच्छी तरह सोच-विचार करें। इसके बाद ही 'कान्ट्रेक्ट' भरें।"

"अच्छा कहिए," वनमाला बोली।

"देखिए। हमारे मुल्क में मलेरिया की वबा आम है। अभी तक इसका कोई ऐसा पुरअसर इलाज नहीं निकला है जो हर तरह के मलेरिया में कारगर हो और साथ ही ऐसा 'हार्मलेस' भी हो कि उनका कोई 'आफ्टर इफेक्ट' बाकी न रहे। इंडियन मेडिकल कौंसिल ने इसके लिए एक कमीशन मुकर्रर किया है जिसका 'कनवीनर' इस नाचीज़ को बनाया गया है। हम जानवरों पर काफ़ी प्रयोग कर चुके हैं और हमारी 'थ्योरीज़' उन पर सही उतरी हैं। लेकिन 'एक्सपेरिमेंट्स' को पूरा करने के लिए इंसानों पर भी प्रयोग होना ज़रूरी है। बदकिस्मती से अभी हम इस क़ाबिल नहीं हैं कि अपने तजुर्बों को इंसान के लिए गैरमुज़िर कह सकें। यह बिलकुल मुमकिन है कि जिन लोगों पर यह तजुर्बे किये जायँ वे जिंदा न बच सकें। बच गये तो भी यह बिल्कुल मुमकिन है कि वे उम्र भर के लिए बीमार या कमजोर हो जायँ या बाद में टी० बी० वगैरह के शिकार हो जायँ। हालाँ कि हम उन्हें तन्दुरुस्त रखने की पूरी कोशिश करेंगे, लेकिन फिर भी तजुर्बे तो तजुर्बे ही हैं।"

डाक्टर चुप हो गये। वनमाला बोली. "यह सब मुझे मालूम था।"

डाक्टर ने फिर कहा, "और यह भी समझ लीजिए कि जिन लोगों पर यह 'एक्सपेरीमेंट्स' होंगे, उन्हें तकलीफ़ भी बहुत होगी। कई रातों तक उन्हें तरह-तरह के मच्छरों से भरे कमरे में बगैर मच्छरदानी और चादर दिये रखा जायगा। रोजाना 'ब्लड टेस्ट' किया जायगा। कई तरह के इंजेक्शन दिये जायँगे। तरह-तरह की गिज़ाएँ खाने को दी जायेंगी। दो-दो दिन भूखा प्यासा भी रखकर मच्छरों के कमरे में भेजा जायगा।"

वनमाला मुस्कराकर बोली, "यह सब भी मैंने सोच लिया है।"

डाक्टर कुछ देर तक आँखें फाड़े वनमाला की ओर देखते रहे। कुछ देर बाद बोले, "मेरा ख्याल है कि अभी आपने पूरी तरह इसे नहीं सोचा है। हमारी जिम्मेदारी बड़ी भारी है। एक बार तजुर्बे शुरू करके हम उन्हें अधूरा नहीं छोड़ सकते। इसमें काफी 'पब्लिक मनी' का खर्च है। या तो हम 'एक्सपेरीमेंट्स' को मुल्तवी कर दें या पूरा करें। बीच में छोड़ने पर हमारी इतनी बदनामी होगी कि हमें खुदकुशी ही करनी पड़ेगी। इन तजुर्बों का पूरा होना

या न होना उन लोगों की बर्दाश्त की ताक़त पर मुनहसिर है जिन पर इन्हें किया जायगा। इसीलिए हम बहुत सोच-समझकर ही आदमियों को चुनना चाहते हैं।"

वनमाला ने फिर उसी शांत, संयत, दृढ़ स्वर में कहा, "मेरी जात से आपके 'एक्सपेरीमेंट्स' में कोई नुक़सान न होगा। यकीन रखिए।"

डाक्टर उठकर टहलने लगे। सिगार के कुछ लम्बे-लम्बे कश खींचकर वे बोले, "देखिए......माफ़ कीजिएगा। मुझे जो कुछ अंदेशा है वह आपकी कम उम्री से है। आप जैसी नौजवान 'लेडीज़' बहुत भावुक होती हैं। अक्सर ऐसा होता है कि नयी उम्र की उमंगों में लोग 'सेक्रीफ़ाइस' करने के लिए तय्यार हो जाते हैं, लेकिन बाद में जब असलियत उनके सरों पर फिर आती है तो पछताते हैं।"

वनमाला हँस पड़ी और बोली, "नौजवानों के बारे में आपका ख्याल बिल्कुल सही है, लेकिन यह आप से किसने बताया कि मैं नौ उम्र हूँ!"

"क्यों? क्या होगी आपकी उम्र?" डाक्टर ने पूछा।

"आप क्या समझते हैं?" वनमाला मुसकराकर बोली।

"यही होगी तेईस चौबीस साल की," डाक्टर ने कहा।

"जी नहीं श्रीमान। आगामी ५ मई को मैं अपनी उम्र के उंतालीस साल पूरे कर लूँगी," वनमाला ने कहा और फिर हँस पड़ी।

डाक्टर धम से कुर्सी पर बैठ गये और मुँह फाड़कर देखने लगे। दो क्षण बाद बोले "It is impossible (यह असंभव है)।"

"No, it is a fact (नहीं, यह सत्य है)," वनमाला ने कहा।

"वंडरफुल," डाक्टर कुरेशी ने कहा, "फिर भी हम आपसे जल्दी 'कांट्रेक्ट' नहीं भरवायेंगे। आज आपको सारी बातें बता दी हैं। आपको और बताने की ज़रूरत नहीं है। आप खुद ही काफ़ी समझदार और 'सीरियस' हैं। आप एक हफ्ते तक गौर करें और फिर अपना फैसला बतायें। हाँ, यह और बता दूँ कि आप खर्च का ख्याल न कीजिएगा। आप सात दिन बाद मना भी कर देंगी तो भी हम आपको पूरा टी० ए० देंगे और यहाँ जितने दिन रहेंगी उतने दिनों का 'पेमेंट' कर देंगे। इसका ख्याल न कीजिएगा।"

"मुझे 'पेमेंट' की उतनी परवा नहीं है," वनमाला कुछ तीखे स्वर में बोली, "आपकी दया से मेरे खाने के लिए मेरे पास काफ़ी है। मैं तो सिर्फ अपने नश्वर जीवन को कुछ सार्थक बनाने की गरज़ से आयी हूँ, रुपये के लिए नहीं।"

'नहीं नहीं," डाक्टर ने माफ़ी सी माँगते हुए कहा, 'मेरा यह मतलब हर्गिज़ नहीं कि आपमें सेवा भाव की कमी है। मैं तो सिर्फ इस बात पर जोर दे रहा था कि आप अब भी इस बात पर अच्छी तरह ग़ौर कर लें। अच्छा अब आप आराम करें। थकी होंगी। या चाहें तो घूम आयें, शाम तो हो ही गयी है।"

वनमाला ने घूमना ही पसंद किया। डाक्टर फिर काम में लग गये।

सात दिन तक डाक्टर कुरेशी वनमाला की दृढ़ता की परीक्षा लेते रहे। वनमाला का परिचय दूसरे दिन बेगम कुरेशी से करा दिया गया। डाक्टर के कहने पर बेगम कुरेशी बराबर वनमाला पर वापस लौट जाने के लिए जोर देतीं। वे सुंदरवन के बीहड़ जंगलों की भयानकता का चित्रण करतीं, डाक्टरी प्रयोगों की निर्भयता सिहर कर वर्णन करती, लगातार इंजेक्शनों की तकलीफ़ बतातीं, मौत का भय दिखातीं। लेकिन वनमाला केवल विनोद की मुसकराहट से इसका उत्तर देती।

अंत में सात दिन बीतने पर डाक्टर कुरेशी ने उसे बधाई देते हुए रक्त परीक्षण के लिए आमन्त्रित किया। वनमाला का रक्त बिल्कुल स्वस्थ था। 'कान्ट्रेक्ट' भरते समय उसके हाथ प्रसन्नता के मारे काँप रहे थे।

१५. अपनों की याद

मई का अन्तिम सप्ताह था और शाम का वक्त। वनमाला चौपाटी के समुद्र-तट पर घूम रही थी।

उत्तर भारत के निवासियों को बम्बई का नम जलवायु माफ़िक नहीं आता। साधारणतः उत्तर भारत से जानेवाले कुछ ही दिनों में बम्बई में पेट की गड़बड़ी की शिकायत करने लगते हैं और उनके शरीर का वज़न कम होने लगता है। वनमाला इसके विरुद्ध और तन्दुरुस्त हो गयी थी। उसके गालों पर सुर्खी दौड़ने लगी थी। इसका कारण जहाँ डा० कुरैशी का नियमबद्ध आहार और उनके घर का संयमपूर्ण जीवन था; वहाँ यह कारण भी कम न था कि अब वनमाला को दिन-रात की कुढ़न से छुटकारा मिल गया था और वह जिंदगी पूरी हँसी-खुशी के साथ बिता रही थी।

चौपाटी पर चारों ओर हँसी-खुशी का साम्राज्य था। कहीं कोई ग़मगीन चेहरा नज़र नहीं आता था। कहीं उदासी, बीमारी, बदसूरती, कमज़ोरी, ग़रीबी का नाम निशान नहीं था। जिंदगी अपने जोबन पर थी।

अचानक वनमाला को दस वर्ष पहले की वह शाम याद आयी जब कि लखनऊ के वेलिंगटन होटल में वह बड़ी मेज पर प्रो० जितेन्द्र वर्मा के बगल में बैठी हुई थी। वहाँ भी कुछ कुछ ऐसी ही बात दिखायी देती थी। फ़र्क सिर्फ़ यह था कि वहाँ जैसे बड़ी मेहनत से हँसी-खुशी का आयोजन किया गया था और यहाँ प्रकृति स्वयं ही मुक्त हस्त होकर प्रसन्नता बिखेर रही थी। वहाँ का राग रंग कृत्रिम, बनावट से भरा हुआ था और यहाँ की हँसी खुशी स्वाभाविक, प्राकृतिक थी। शाम गहरी हो चली थी। पूर्णिमा का चन्द्रमा क्षितिज पर दिखायी देने लगा था। समुद्र की लहरें पागल होकर तट की रेत पर दूर तक चढ़कर चली आतीं और फिर वापस चली जातीं। हवा और तेज़ हो गयी, आसमान पर दो चार सितारे भी दिखायी देने लगे। प्रकृति उन्मत्त होकर गाने लगी, दिशाएँ मुसकराने लगीं।

वनमाला बहुत देर तक इन दृश्यों को देखती रही, लेकिन फिर यकायक उदास हो गयी। उसे ऐसा मालूम होने लगा जैसे कि अभी तक कोई उसे धोखा देकर यह प्रसन्नता के झूठे खेल दिखा रहा था और अब उसकी आँखों पर से झूठ का पर्दा उठ गया है। उसे समुद्र का मधुर मर्मर कर्णकटु लगने लगा, हवा तीर सी लगने लगी, आस-पास घूमते हुए लोग महामूर्ख दिखायी देने लगे, एक अजीब सी विरक्ति उसके मन में भर गयी। उसकी इच्छा हुई कि इन सब बेवकूफियों को खत्म कर दिया जाय। लेकिन यह उसके बस की बात नहीं थी इसलिए उसने तय किया कि मुझे ही यहाँ से चल देना चाहिए। वह धीरे-धीरे तट छोड़कर शहर की ओर चलने लगी।

एक बेंच पर एक बूढ़ा पारसी जोड़ा बैठा था। पुरुष के लम्बी-लम्बी सफेद मोछें थीं। वह पारसी टोपी और बन्द गले का गैबर्डीन का कोट पहने था। स्त्री के चेहरे और बाहों से मांस के लोथड़े लटक रहे थे लेकिन फिर भी वह जार्जेट की साड़ी के नीचे बगैर आस्तीन का ब्लाउज पहने अपनी बेडौल बाहों की नुमायश कर रही थी। बूढ़ा मंथर गति से जाती हुई वनमाला की ओर आँखें फाड़कर देखने लगा। बुढ़िया ने लक्ष्य किया तो गुजराती में बूढ़े से गुर्राते हुए कहा और वनमाला की ओर जलती आँखों से देखने लगी। वनमाला को हँसी के बजाय गुस्सा आने लगा। यह चुड़ैल क्या समझती है कि मैं इसके करोड़पति बंदर पर रीझ जाऊँगी। कैसी घूर रही थी! मेरा बस चले तो उसकी आँखें ही निकाल लूँ।

आगे एक बेंच पर दो नौजवान बैठे अँग्रेजी में बात कर रहे थे। एक नौजवान दूसरे को बड़े जोश से समझा रहा था कि कानून सिर्फ पैसा कमाने के लिए नहीं पढ़ना चाहिए, कानून वेत्ताओं पर देश के भविष्य की जिम्मेदारी है। वनमाला इस दुधमुँहे अफलातून की ओर विद्रूप की दृष्टि से देखने लगी। दूसरे नौजवान ने दूसरी ओर उँगली उठाकर कहा, "Look at them."

वनमाला ने भी उधर देखा। एक सूटेडबूटेड चश्माधारी सज्जन अपने साथ बुर्के में लिपटी दो महिलाओं को लिये आ रहे थे। स्पष्ट था कि कोई लखनऊ के नवाबी खानदान के सपूत अपने घर की स्त्रियों को जुहू की हवा

खिलाने ले आये थे, लेकिन परदा उनके साथ चिपका चला आया था। दुध-मुँहे अफ़लातून' ने बुरा मुँह बनाकर धीमे से महाराष्ट्रीयन लहजे में कहा,

"Barbarians."

वनमाला विद्रूप हँसी हँसकर बोली, "जी हाँ देशभक्त महोदय! आपके देश में अधिकतर ऐसे ही 'बेरबेरियंस' (जङ्गली) बसते हैं। बड़ा कठिन है इनका उद्धार।"

नवाबज़ादे भी पास आ गये थे। वनमाला की बात का कुछ अंश उनके कानों में पड़ गया। उन्होंने तीनों लोकों को भस्म करने वाली नज़र से वनमाला की ओर देखा लेकिन उसके चेहरे के तीव्र घृणात्मक भाव को देखकर केवल दाँत पीसकर रह गये। बेंच पर बैठे दोनों युवक आँखें फाड़कर इन देवीजी को, जो न जाने कहाँ से आकर उनकी बातों के बीच में कूद पड़ी थीं और अपनी बात के उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर ही आगे बढ़ी जा रही थीं, देखने लगे।

बस स्टैंड पर लम्बी लाइन लगी हुई थी। वनमाला भी लाइन में लग गयी। एक ही मिनट में उसके पीछे एक-एक करके चार आदमी और लग गये। तीन मिनट के बाद बस आयी, लेकिन वनमाला के आगे के भी दो यात्री उसमें जगह न पा सके और वह आगे बढ़ गयी। वनमाला ने झुँझलाकर कहा "यह बस सिस्टम भी कितना वाहियात है!"

उसके आगे के नव-युवक ने कहा, "जी नहीं! बम्बई का बस सिस्टम तो बेहतरीन है। अभी पाँच मिनट में दूसरी गाड़ी आ ही जाती है। बस सिस्टम तो दिल्ली का बहुत खराब है, घंटे भर तक भी इंतजार करना पड़ सकता है। यहाँ तो अभी बस आती है। आप घबरायें नहीं।"

वनमाला को यह जबर्दस्ती की वकालत अच्छी न लगी। वह बोली, "आप ही को मुबारक रहे यह बेहतरीन बस सिस्टम। मेरा तो लाइन में खड़े होने में दम घुटता है।" युवक उसे देखने लगा।

कुछ देर में बस आयी तो आगे के नौजवान ने वनमाला से कहा, "पहले आप चढ़िए। वनमाला अचकचा गयी। देर होते देखकर पंजाबी कंडक्टर चिल्लाया, "तकल्लुफ घर पर करना। बैठना हो तो जल्दी बैठो नहीं तो दूसरों

की जगह दो।" वनमाला और नव-युवक दोनों इस फटकार से सिटपिटा से गये और जल्दी से जाकर अन्दर एक ही सीट पर बैठ गये। वनमाला का चेहरा लाल पड़ गया था, लेकिन मजबूरी थी। कंडक्टर की बदतहजीबी का इलाज ही क्या था।

युवक बोला, "यह कंडक्टर लोग बड़े बदतमीज होते हैं।"

वनमाला चुप रही। उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था।

युवक ने फिर कहा, 'आप यू० पी० की मालूम होती हैं।"

वनमाला अनिच्छा-पूर्वक बोली, "जी हाँ यू० की ही समझिए।"

"समझिए का क्या मतलब है, "युवक किंचित हँस कर बोला।

वनमाला को उसका जबर्दस्ती मेल बढ़ाना बिल्कुल पसन्द न आया। लेकिन न मालूम क्यों वह उससे कोई कड़ी बात न कह सकी। उसने कहा, "मैं बंगाली हूँ, लेकिन जन्म से यू० पी० में ही रही हूँ। हिन्दी एक तरह से मेरी मातृभाषा ही है।"

"वह तो आपके लहजे से ही मालूम होता है। अब तो आप नाम के लिए ही बंगाली हैं। मैं भी यू० पी० का ही रहनेवाला हूँ। मेरा मकान मथुरा ज़िले में है।"

"अच्छा" कहकर वनमाला ने पिंड छुड़ाने की कोशिश की। लेकिन यह हज़रत अपना पूरा परिचय देने पर तुले थे। उन्होंने बताया—बगैर पूछे; कि मेरा नाम प्रेमकुमार पांडे है, गतवर्ष आगरा कालेज से बी० ए० पास किया है और बम्बई अपनी बहिन के पास आया हुआ हूँ जो दादर में रहती हैं।

इस पर भी वनमाला ने कुछ दिलचस्पी न दिखाई तो पांडे जी कुछ निराश हुए लेकिन वे आसानी से हिम्मत हारनेवाले न थे। उन्होंने पूछा, "आप यहीं रहती हैं? कब से बम्बई में रहती हैं?"

वनमाला आखिर इंसान ही थी। सभ्यता का तक़ाज़ा था कि इस साधारण प्रश्न का उत्तर दिया जाय चाहे प्रश्नकर्ता भयंकर मूर्ख ही क्यों न हो। वह बोली, "मैं यहाँ डेढ़ महीने से आयी हूँ।"

"कहाँ ठहरी हैं? आप के साथ तो फेमिली भी होगी। घूमने आयी हैं?"

पांडे जी ने सारे प्रश्न एक साथ कर डाले। उन्होंने अपने स्वर को साधारण रखने की कोशिश की लेकिन यह ज़ाहिर हो गया कि इन प्रश्नों के उत्तर पर जैसे उनका कोई महत्वपूर्ण कार्य आधारित है।

वनमाला ने अब पहली बार नज़र उठाकर इन महाशय जी को अच्छी तरह देखा। लम्बा, इकहरा बदन, गोरा रंग, बड़ी बड़ी आँखें, लम्बे-लम्बे किंचित बल खाये हुए बाल और कमीज के दो ऊपर के खुले हुए बटन और उनके नीचे झाँकती हुई ताजी धुली सफेद बनियान इस बात का परिचय दे रही थी कि यह साहब जिंदगी को एक सुनहरे सपने के रूप में देख रहे हैं। अचानक ही जैसे जुहू तट पर घूमते समय उसका हृदय विषाद से भर गया था, वैसे ही अचानक पांडे जी को देखकर वह विषाद धुल गया। उसने मुसकुराकर कहा, "मैं अकेली ही आयी हूँ। यहीं अगले स्टैंड के पास डा० हबीब कुरैशी की डिस्पेंसरी है। मैं उन्हीं के यहाँ ठहरी हूँ।"

वनमाला की मुसकुराहट और इस उत्साह-वर्द्धक उत्तर से पांडे जी की कुछ हिम्मत और खुली। वे वनमाला के और पास खिसक आये। वनमाला मन ही-मन मुसकरा उठी।

पांडे जी कुछ कहना चाहते थे लेकिन तभी बस रुक गयी। वनमाला उतरी तो वे भी साथ में उतर गये हालाँकि उन्हें अगले स्टैंड तक जाना चाहिए था। उतर कर उन्होंने कहा, "आप को आपत्ति न हो तो एक प्याला चाय पी ली जाय।"

"कोई आपत्ति नहीं," वनमाला ने मुसकुराकर कहा। पांडे जी की बाँछें खिल गयीं। सामने ही एक रस्तरां जगमगा रहा था। पांडे जी की एक प्याला चाय रस्तरां के खाद्य-पदार्थों की महक पाकर फैल गयी और टोस्ट, मक्खन, आमलेट, पेस्ट्री, पकौड़ी सभी का आर्डर दे दिया गया।

पांडे जी ने और भी खुलकर अपना परिचय दिया। उन्हें सिनेमा से बहुत दिलचस्पी थी। वे शुरू से ही एक प्रख्यात अभिनेता बनने के स्वप्न देखा करते थे। अब बम्बई में उनके सपने सच होने की आशा हो गयी थी। राजमुकुट प्रोडक्शन के प्रोड्यूसर घोड़वाला ने उनसे वादा कर लिया था कि वे अगली 'पिक्चर' में उन्हें ज़रूर कोई अच्छा 'रोल' देंगे। शायद एक महीने में कांट्रेक्ट भी भर

जायगा। रुपये की उन्हें चिन्ता न थी क्योंकि घर के अमीर थे, बाप की मथुरा में आइसक्रीम फैक्ट्री चलती थी। लेकिन वे बाप की सम्पत्ति के इच्छुक न थे। वे तो 'सेल्फ मेड मैन' होना चाहते थे। इसीलिए अब उन्होंने गिरगाँव में २०००) पगड़ी देकर एक 'फ्लैट' किराये पर ले लिया था और दो ही एक दिन में उसमें 'शिफ्ट' कर जानेवाले थे, क्योंकि बहिन के साथ रहने में उनका व्यक्तित्व उभर नहीं पाता था। बहनोई शेयर का बिजिनेस करते थे। वे निहायत मनहूस आदमी थे, 'फाइन आर्टस' से उन्हें कोई दिलचस्पी न थी। इसलिए उनके साथ रहने में पांडेजी का दम घुटा जाता था, क्योंकि वे तो आखिरकार एक कलाकार थे।

इतना परिचय देने पर भी वनमाला पर कोई विशेष रोब न पड़ते देखकर पांडेजी को कुछ आश्चर्य हुआ। वनमाला से उन्होंने उसका कुछ और परिचय पूछा तो उसने संक्षिप्त सा उत्तर दे दिया, "मैंने डा० कुरैशी के मलेरिया एक्सपेरीमेंट्स' में अपने को 'आफ़र' किया है।"

पांडेजी पहले तो कुछ न समझे लेकिन जब वनमाला ने विस्तार से समझाया तो उनकी आँखें फट गयीं। ऊपर की स्वांस ऊपर और नीचे की नीचे रह गयी। उनकी गर्वोन्नित मुद्रा बदल गयी और उन्हें यकायक ऐसा मालूम हुआ कि वे अपने सामने बैठी हुई अप्सरातुल्य सुन्दरी से कितने नीचे हैं। उन्होंने दो क्षण बाद स्वस्थ होकर कहा, "मैं आपके निस्वार्थ और महानतम त्याग पर आपको हृदय से बधाई देता हूँ। आप जैसी ललनाओं से ही देश का सर ऊँचा रहा है और रहेगा।"

"थैंक्स," वनमाला ने मुसकुराकर कहा। लेकिन उसे लगा कि उसके हृदय में फिर विषाद का धुआँ भरने लगा है। यह दिलचस्प आदमी तो गंभीर होता जा रहा था।

वनमाला ने अपना शेष परिचय काफ़ी हद तक झूठा दिया। उसने बताया कि मेरे पति का गतवर्ष 'कार एक्सीडेंट' में देहांत हो गया, और मेरे कोई बाल-बच्चा भी नहीं है।

रस्तरां से उठकर पांडेजी वनमाला को डिस्पेंसरी तक पहुँचा गये और दूसरे दिन भी आने का वादा कर गये।

वनमाला अपने कमरे में पहुँची तो उसका विषाद और गहरा हो गया। खाने को उसने मनाकर दिया क्योंकि नियम विरुद्ध उसने पांडेजी के साथ बेवक्त भारी नाश्ता कर लिया था। कपड़े बदलकर वह चुप-चाप पलंग पर लेट गयी।

उसे न मालूम क्यों रुलाई सी आने लगी। कमरे का हलका मगर खूबसूरत फर्नीचर, सफेद मलमल के पर्दे, हलके नीले रंग से पुती दीवारें, मेज़ पर रखा हुआ गुलदान जैसे उसे काटे खा रहे थे। वह घबरा कर बाहर आ गयी और बाल्कनी पर खड़ी होकर चार मंज़िल नीचे चलने वाली सड़क की चहल-पहल को देखने लगी। लेकिन उसकी उलझन बढ़ती ही गयी। एक तरफ़ से दुमंजिली ट्राम घर-घराती आ रही थी, मोटरों का तांता लगा था, पों पों की आवाज़ें कान फाड़े डालती थीं, आदमी तेजी से इधर-उधर जा रहे थे। सब कुछ ऐसा मालूम होता था, जैसे एक हत्याकारी उन्माद में डूबा हुआ हो। वनमाला फिर लौटकर कमरे में आ गयी और आँखें बंद करके लेट रही।

उसके दिमाग़ में दर्द की आँधी सी उठी हुई थी। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मेरी परेशानी की वज़ह आखिर क्या हो सकती है। धीरे-धीरे उसके मानस-पटल पर मैजिक लैंटर्न के चित्रों की भाँति एक-एक करके कुछ चित्र उभरने लगे।

सबसे पहले उसे दिखायी दिया अपनी माँ का मर्माहत मुख। वह चेहरा बहुत देर तक उसके सामने ज्यों-का-त्यों जड़वत बना रहा और फिर धीरे-धीरे गायब हो गया। दूसरा चित्र आया प्रो० जितेन्द्र वर्मा का। यह चित्र-विभिन्न मुद्राएँ बना रहा था। कभी इस चेहरे की आँखें झुक जातीं और नीचे रखी हुई पुस्तक पर दो बूँद आँसू टपका देतीं, कभी वह ऐसे ही हँसता दिखायी देता जैसे यमुना के साथ मिलकर प्रोफेसर साहब हँसते थे, कभी महात्मा गाँधी की प्रतीकात्मक चिता के सामने गोमती तट पर उठंगे हुए शरीर पर वह बुखार की गर्मी और मानसिक व्यथा से लाल और काला पड़ा वह चेहरा दिखायी देता। फिर वह भी मिट गया और उसका स्थान यमुना के भोले-भाले मुख-मंडल ने ले लिया यमुना कभी रोती हुई कहती, "हाय भाभी! यह आपने क्या किया•••।" कभी वह खिलखिला कर उससे लिपटती और यह कहती मालूम होती, "भाभी! वहाँ तबियत नहीं लगती थी इसलिए जल्दी चली

आयी। कुछ देर बाद यह चित्र हटा और एक पाँच वर्ष की बालिका किलकारी मारती, हँसती, दौड़ती दिखायी दी। मधु!! ......। वनमाला तड़प कर पलंग से उठ बैठी। उसने हाथों से कलेजा दबा लिया।

डेढ़ महीने तक वनमाला को बम्बई की दिलचस्पियों में किसी की याद नहीं आयी थी लेकिन अब उसका जी चाहने लगा कि वह यहाँ एक मिनट न रहे, पहली गाड़ी से लखनऊ चली जाय, चाहे उसे अपने पुराने घर की दासी बन कर ही क्यों न रहना पड़े।

दरवाजे पर पड़ने वाली चाप से वह चौंक पड़ी। फिर बोली, "Come in!" धीरे से दरवाजा खोल कर डाक्टर कुरैशी ने पदार्पण किया।

———

१६. जीवन की मधुरिमा

"हैं ! आपकी तबियत कैसी है ?" डाक्टर कुरैशी ने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा। वनमाला के अस्त-व्यस्त बाल, कुम्हलाया मुँह और आँसू भरी आँखों को देखकर वे शायद अपने आने का उद्देश्य ही भूल गये थे।

वनमाला ने अपने को सम्हालने की कोशिश की। वह बोली, "कोई बात नहीं है। तबियत यों ही कुछ सुस्त हो गयी थी। आज घूमी भी बहुत हूँ। थकान आ गयी है।" लेकिन उसकी आवाज़ भर्रा रही थी।

"थकन और सुस्ती से यह हालत तो नहीं होती। हाथ दिखाइए। आपको बुखार तो नहीं है ?" कहते कहते डाक्टर साहब ने वनमाला की कलाई अपनी उँगलियों में थाम ली। वनमाला के सारे शरीर में अचानक रोमांच-सा हो आया। किन्तु एक ही क्षण में वह प्रकृतस्थ हो गयी।

"बुखार तो नहीं है। सर में दर्द हो रहा है क्या ?" डाक्टर साहब ने पूछा।

"नहीं तो। कोई बात नहीं है। मैंने पहले ही कहा था," वनमाला जबर्दस्ती मुसकरा कर बोली।

"लेकिन कोई बात तो होगी ही," डाक्टर साहब अपनी वैज्ञानिक ज़िद पर अड़े थे।

वनमाला के रोकते-रोकते एक ठंडी सांस निकलकर हवा में बिखर गयी।

डा० कुरैशी कुछ देर तक उसे गौर से देखते रहे। फिर धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में बोले, "आपको कोई बात दुःख दे रही है। मुझे आपकी ज़ाती बातों में दखल देने का हक़ तो नहीं है। लेकिन यह ज़रूर कहना चाहता हूँ कि अब आपकी तन्दुरुस्ती की फ़िक्र हमें रखनी लाज़िमी है। आप जानती हैं कि आपके अलावा दो ही लोग ऐसे हैं जिन्होंने 'एक्सपेरीमेंट्स' के लिए अपने को आफ़र किया है। आप लोगों की 'हेल्थ' पर हमारे तजुर्बे मुनहसिर हैं। इसका भी ख्याल रखिए।"

वनमाला कातर दृष्टि से डाक्टर साहब की ओर देखने लगी। उसकी आँखों में इतना दर्द था कि डाक्टर साहब घबराकर बोले, "मेरा इरादा आपका जी दुखाने का न था। मैं जाता हूँ। इस वक्त आप आराम कीजिए। सुबह बात कर लूँगा।" वे उठने को उद्यत हुए।

वनमाला के आँसू फूट पड़े। वह विह्वल होकर बोली, "डाक्टर साहब! मैं अँधेरे में भटक रही हूँ। मुझे रास्ता दिखाइए।"

डाक्टर साहब ने वनमाला को इस रूप में कभी नहीं देखा था। उनकी कुछ समझ में ही नहीं आ रहा था। वे बोले, "बताइए आखिर बात क्या है?"

वनमाला बोली, "अभी तक मैं जान-बूझ कर आप से और बेगम साहबा से अपना इतिहास छिपाये रही। आज वही बताने जा रही हूँ। आपको जल्दी तो नहीं है?"

डाक्टर साहब का कौतूहल काफ़ी बढ़ गया था। वनमाला ने शुरू से अपने विवाह, नौकरी, यमुना, सम्बंध-विच्छेद आदि सभी की बातें विस्तार पूर्वक बता दीं। फिर बोली, "बम्बई आकर मैं अपने जीवन का दान करके बड़ी शांति अनुभव कर रही थी। इसीलिए मेरी तन्दुरुस्ती भी अच्छी हो रही थी। लेकिन आज शाम से न मालूम मेरी क्या हालत हो गयी है, जैसे कोई जबर्दस्ती मुझे बम्बई से ठेलकर लखनऊ भेजे दे रहा है। मुझे उन लोगों की बहुत याद आ रही है, हालांकि मैं जानती हूँ कि वहाँ जाकर मुझे शांति न मिलेगी बल्कि और परेशानी बढ़ेगी।"

डाक्टर साहब उठकर खिड़की के पास चले गये और बाहर देखने लगे। वनमाला उनकी चौड़ी पीठ की ओर देखती रही। लगभग दो मिनट के बाद वे मुड़े और फिर आकर कुर्सी पर बैठ गये। उन्होंने कहा "मिसेज़ वर्मा! मेरी खुद ही समझ में नहीं आ रहा है कि क्या कहूँ। मैं तो बहुत कमजोर इंसान हूँ। आपकी तारीफ़ किये बगैर नहीं रह सकता कि आप इतने बड़े मुसीबत के पहाड़ को भी कैसे इतमीनान से ढो रही हैं कि किसी को पता भी नहीं चलता। मैंने तो ऐसे में कभी की खुदकुशी कर ली होती!"

वनमाला भीगी आँखों से मुसकराकर बोली, "क्या मैं भी आत्म-हत्या ही करूँ?"

डाक्टर साहब हँस पड़े और बोले, "आप में 'सेंस आफ ह्यूमर' भी बहुत है। नहीं है।''' फिर भी आपने अपने को जो आफर किया है वह भी जिंदगी को एक खूबसूरत ढङ्ग से खत्म कर डालने के लिए ही है। आपके केस में तो इसे भी एक तरह की आत्म-हत्या ही कहना चाहिए।"

वनमाला चौंक पड़ी, लेकिन फिर सँभल कर बोली, "आपकी बात ठीक हो सकती है। लेकिन इस पाप की जिम्मेदारी आप लोगों पर भी तो है जिन्होंने इस आत्महत्या का आयोजन किया है। आत्महत्या करनेवाले को जहर लाकर देनेवाला भी तो अपराधी होता है।"

"जी नहीं," डाक्टर मुसकराकर बोले, "हमने बलिदानियों को बुलाया था। आत्म-हत्या करनेवालों को नहीं। इन दोनों में काफी फर्क होता है।"

"कुछ कुछ समझ रही हूँ। लेकिन ज़रा और स्पष्ट कीजिए।"

सबसे बड़ा फर्क इन दोनों में यह होता है कि आत्म-हत्या करनेवाला जिंदगी को बेकार ही नहीं, बुरी भी समझता है, इसलिए उसे हर हालत में खत्म कर डालना चाहता है। अगर उसने किसी अच्छे मक़सद का बहाना भी किया तो भी उसका असली मक़सद जान देना ही होता है। बलिदानी जिंदगी को खूबसूरत-बहुत खूबसूरत-समझता है, लेकिन किसी ऊँचे मक़सद के लिए—अपने समाज को जिंदगी को और खूबसूरत बनाने के लिए—अपनी जिंदगी को खत्म करने को भी तय्यार रहता है। एककी कोशिश जिंदगी को मिटाने की होती है, दूसरा उसे बनाना सँवारना चाहता है।"

वनमाला सन्न रह गयी। उसे ऐसी बातें सुनने की कभी उम्मीद नहीं थी। डा० कुरैशी ने फिर कहा, "देखिए, मैंने कुछ सख्त बातें ज़रूर कह दी हैं लेकिन इनका मक़सद आपका दिल दुखाना नहीं, बल्कि आपको रास्ता दिखाना है। आपने इसी के लिए तो कहा था न? हालाँकि मुझे एक डाक्टर की हैसियत से यह सब नहीं कहना चाहिए। आप चाहे बलिदानी बनकर आयी हों या खुद-कुशी करने—मेडिकल साइंस के लिए दोनों बराबर हैं। हमारे तजुर्बों पर इनसे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन मैं इन्सान की हैसियत से आपको यही सलाह दूँगा कि आप अब भी लौट जायँ। अपने पुराने शौहर के पास वापस जायें

या कहीं और। लेकिन जिंदगी से प्यार करना सीखें, मौत खुद अपनी जगह कोई अच्छी चीज़ नहीं है।"

पाँच मिनट तक कमरे में निस्तब्धता रही। केवल मेंटल्ज़ पीस पर रखी घड़ी की टिकटिक भर सुनायी दे रही थी। इसके बाद डा० कुरैशी यह कहकर उठ गये, "आप कल तक अपना फैसला मुझे बता दें।"

वनमाला बहुत देर तक जागती रही। उसे दुःख नहीं हो रहा था, अपने पर भी क्षोभ नहीं था। उसे था केवल आश्चर्य–घोर आश्चर्य। उसकी समझ ही में नहीं आ रहा था कि इतनी जबर्दस्त भूल भुलय्या में मैं अब तक कैसे पड़ी रही और इतनी मोटी बात भी नहीं समझ पायी। उसे ऐसा मालूम होता था कि आध घंटे पहले की पागल वनमाला मर गयी है और उसकी विकृत लाश छिन्न-भिन्न अवस्था में सामने पड़ी है, जिस पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं।

सुबह उसने डा० कुरैशी को बता दिया कि मेरी आँखों से मोह का पर्दा हट गया है और मैं अब सच्चे दिल से-जनकल्याण के भाव से आपके प्रयोगों के लिए तय्यार हूँ और यदि इन प्रयोगों का फल देखने के लिए मैं जिंदा बच गयी तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

डा० कुरैशी कुछ क्षण तक उसे प्रशंसा युक्त दृष्टि से देखते रहे। फिर मुसकरा कर बोले, "मुझे आपसे ऐसी ही उम्मीद थी। मेरा मुबारकबाद मंजूर कीजिए।"

वनमाला को ऐसा लगा जैसे उसके सारे कष्टों का बदला इस एक प्रशंसा वाक्य में मिल गया है।

नाश्ता करके बैठी ही थी कि प्रेमकुमार पांडे आ गये। आज उनके लम्बे शरीर पर रेशमी कुर्ता बहार दिखा रहा था। कल पांडेजी से वनमाला का जैसा मनोरंजन हुआ था उस लिहाज़ से आज उनके आने से उसे खुशी न हुई। फिर भी कल का विद्रूप भाव प्रबल न होने के कारण सौजन्य के नाते उनकी अभ्यर्थना तो आवश्यक थी ही।

पांडेजी को आज का वनमाला का गंभीरतापूर्ण बर्ताव देखकर कुछ निराशा हुई। वे चाहते थे कि वनमाला कल रस्तरां में जैसे खुलकर बात कर रही थी,

वैसे ही करे। कुछ देर इधर-उधर की बात करने के बाद बोले, "आपको कविता से कुछ दिलचस्पी नहीं है?"

वनमाला बोली, है, "लेकिन कोई खास दिलचस्पी नहीं है।"

पांडेजी ने कहा, "मुझे इस पर आश्चर्य है। आपकी बंगभूमि तो कला और साहित्य की जननी है। बंगाल की मिट्टी में गीत उगते हैं। मुझे तो बंगला गीत— विशेषतः रवि बाबू के गीत पागल कर देते हैं। मालूम होता है कि जीवन का कण-कण उन्मत्त होकर नाचने लगा है।"

वनमाला को मालूम हुआ कि उसे कोई ज़ोर का बहाव किसी अज्ञात दिशा की ओर बहाये लिये जा रहा है। वह बोली, "मैं भी रविबाबू को बहुत पसंद करती हूँ। आपको उनके कुछ गीत याद हैं तो सुनाइए।"

पांडेजी की बांछें खिल गयीं। उनकी वास्तव में बंगला और हिंदी काव्य में पैठ थी। गला भी उन्होंने लासानी पाया था। उनकी स्वर लहरी कमरे में सम्मोहन सा पैदा करने लगी।

वनमाला झूम उठी। गीत के शब्दों के साथ उसके आगे एक कल्पना चित्र खिंच गया। बंगाल की शस्य श्यामला भूमि, धान के खेतों के बीच उभरे हुए छोटे-छोटे गांव, मिट्टी का घड़ा लिए, वर्णनातीत भावनाओं का भार लिए, अजनबियों की पदचापों से चौंकती ठिठकती तालाबों की ओर जाती हुई सांवली सलोनी ग्राम बालाएँ और आम और केलों के झुरमुट में उनकी प्रतीक्षा में खड़े प्रेमीगण। उसने कई गीत सुने।

तीसरा गीत समाप्त होने पर भी वह कुछ देर खोयी-खोयी सी बैठी रही। फिर एक निश्वास छोड़ कर बोली, "ओह! जीवन कितना मधुर है।"

पांडे जी ने कहा, "इसमें भी कोई संदेह है? जीवन में माधुर्य ही माधुर्य है। फिर भी अधिकतर मूर्ख जीवन को रो पीट कर ही काटने के पक्षपाती हैं। यही नहीं कुछ पागल तो ऐसे होते हैं जो अपने हाथों ही जीवन को नष्ट कर डालते हैं। कैसा घृणित कृत्य है।"

वनमाला चौंक उठी। अनचाहे ही उसने कह दिया, "मैं भी तो यही कर रही हूँ।"

पांडे जी के मुख पर मलिन छाया घिर आयी। मालूम होने लगा कि उनकी

आंखों में आँसू उमड़ रहे हैं। उन्होंने कहा, "आपने इसकी याद दिलाकर अच्छा नहीं किया। यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है कि आपका 'केस' उन लोगों से बिल्कुल अलग है जिनका मैंने ज़िक्र किया था। आपका उद्देश्य महान है। लेकिन क्षमा कीजिएगा, मैं इस बलिदान की फिलासफ़ी को समझ नहीं पाता। हाँलाकि कल मैंने आप के बलिदान के संकल्प पर आपको बधाई दी थी लेकिन वास्तव में मेरी समझ ही में नहीं आता कि जीवन का विनाश करके जीवन को लाभान्वित कैसे किया जा सकता है। मैं विज्ञान और तर्क की बात नहीं कहता, मैं तो केवल हृदय की बात कहता हूँ।······ और आपके जैसे सुन्दर जीवन को नष्ट करने की कल्पना भी मेरे लिए दुष्कर है।"

वनमाला मुसकराने लगी, "आप कविता प्रेमी ही नहीं, स्वयं भी कवि मालूम होते हैं।"

पांडे जी का 'मूड' बदल गया। वे खुश होकर बोले, "अजी मैं तो तुक्कड़ हूँ, कवि कहाँ हूँ।"

वनमाला ने यों ही एक बात कही थी लेकिन अब उसे सौजन्य के नाते कविता पाठ के लिए आमन्त्रित करना पड़ा। पांडे जी को जैसे स्वर्ग का खजाना मिल गया। जेब से नोट बुक निकाली और एक के बाद एक करके चार कविताएँ सुना डालीं। उन्होंने छायावाद, हालावाद, प्रयोगवाद, सभी पर कलम तेज़ किया था। शब्दों में अनगढ़पन और भाषा में खड़खड़ाहट के साथ ही कविता विषय में भी काफी उलझन मौजूद थी। लेकिन इस सबके बावजूद अनुभूति की तीव्रता ने उन्हीं अनगढ़ शब्दों में एक लावण्य सा भर दिया था और कविताएँ बुरी कहने लायक न थीं, विशेषतः शृंगारिक कविताएँ अच्छी बन पड़ी थीं।

पांडे जी वनमाला को अभी और उबाते लेकिन भाग्यवश हशमत ने आकर कहा, "खाना तय्यार है। यहीं लाऊँ या वहीं चलेंगी।"

वनमाला ने जल्दी से कहा, "वहीं चलती हूँ।"

पांडे जी ने उठते हुए कहा, "मैंने आप का बहुत समय खराब किया।"

वनमाला बोली, "नहीं, नहीं। आपके साथ समय बड़ी अच्छी तरह कट जाता है। जरूर दर्शन देते रहिए।" कहकर वह उठ खड़ी हुई।

पांडे जी अपनी बहिन के घर की ओर जा रहे थे तो उनके पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहे थे।

खाना खाने के बाद वनमाला फिर पलंग पर लेट रही। उसकी कल्पना के फिर पंख लग आये और मानस-पटल पर बंगाल की गीतमयी धरती के, जहाँ के दर्शन करने का उसे सौभाग्य न प्राप्त हुआ था लेकिन जिसे वह अपनी ही कहने की अधिकारिणी थी, चित्र उभरने लगे। पतवार की थाप पर माँझियों के गीत, भारी-भारी मछलियों को उठाये सुकुमार मछुवाहिनों की पद चाप, पूजा उत्सव में ग्रामवासियों का नृत्य मौन स्वर में उसके कानों में रस उँडेलने लगा। धीरे-धीरे उसे फ़िजेरल्ड कृत उमर खय्याम के अनुवाद की पंक्तियाँ याद आयीं। प्रो० वर्मा के पुस्तकालय में इस पुस्तक को पढ़कर उसने कवियों और कविता का काफी मज़ाक उड़ाया था और प्रोफेसर साहब उसकी भावुकता की हीनता पर मुसकरा पड़े थे। इस समय वे ही पंक्तियाँ सुकुमार बालिकाओं की भाँति उसके आगे थिरकने लगीं। मानस-पटल पर नये चित्र बनने शुरू हो गये। धीमी-धीमी हवा, दूर-दूर हरियाली, गुलाब और गुल्लाला के फूलों की महक से बोझिल वातावरण और इसके साथ ही एक टूटी फूटी कब्र पर पड़े दो-चार फूल। पास ही किसी लम्बे वृक्ष से टेक लगाये, मखमली लबादा, शलवार और ईरानी पगड़ी पहने थे, एक गोरा चिट्टा लम्बा, सफेद दाढ़ी मोछों वाला वृद्ध जिसकी अधखुली, मदमाती आँखों में शराब की लहरें मौत की काली छाया का गला घोंटे दे रही थीं। उसके हाथ में लाल चमड़े से मढ़ी कविता पुस्तक जिसकी जिल्द पर सुनहरी अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था। पास ही में सटी हुई, आम की फाँकों जैसी आँखों से मस्ती और मुसकान बिखेरती हुई, हाथ में रुबाब लिए एक तरुणी और उसके गले से फूटता हुआ किसी अजनबी भाषा का मन-मोहक गीत पास में आधी भरी हुई लम्बी गर्दन वाली काँच की सुराही और लुढ़का हुआ बिल्लौरी प्याला।

वनमाला आँखें बन्द करके मुसकराने लगी। उसकी पलकों पर जैसे कोई गुलाब की पंखड़ियों से थपकियाँ देने लगा। उसे नींद आ गयी और नींद में भी कविता के मादक स्वर उसके कानों में गूँजते रहे। दो घंटे बाद वह जागी तब भी उसकी आँखों से मुसकान फूटी पड़ रही थी। गुनगुनाते हुए वह कमरे

में इधर-ऊधर टहलने लगी। दो घंटे तक टहलने पर भी उसके पैरों में थकान का नाम तक न था। चार बजे के लगभग वह गुसलखाने में गयी। डेढ़ घंटे तक पानी उछालती रही और उसके बाद पौन घंटे तक क्रीम,पाउडर, रूज वगैरा से उलझी रही। पन्द्रह मिनट की खोज के बाद उसे अपने पसंद की साड़ी मिली और उसे पहनकर जब शीशे के सामने खड़ी हुई तो अपने ही दमकते हुए रूप को देखकर शर्म से लाल पड गयी।

अपनी मामूली थाप देकर डाक्टर कुरेशी जब कमरे में आये तो उसे देखकर एक क्षण के लिए स्तंभित रह गये। वनमाला यह देखकर फिर मुसकुरा पड़ी।

डाक्टर साहब बोले, "मिसेज़ वर्मा! मैं आपसे कल यह कहने आया था कि······।"

वनमाला बोली, "डाक्टर साहब! आप मुझे एक बोतल ह्विस्की मंगा देंगे?"

डाक्टर साहब शराब से परहेज़ करते थे। वे आँखें फाड़कर बोले, "क्यों? क्या आप शराब पीने की आदी हैं?"

"मैंने अभी तक नहीं पी लेकिन अब पीना चाहती हूँ, वह मुसकुराकर बोली।

लेकिन क्यों? डाक्टर साहब ने घबराते हुए पूछा।

वनमाला खामोश मुसकुराती खड़ी रही। डाक्टर साहब को बैठने की भी याद न रही। कुछ देर में वह बोली, "मैंने सुना है कि उर्दू 'पोइट्री' दिल के तारों को यकबारगी झनझना देती है। आपको कुछ दिलचस्पी है, शायरी से।"

डाक्टर साहब बोले, "जी नहीं। 'साइंटिस्ट' दिमाग को दिल का रुबाब बजाने की फ़ुर्सत नहीं रहती। मैं तो इस मामले में बिल्कुल खुश्क हूँ। हाँ, बेगम साहबा ज़रूर आपकी मदद कर सकती हैं। उन्हें कदबी दिलचस्पी ही नहीं है, वे खुद भी शायरा हैं······लेकिन······माफ़ कीजिए। आपको आज हो क्या गया है? शराब और शायरी की ज़रूरत क्यों पैदा हुई। अभी तक तो आपने ऐसी चीज़ों में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी थी।"

वनमाला खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गयी। एक क्षण बाहर देखने के बाद वह घूमी। मुसकुराते हुए उसने कहा, "मैं जीवन के अंतिम क्षणों का पूरा आनंद उठा लेना चाहती हूँ। मेरे ख्याल में मुझे इसका पूरा अधिकार है।"

डाक्टर साहब एक क्षण उसे आँखें फाड़े देखते रहे। फिर मुसकुराकर बोले, "इसमें क्या शक है। आपको पूरा हक़ है।"

———

१७. जीवन का मोह

एक सप्ताह तक वनमाला बहुत खुश रही और उसके बाद यकायक फिर उदास हो गयी।

एक सप्ताह तक उसका सारा समय अच्छे से अच्छे खानों की उपलब्धि, अच्छे से अच्छे कपड़ों के चुनाव, रसमय संगीत, प्राणदायक साहित्य, नयनाभिराम चित्रों और दृश्यों की खोज आदि में लगा रहा। पांडेजी से इस अर्से में खूब मेल बढ़ गया क्योंकि इन सब बातों के लिए वे न केवल साथी ही थे बल्कि अच्छे गाइड भी थे। सारा दिन उसके साथ बिताते, फिर भी रात को अलग होते समय उनको जैसे कोई जबरदस्ती वनमाला से अलग कर देता था।

एक दिन एलिफेंटा की गुफाएँ देखने की ठहरी। वनमाला चाहती थी कि इस यात्रा में संभव हो तो कुरैशी दम्पत्ति और नहीं तो कम से कम बेगम कुरैशी ज़रूर साथ चलें। डाक्टर साहब को तो अपने कार्य और अध्ययन से ही कहाँ फ़ुर्सत थी, वे जाते ही काहे को, लेकिन पांडेजी ने जान-बूझकर ऐसे दिन इस यात्रा का प्रबंध किया कि बेगम साहबा जा ही न सकें। उस दिन उन्हें अपने एक रिश्तेदार के घर जाना था। वनमाला की खुशी आधी रह गयी। फिर भी वह उस दिन का प्रोग्राम 'कैंसिल' न कर सकी।

इन लोगों ने स्टीमर की बजाय एक छोटी नाव से जाना तय किया। सुबह आठ बजे जेटी से नाव खुल गयी। वनमाला के लिए समुद्र की लहरों पर चलने का यह पहला अवसर था। बोटिंग तो उसने न जाने कितनी बार प्रो० वर्मा के साथ की थी लेकिन गोमती की बोटिंग और समुद्र की नौका यात्रा का मुकाबला ही क्या। समुद्र बिल्कुल शांत था, हवा बहुत हलकी-हलकी बह रही थी। फिर भी शांत समुद्र में जैसी लहरें उठ रही थीं उसकी आधी भी शायद मैदानों की बरसाती नदी में न उठती हों। वनमाला की नाव धीरे-धीरे लहरों के थपेड़ों में

बैठती-उभरती चली जा रही थी। उसका सर घूमा जा रहा था और दिल बैठ रहा था।

बहुत देर तक तो वह तट की ओर देखती रही लेकिन जब दो मील निकलने के बाद तट भी अस्पष्ट दिखायी देने लगा और चारों ओर अतल नीलाभ जल-राशि ही दिखाई दी तो उसके चेहरे का रंग उड़ गया। अनजाने ही वह पांडे से और सटकर बैठ गयी।

पांडे जी का दिल जोरों से धड़कने लगा। उन्होंने धीरे-धीरे उसे और अपने शरीर से सटने का अवसर दिया।

मांझी मुसकराने लगा। बोला, "बाई जी को बहुत डर लगता हैंगा।" वह बेचारा इन दोनों को पति-पत्नी समझ रहा था। वनमाला उसकी बात सुनकर चौंक गयी। एक क्षण को उसने सोचा कि प्रकृतिस्थ होकर बैठ जाय लेकिन चारों ओर फैले समुद्र को देखकर उसकी आँखें बंद हो गयीं। अनजाने ही वह पांडे जी से थोड़ी और चिमट गयी।

"आपको डर लग रहा है?" पांडेजी ने काँपती हुई धीमी आवाज़ में पूछा। वनमाला ने कुछ उत्तर देना चाहा लेकिन उसके गले में जैसे कुछ अटक गया। वह आँखें बंद ही किये रही।

पांडेजी के दिमाग़ में तूफ़ान उठने लगा। खैरियत हुई कि उन्हें ख्याल आ गया कि इस समय दिन दहाड़े यह उचित नहीं है। फिर ऐसी जल्दी ही क्या है? यह तो यकीनी बात है कि चिड़िया हाथ आ गयी है। निकलकर जायगी कहाँ। जल्दी करने में शायद मामला खराब हो जाय। इसलिए उन्होंने अपने मन पर संयम रखा। उन्होंने केवल प्यार भरे स्वर में पूछा, "क्या बात है?"

आँखें बंद किये ही वनमाला बोली, "मेरा जी ठीक नहीं है।"

पांडेजी ने फौरन थैले में से संतरे और लेमनड्राप निकाले। वनमाला को देते हुए उन्होंने कहा, "यह 'सी सिकनेस' है। अक्सर लोगों को पहली बार हो जाती है। मैं तो नाव पर पहली बार एलीफेंटा गया था तो कै ही हो गयी थी। यह लीजिए। जी मिचलाना बंद हो जायगा।"

वनमाला ने संतरे की फाँकें और लेमन-ड्राप जबर्दस्ती मुँह में डाल लिये।

किसी तरह राम-राम करके नाव एलीफेंटा के तट पर लगी तो वनमाला ने चैन की साँस ली। पाँडेजी को तो मानों नशा चढ़ा था। माँझी से बोले, "वापसी में भी तुम्हें ही ले चलना होगा। भाग न जाना।" लेकिन वनमाला चीख सी उठी, "नहीं, नहीं, उसे जाने दीजिए।"

माँझी ने बिगड़ कर कहा कि दोनों ओर के लिए नाव तय हुई थी, यहाँ से सवारी नहीं मिलेगी। आधे किराये में भी काम निकालना चाहते हो।

वनमाला ने पर्स निकाल कर दोनों ओर का किराया दे दिया। पाँडेजी कुछ न समझ सके कि उसे वापस करने का रहस्य क्या है। लेकिन उनके मन की विशेष स्थिति के अनुसार उनकी कल्पना ने नये-नये ताने बाने डालने शुरू कर दिए।

वनमाला को भूख लग आयी थी इसलिए एक साफ़ सी जगह पर टिफिन केरियर खोल डाला। खाते-खाते पाँडे ने कहा, "आज की नौका-यात्रा हमेशा याद रहेगी।"

वनमाला के आगे चारों ओर उथल-पुथल करते सागर का दृश्य फिर गया और वह सिहर उठी। पाँडेजी की हिम्मत बढ़ी, "यह यात्रा कभी समाप्त न होती तो अच्छा था, क्यों?"

वनमाला ने उन्हें आँख उठाकर देखा। उनकी आँखों में मस्ती की मुसकान देखी तो खीझ कर बोली, "पांडेजी! हर चीज़ का मौका हुआ करता है। हर जगह कविता अच्छी नहीं लगती।"

उन्होंने चुप्पी साध ली, लेकिन उनकी आशा और बलवती हो उठी।

एलीफेंटा की गारों में घूमते समय गाइड प्रत्येक मूर्ति का इतिहास ढंग से बता रहा था लेकिन उसके शब्द पांडेजी के कानों से टकराकर उनके मस्तिष्क को स्पर्श किये बगैर लौट आते थे। वनमाला को मूर्तियों के बारे में कुछ जानने का चाव था किन्तु पाँडेजी की चेष्टाएँ अच्छी नहीं मालूम हो रही थीं।

घूमते-घूमते काफी देर हो गयी। अन्तिम स्टीमर का समय हो गया था। जल्दी से दोनों आकर स्टीमर पर सवार हो गये। इस स्टीमर पर अधिक भीड़

न थी। डेक के एक कोने पर खड़े होकर वे डूबते हुए सूर्य की किरणों में चमकते हुए समुद्र को देखने लगे। वनमाला बहुत खुश थी। लेकिन पांडेजी के हृदय को यह दृश्य इतनी प्रसन्नता नहीं दे रहा था। उन्हें यही अफ़सोस था कि स्टीमर यह यात्रा मुश्किल से आधे घंटे में तय कर डालेगा। उन्होंने कहा, "मेरा बस चले तो मैं इधर की स्टीमर सर्विस बंद करा दूँ।"

"क्यों? स्टीमर बेचारे ने आपका क्या बिगाड़ा है?" वनमाला हँसकर बोली।

"कवि हृदय के लिए नौका में जो बात है वह इस भारी भरकम बेडौल-सी चीज़ में कहाँ। नाव में लहरों के थपेड़े कल्पना शिशु को निरंतर थपकियाँ देते रहते हैं। फिर खास तौर से आज–आपके साथ–के क्षण क्या हमेशा मिलनेवाले हैं? नौका-यात्रा में यह क्षण और लम्बे हो जाते।... "

"जी हाँ। और मेरा भी पूरी तरह कचूमर निकल जाती," वनमाला ने हँसकर कहा।

"क्यों?" पांडे जी ने आश्चर्य से पूछा।

"मेरा तो डर के मारे बुरा हाल था। चारों ओर बिखरा हुआ समुद्र जैसे निगलना ही चाहता हो। अब तो कान पकड़ लिये। समुद्र में कभी नाव पर यात्रा न करूँगी।"

पांडे जी को आश्चर्य हुआ। यह स्त्री, जो मृत्यु में सहर्ष जाने को तय्यार है, एक फ़जूल-सी बात से इतना डर सकती है? यह बात समझ में आनेवाली न थी। बम्बई में सैकड़ों आदमी नावों पर घूमते हैं। नहीं, दरअसल बात कुछ और है। स्त्रियाँ पुरुषों को आकृष्ट करने के लिए अपने को भीरु दिखाना चाहती हैं। वे खुशी के मारे झूम उठे।

वनमाला के और पास खिसककर वे बोले, "लेकिन इस समय भी तो चारों ओर समुद्र लहरा रहा है। इस समय तो आपको डर नहीं लग रहा है। सुबह क्यों लग रहा था?"

"इसलिए कि इस समय एक मज़बूत जहाज़ सहारा दिये है। समुद्र चारों

और लहराता ही नहीं, हहराता हो, तो भी पैरों के नीचे मज़बूत जहाज़ की जमीन इत्मीनान देती रहती है।"

पांडे जी ने कवि हृदय पाया था। वनमाला की बात में उन्हें बड़ा सुंदर रूपक दिखायी दिया। उन्होंने सोचा कि वनमाला इस रूपक का प्रयोग मेरे लिए ही कर रही है। उन्होंने मुसकराकर पूछा, "अगर मज़बूत जहाज़ मिल ही न सके? नाव ही मिल सके?"

"मजबूरी में तो तख्ते का भी सहारा लिया जायगा। लेकिन डर तो लगा ही रहेगा।"

पांडे जी का जी और खुश हो गया। नाव का इशारा मेरी तरफ नहीं है। मेरे साथ रहने में तो डर लग ही नहीं रहा है। वे बोले, "कुछ लोग तो सिर्फ तैरना ही पसंद करते हैं।"

वनमाला ने फिर नज़र उठाकर उनकी ओर देखा। फिर दूसरी ओर मुँह करके बोली, "तैरना तैरने के लिए अच्छा होता है, लेकिन केवल अपनी तैराकी के बल पर सागर पार करने की बात सोचना मूर्खता है। समुद्र को जहाज़ द्वारा ही लांघा जा सकता है।"

बात-चीत आगे न बढ़ सकी। बंदरगाह की रोशनियाँ बहुत पास आ गयी थीं। उतरकर दोनों एक रेस्तरां में घुस गये क्योंकि भूख लग आयी थी। वनमाला ने डटकर भोजन किया। नगर में आकर उसे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही थी। एलीफेंटा की गुफाओं में इतिहास के विद्यार्थियों और कलाकारों के लिए चाहे जितना आकर्षण हो, वनमाला के लिए तो आधुनिक सभ्यता से जगमगाते हुए नगर ही सुखदायी थे। पत्थर की अनगढ़ मूर्तियों में और लोगों को चाहे मूर्तिकारों की कल्पना के दर्शन होते हों, वनमाला को तो केवल पत्थर का खुरदरापन ही दिखायी दिया था। साथ ही साथ वनमाला में इतनी ईमानदारी भी थी कि अन्य लोगों भाँति महज़ 'फैशन' समझकर इन मूर्तियों की प्रशंसा कर देती। उसने बात चलने पर उन मूर्तियों के बारे में अपनी सम्मति साफ-साफ बता दी।

और कोई होता तो पांडेजी उससे घण्टों बहस करते। किसी कलाकृति

का अपमान उसे सह्य न था। यह दूसरी बात है कि कला के हर क्षेत्र में उनकी पैठ थी या नहीं। फिर भी इस अवसर पर वे मुसकरा कर रह गये। उन्होंने कहा, "आपको पसन्द न आना ठीक ही है। जिसे बनाने में विधाता ने स्वयं अपनी सारी कला दिखा दी हो उसे मनुष्यों की कला क्या अच्छी मालूम होगी ?"

वनमाला ने एक बार टेढ़ी नजर से उन्हें देखा। दिन भर वे तिल-तिल करके बढ़ते आ रहे थे। वनमाला ने चाहा कि वहीं पर उन्हें एक फटकार बतायी जाय, किन्तु यकायक उसने सोचा कि देखें यह महानुभाव कहाँ तक बढ़ते हैं। वह मुसकरा पड़ी। पांडेजी बाग़-बाग़ हो गये।

भोजन के बाद पांडेजी की तजवीज़ सिनेमा देखने की हुई। वनमाला थकी हुई थी लेकिन पांडेजी के तमाशे को अन्त तक पहुँचा देने का लोभ संवरण न कर सकी।

उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। दोनों सिनेमा गये किन्तु वनमाला चित्र देख न सकी। वह सोचती रही······। इस अरसे में उसने अपनी योजना भी बना ली। सिनेमा के खेल में क्या दिखाया गया था, यह किसी ने न देखा।

साढ़े बारह बजे वनमाला के फ्लैट के नीचे पहुँचे तो पांडे जी ने थरथराते स्वर में कहा, "आपसे कुछ बातें करना चाहता हूँ। अगर आपको बहुत नींद न लगी हो तो पाँच मिनट के लिये आपके कमरे में चलूँ।"

वनमाला ने मुसकुरा कर कहा, "ज़रूर, ज़रूर, आइए।"

पांडेजी उछलते हृदय और काँपते पैरों से ऊपर चढ़े। वनमाला ने उन्हें कुर्सी पर बैठने का इशारा किया और खुद कमरे में एक ओर पड़े हुए पर्दे के पीछे कपड़े बदलने चली गयी। पाँच मिनट के बाद वह निकली तो उसके शरीर पर सफेद बादल की धोती थी। इस सफेद कपड़े में उसका रूप जैसे और भी निखर आया था। पांडेजी उसे एक टक देखते ही रह गये।

पलंग पर बैठते हुए वह मुसकराकर बोली, "कहिए। क्या कहना चाहते थे ?"

पांडेजी काँपते गले से बोले, "कहने की हिम्मत नहीं पड़ रही है। लेकिन अब कह ही डालूँ तो दिल को चैन मिले। वनमाला जी! आपने पहली ही नज़र में मुझे अपना बना लिया है। मैं आपके बग़ैर एक क्षण भी नहीं रह सकता। मेरे मन, जीवन, प्राण में आप ही बस रही हैं। मेरी ज़िंदगी आपके ही हाथों में है ·····।" कहते-कहते उन्होंने वनमाला के पैर पकड़ लिए।

वनमाला की आँखों में शरारत की मुसकराहट और गहरी हो गयी। वह खिलखिला पड़ी और कहने लगी, "मुझे भी प्रौढ़ावस्था में बड़े भाग्य से आप जैसा प्रेमी मिला है।"

पांडेजी को जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया। वे उछल कर खड़े हो गये और बोले, "क्या कहा आपने? प्रौढ़ावस्था! आप ········आप ऐसा निष्ठुर परिहास भी कर सकती हैं?"

"परिहास नहीं है, सच बात है। आपको विश्वास न हो तो देखिए," कहते हुए वनमाला ने अपना हाई स्कूल का सर्टीफिकेट बक्स से निकाल कर दिखाया जिसपर उसकी जन्मतिथि ५ मई १६०६ लिखी थी। "सच्ची बात तो यह है कि आप ही की उम्र का मेरे एक लड़का भी है," यह झूठ भी उसने जड़ दिया।

पांडेजी धम से कुर्सी पर बैठ गये। उनका चेहरा बिल्कुल सफेद पड़ गया। यह एकदम से उन्हें क्या दिखा दिया गया। उन्होंने तो वनमाला की उम्र बीस-बाइस के करीब समझी थी। उनका चेहरा सफेद पड़ गया। वनमाला ने मुसकराते हुए कहा, "आप चुप क्यों हो गये?"

पांडेजी ने तुरन्त नमस्ते किया और उठकर बाहर लपके। दरवाजे पर उनके कान में वनमाला के शब्द पड़े, "अरे आपका प्रेम इतना क्षणिक था······।" वे भागते ही गए।

वनमाला हँसते-हँसते बिस्तर पर लोटने लगी। उसके पेट में दर्द होने लगा, आँखों में आँसू आ गये, हिचकियों के मारे बुरा हाल हो गया, लेकिन उसकी हँसी नहीं रुकती थी। वह आज सुबह से लेकर सिनेमा हाल तक की पांडेजी की एक एक हरकत याद करती थी और इस समय उनके

बेतहाशा भागने से उसका मिलान करती थी तो फिर हँसी का फौवारा फूट पड़ता था।

दस मिनट तक उसकी यही दशा रही। उसका बुरा हाल हो गया। बड़ी मुश्किल से उसकी हँसी थमी। फिर वह यकायक उदास हो गयी। वह सोचने लगी कि मैंने अच्छा नहीं किया। नाहक बेचारे के दिल को चोट पहुँचायी। क्या हर्ज था अगर..."। मेरे सामने नैतिकता का क्या सवाल है? और हो भी तो इस समय, जब मैं जीवन के सारे सुख उठा लेना चाहती हूँ, तो इसी से क्यों वंचित रहूँ। उसका जी चाहने लगा कि किसी तरह पांडेजी फिर आ जाते। लेकिन मजबूरी थी।

———

१८. मौत का डर

वनमाला दूसरे दिन सो कर उठी तो उसका सर भारी था और तबियत उदास।

हर एक नशे की मस्ती के बाद उसका खुमार उतरना ज़रूरी होता है। एक सप्ताह के उमंग भरे जीवन के बाद उसे अपने सारे काम—सारे रास-रंग व्यर्थ और पाखंड भरे मालूम होने लगे। आँख खुलने के बाद भी वह अपनी आदत के खिलाफ़ बहुत देर तक बिस्तरे पर पड़ी रही। विगत सप्ताह की घटनाएँ एक-एक करके उसकी आँखों के आगे आने लगीं और उसे और उदास बनाने लगीं। वह सोच रही थी कि मैं जो प्रसन्नता, जो मस्ती अपने जीवन के अंतिम क्षणों में पाना चाहती थी वह मुझे कहाँ मिली। मैंने अच्छे से अच्छे खाने खाये, खूब सैर-सपाटा किया, लेकिन फिर सब ज्यों-का-त्यों। यह मालूम नहीं होता कि इनमें कोई खास बात थी। सच्ची बात तो यह है कि अब वे रास-रंग करने को जी भी नहीं चाहता। जो चीज़ उबा दे वह प्रसन्नता कैसे हो सकती है। वह तो केवल प्रवंचना है। जीवन में कहीं कोई भारी कमी है, लेकिन वह है क्या?

वह जैसे मन मारे उठी। स्नानादि के बाद उसने उतने ही बे मन से नाश्ता किया। फिर आकर कमरे में बैठी। अखबार आ गया था, उसी से समय काटना चाहा लेकिन जल्दी ही उसे उलझन होने लगी और वह अखबार फेंककर फिर पलंग पर लम्बी हो गयी। उसके दिमाग ने फिर ताने-बाने बुनने शुरू कर दिये। वह सोचने लगी कि आखिर मुझे किस चीज़ की ज़रूरत है। सारी चीजें उपलब्ध होते हुए भी यह उदासी का भूत मेरा पीछा क्यों नहीं छोड़ता? दूसरे लोग इस तरह क्यों नहीं रहते? बगलवाले कमरे से हँसी की आवाज़ आ रही है। इसमें एक साधारण परिवार रहता है। ढाई सौ महावारी आमदनी और चार

प्राणी। लेकिन फिर भी दोनों बच्चे और माँ हमेशा खिलखिलाते ही रहते हैं। काश मैं भी अपनी बच्ची के पास होती! लेकिन मैं जब वहाँ थी तब भी कौन मुझे खुशी होती थी, वहाँ तो और कुढ़-कुढ़कर जीवन बीतता था। अच्छा ही हुआ जो दिल पर पत्थर रखकर वहाँ से चली आयी। जिंदगी तो मिली।

लेकिन जिंदगी कहाँ मिली। मैं तो मरने के लिए आयी हूँ। चाहती हूँ कि मरने के पहले यह क्षण सुख से बिता सकूँ, लेकिन वह भी नहीं मिलता। क्यों नहीं मिलता? दूसरों को क्यों चारों ओर से खुशी घेरे रहती है।

विचारधारा में घूम फिर कर इसी प्रश्न पर आ जाने पर वनमाला को हँसी आ गयी। लेकिन हँसी ने बहुत देर साथ न दिया। वह और भी उदास हो गयी। वह जितना सुख और शांति के पीछे दौड़ती थी, जितना कस कर उन्हें खींच लेना चाहती थी, उतने ही वह उससे दूर भाग रहे थे। उसकी परेशानी बढ़ती ही चली जा रही थी। वह थककर लेट रही।

उलझन बहुत बढ़ने लगी तो उसने अपने मन को भविष्य के कल्पना लोक में विचरण करने के लिए छोड़ दिया। उसने सोचा कि तीन महीने तक की उदासी है। काटनी ही होगी। फिर इसके बाद पूरा क़ाफ़िला पूर्व की ओर चल पड़ेगा। फिर क्या होगा? फिर जिन लोगों पर प्रयोग करने हैं उन्हें अलग-अलग कमरों में रखा जायगा। रात भर बगैर चादर के बिस्तर पर तरह-तरह के मच्छरों से भरे कमरे में बंद कर दिया जायगा। रोज़ाना खून लेकर उसकी परीक्षा की जायगी। रोजाना इंजेक्शन लगेंगे। किसी दिन निराहार रखा जायगा, किसी दिन सिर्फ दूध दिया जायगा। हर शाम को फिर मच्छरों के साथ बंद कर दिया जायगा। बेगम कुरैशी ने यही बातें तो बतायी थीं।

तीन महीनों तक यह प्रयोग चलेंगे। ज़हरीले-से-ज़हरीले मच्छरों का सामना करना पड़ेगा। प्रयोग सफल हुए तो भी आशंका है कि उनके बाद के प्रभाव से जीवन भर मुक्ति न मिल सके। संभव है टी० बी० हो जाय। प्रयोग असफल हुए तब तो यह निश्चित है कि सुंदरबन के किसी निर्जन स्थान पर एक चिता बनायी जायगी और उसमें इस समय पलंग पर पड़ा हुआ यह शरीर राख बनकर रह जायेगा। अखबारों में फोटो निकल जायगा कि इस स्त्री ने जन-

कल्याण के लिए अपने प्राण दे दिये। लोग एक क्षण श्रद्धापूर्वक चित्र को देखेंगे फिर पृष्ठ पलट देंगे। प्रो० वर्मा को मालूम होगा तो दो बूँद आँसू और गिरा देंगे।

लेकिन मुझे तो यह सब देखने को भी न मिलेगा। मेरा तो पूरा अस्तित्व मिट्टी में मिल जायगा। कहते हैं कि आत्मा अनश्वर है, नये-नये शरीरों का चोला बदलती है। किंतु यह सब है तो कल्पना ही। किसने देखा है इस बात को? नास्तिकों का सिद्धांत ही ठीक है। भौतिकवादियों में कम-से-कम सच्ची बात कह देने का साहस है। वे कठोर सत्य को तरह-तरह के भुलावे देकर छिपाना नहीं जानते। आत्मा-वात्मा कुछ नहीं। तो फिर मुझे भी मिट्टी में ही मिल जाना होगा। सार्वदेशिक सम्मान देखने की बात तो दूर रही, मुझे तो यह भी खबर न रहेगी कि मेरी लाश चंदन की चिता पर जल रही है या उसे गिद्ध और स्यार नोच रहे हैं। फिर मेरे लिए इस सम्मान का मूल्य?

मानवता के प्रति कर्तव्य? बड़े सुंदर शब्द हैं। लेकिन कितने खोखले। यदि कर्तव्य ही है तो केवल मेरा क्यों? अन्य लोगों को सिर्फ इसलिए बुरा क्यों नहीं कहता कि वे इस प्रकार मरने के लिए तय्यार नहीं हैं। मौत किसे अच्छी लगती है। मौत कितनी भयंकर है। कल ही मैं कितना डर रही थी। समुद्र में सभी लोग नाव की सैर कर रहे थे लेकिन मुझे लग रहा था कि जैसे मुझे ही समुद्र निगल लेगा। लेकिन बिल्कुल निराधार भी तो नहीं था यह भय। नाव डूब भी सकती थी, नावें डूबती ही हैं। फिर उस अथाह जल में जीवन का एक-एक क्षण बढ़ाने के लिए ऊबासांसी! उफ़ भगवान!

लेकिन सुन्दरवन की मौत क्या सुखकारी होगी? बेगम कुरेशी ने कहा था कि उन्होंने टी० बी० के कई मरीज़ों को मरते देखा है। महीनों से मौत उन्हें अपना भयानक चेहरा दिखाने लगती है। शरीर की शक्तियाँ साथ छोड़ती जाती हैं और अन्तिम दो-चार दिन कैसे भयानक होते हैं। ठीक तरह साँस नहीं आ पाती, दिमाग में उलझे विचार घोर यन्त्रणा का रूप ले लेते हैं, जिह्वा काम करना बंद कर देती है, अन्तिम कुछ घण्टों में आँखों की पुतलियाँ घूमती रहती हैं, किन्तु मस्तिष्क की लुप्त होती हुई शक्ति के कारण वे या तो कुछ देख ही नहीं पातीं या देखकर भी पहचान नहीं पातीं। इससे घबराहट और

बढ़ जाती है। चारों ओर से आशा की डोर ऐसे टूटने लगती है जैसे किसी नियमित योजना के अनुसार बढ़ते हुए शत्रु सैनिक किले से भागने के सभी मार्ग बंद कर दें। कैसी विकट यंत्रणा होती है उस समय! हाय भगवान्!

वनमाला उछल कर बैठ गयी। उसके माथे पर पसीने की बूंदें आ गयीं, चेहरा सफेद हो गया, बदन का एक-एक रोआँ खड़ा हो गया, आँखों से वहशत बरसने लगी, हाथ-पैर काँपने लगे—जैसे उसे कुछ महीनों बाद नहीं, इसी समय मरना है।

उसने गिरते पड़ते उठकर एक ग्लास पानी पिया और भाग कर बाहर बाल्कनी पर आ गयी। कमरे का एकाकीपन मृत्यु की प्रतिच्छाया बनकर उसका गला घोंटे दे रहा था। बाहर आकर वह सड़क पर तेजी से चलने वाली मानवता—ट्रामों, बसों, टेक्सियों, विक्टोरियाओं, कारों, ट्रकों, साइकिलों और पैदल चलनेवालों की भीड़ देखने लगी। जीवन का यह उद्वेग उसे इस समय बड़ी साँत्वना और सहारा दे रहा था। वह नीचे उतरी और निरुद्देश्य ही फोर्ट की ओर टैक्सी लेकर चल पड़ी।

दोपहर तक वह लौटी। फोर्ट के भव्य चर्चगेट क्षेत्र में उसने निरुद्देश्य कई घण्टे घूमते हुए बिताये थे। वह बुरी तरह थक गयी थी और बहुत भूखी थी। घर आकर उसने फिर स्नान किया और खूब खाना खाया। इसके बाद वह अपने कमरे में गयी और अभ्यासवश पलंग पर लेट गयी। लेकिन इस बार उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि उसे घबराहट या डर नहीं है। मौत का ख्याल आया भी, लेकिन उनके झुँझलाये हुए दिमाग ने सोचा कि जो होना होगा हो जायगा। अभी से क्यों परेशान हुआ जाय। इसी समय तो मौत नहीं आ रही है। उसे पता ही न चला कि उसे कब नींद आ गयी।

× × × ×

वनमाला का डाक्टर के घर से अजीब सा सम्बन्ध था। न तो उसे अतिथि ही कहा जा सकता था और न पड़ोसी ही। डाक्टर साहब ने इस बिल्डिंग के दस कमरे किराये पर ले रखे थे। नीचे उनकी डिस्पेंसरी थी। दूसरी मंजिल में तीन कमरों में उनका परिवार रहता था और तीसरी मंजिल के छः कमरे उन्होंने

इस समय विशेष रूप से महीनों की मेहनत और सरकारी सहायता के बल पर किराये पर ले लिये थे। इनके पहले के किरायेदारों को कमरे खाली करने पड़े थे। इन्हीं में से एक को कमीशन का कमेटी रूम बनाया गया था और दूसरे को आफिस। लेकिन यह दोनों कमरे पीछे की ओर पड़ते थे। शेष चार कमरे सामने की कतार में थे। यह उन लोगों के लिए था जिन्होंने अपने को मलेरिया प्रयोग में देना चाहा था। वनमाला के अतिरिक्त केवल एक और सज्जन ने अपने शरीर का अर्पण किया था। यह सज्जन एक ही सप्ताह पूर्व आये थे। वे किसी से बात न करते थे, या तो कमरा बंद किये पड़े रहते थे, या फिर गायब ही रहते थे। उन्होंने किसी को भी अपना हाल न बताया था। डाक्टर भी केवल अन्दाजा लगा सके थे कि वे असफल प्रेम के मारे हुए हैं। उनकी अवस्था बीस-बाइस के लगभग होगी। उनकी एकांतप्रियता का यह हाल था कि मेहमानों की खिदमत के लिए नियुक्त नौकर हशमत उनके सामने जाने से डरने लगा था।

शेष दो कमरे-जो नवागंतुक तथा वनमाला के बीच में पड़ते थे खाली थे। इस विंग में चार ही कमरे थे। इसलिए कोई अत्यन्त समीप का पड़ोसी भी नहीं हो पाया था। बिल्डिंग के अन्य किरायेदारों से भी वनमाला की कोई बात न हो पाती। जब वह दूसरी मंजिलों में जाती तो स्त्रियाँ उसे गौर से तो देखा करतीं, लेकिन उसकी अपने से उदासीनता और वह जिस काम से आयी थी उसकी भयानकता से उनका साहस उससे बात करने का न होता था। एक कारण यह भी था कि जब से छः कमरों के किरायेदार निकाले गये थे, अन्य किरायेदार डाक्टर तथा उनसे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों को विचित्र घृणा मिश्रित भय की दृष्टि से देखते थे। न मालूम यह हज़रत उन्हें भी कब निकलवा दें। फिर एक बात यह भी थी कि बम्बई जैसे शहर में लोगों को अपने पड़ोसियों से बात करने का ज्यादा मौक़ा ही कहाँ मिलता है।

वनमाला बिल्कुल अकेली हो गयी थी। साथ ही बेगम कुरैशी की उस-के साथ शुरू से ही खूब पटने लगी थी। बेगम साहबा भी अपने को काफ़ी अकेली महसूस करती थीं। क्योंकि डाक्टर साहब में सौजन्य चाहे जितना हो, रोमांस नाम की चीज़ की कमी थी। बम्बई में रहते पन्द्रह वर्ष हो गये थे (डाक्टर

साहब की शादी तभी हो गयी थी जब वे मेडिकल कालेज के छात्र थे) लेकिन शायद पन्द्रह बार भी बेगम साहबा को अपने पति के साथ घूमने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ था। डाक्टर साहब को अपने कार्य और अध्ययन का बड़ा गहरा व्यसन था, तभी तो इसी उम्र में उन्होंने इतना नाम पैदा कर लिया था कि मलेरिया प्रयोग दल के अध्यक्ष-पद जैसी जिम्मेदारी उन्हें दी गयी थी। बेगम कुरैशी समझदार, शिक्षित और गंभीर स्वभाव की महिला थीं, इसलिए उन्होंने पति की इस विरक्ति पर कभी आपत्ति नहीं की थी। जब वनमाला आयी तो बेगम साहबा को जैसे वही चीज़ मिल गयी जिसकी उन्हें मुद्दत से तलाश थी। उन्हें सभ्यता तो पसंद थी, लेकिन साधारण उच्चवर्गीय महिलाओं का खोखला दंभ बिल्कुल पसंद नहीं था। वनमाला के विचारों की गहराई ने उसे उनके बहुत समीप ला दिया था और दोनों की घनिष्ठता काफ़ी बढ़ गयी थी। यदि वे हर समय एक दूसरे के पास बैठी गप नहीं लड़ाती थीं तो इसका कारण केवल यह था कि दोनों ही में गंभीरता काफ़ी मौजूद थी।

इसलिए वनमाला के भोजन की व्यवस्था कुरैशी परिवार के साथ ही की गयी थी, लेकिन भोजन के अतिरिक्त अन्य समय में उसके साथ पड़ोसी का-सा ही बर्ताव होता था। कभी-कभी बेगम साहबा या डाक्टर साहब उसके कमरे में आकर उससे दो-चार बातें कर जाते थे। वनमाला खुद, बग़ैर बुलाये, डाक्टर साहब के कमरों में कभी न गयी थी।

तीसरे पहर जब वनमाला सोकर उठी तो उसकी तबियत हुई कि किसी से बातें करे। आख़िर हमेशा तो चलती फिरती सड़कों को देखकर ही जी नहीं बहलाया जा सकता। कभी-कभी तो खामोश-से-खामोश इंसान भी बातें करना चाहता है। लेकिन वह इस असमंजस में पड़ गयी। अभी तक तो कभी अपने आप गयी नहीं थी। मालूम नहीं वे सो रही हों, या कोई और ज़रूरी काम कर रही हों। और कुछ नहीं तो अगर यही पूछ बैठीं, "कहिये! कैसे तकलीफ़ की?" तो क्या जवाब दूँगी। वह बहुत देर तक इसी उधेड़बुन में पड़ी रही।

अचानक ही दरवाज़े पर चिर परिचित थाप सुनायी पड़ी। वनमाला सहसा चौंक उठी। अकारण ही उसका दिल ज़ोरों से धड़कने लगा। घुटे

हुए गले से उसने कहा, "कम इन" और मुसकराते हुए डा० हबीब कुरैशी ने कमरे में प्रवेश किया।

डाक्टर साहब ने यह खुश खबरी सुनायी कि उनके प्रयोगों के लिए भारत सरकार ने एक लाख रुपये की ग्रांट और मंजूर कर दी है। उन्हें इस समाचार से बड़ी प्रसन्नता थी और वे किसी को यह शुभ संवाद सुनाकर खुशी का बोझ हलका कर लेना चाहते थे। बेगम साहबा कहीं गयी हुई थीं, तो वनमाला से ही आकर कह दिया।

वनमाला चुपचाप हाँ-हाँ करके उनकी बातें सुनती जा रही थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। वह डाक्टर साहब की ओर एकटक देख रही थी। उसके दिमाग में धुँधली छा गयी थी। अपनी बात खत्म करके डाक्टर साहब बोले, "आपने इस पर कुछ नहीं कहा!"

वनमाला जैसे सोते से चौंक गयी। उसने दरअसल कोई बात सुन ही नहीं पायी थी, कहती क्या खाक। भड़भड़ाकर बोली, "मैं क्या कहूँगी। इन सब बातों को आप लोग ही अच्छी तरह समझ सकते हैं। मैं तो 'ले मैन' हूँ।"

"लेकिन यह तो मोटी सी बात है कि हमें ज्यादा रुपया मिलेगा तो हमारा काम ज्यादा आसान हो जायगा," डाक्टर साहब ने हैरान हो कर पूछा।

वनमाला मुसकराने लगी। डाक्टर साहब बिल्कुल बच्चे हैं। अगर इनकी खुशी में कोई शरीक नहीं हुआ तो यह इसी बात पर परेशान हो रहे हैं। उसने कहा, "यह, तो हाज़िर है। इसकी तो मुझे भी खुशी है। लेकिन मैंने तो बात टेक्नीकल साइड की कही थी।

डाक्टर साहब खुश हो गये। कुछ इधर-उधर की बातें करके उन्होंने बिदा ली।

वनमाला को अनुभव हुआ कि जैसे कमरा अचानक बहुत सूना हो गया।

उसे इस बात पर भी आश्चर्य हुआ कि आज उसकी व्यंगात्मक प्रवृत्ति को क्या हुआ। पहले यदि कोई भी व्यक्ति उसके सामने ऐसी बचकानी बातें करता

था तो वह उसका डटकर मज़ाक़ उड़ाती थी लेकिन आज तो उसे इस बात का ख्याल तक नहीं आया। वह बराबर इस बात के प्रयत्न में लगी रही कि डाक्टर का उत्साह ठंडा न हो, उनके दिल को ठेस न लगे। यह सब क्या केवल सौजन्यवश हुआ था? शायद नहीं।

तो···तो फिर क्या ·····?

वनमाला चौंक पड़ी। फिर सोचने लगी। बड़ी देर तक सोचती रही।

---

१६. नयी उलझन

वनमाला ने सोचा कि क्या यह संभव है। मैं इतनी दूर से यहाँ क्या यही तमाशा करने आयी थी। उसने सोचा कि यह बहुत बेहूदी बात है। मन की गंदी कमज़ोरी पर विजय पानी ही होगी। उसने इसका प्रयत्न आरंभ कर दिया।

लेकिन मुसीबत यह थी कि वह जितना ही अपने को इस जंजाल से मुक्त करना चाहती थी उतनी ही इसमें और फँसती चली जाती थी। उसने अधिकाधिक घूमना शुरू कर दिया, खाना अपने कमरे में ही मँगाकर खाने लगी, डाक्टर से बात करने की ज़रूरत होती तो नौकर के हाथ पुर्जा भिजवा देती, खुद उनके सामने न जाती, बेगम कुरेशी के पास उसने अधिक बैठना शुरू कर दिया और अपने को अधिकाधिक बहलाने के लिए उसने खूब पढ़ना शुरू कर दिया।

लेकिन 'मरज बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवाकी।' जितनी ही वह इस 'गंदे' ख्याल को अपने दिल से निकालना चाहती उतना ही तेजी से वह उसके दिमाग में चक्कर काटने लगा। समुद्र तट पर घूम रही है तो मन तरह-तरह के कल्पना चित्र बनाता जा रहा है जिसमें डाक्टर साहब तरह-तरह से हँसते-मुसकुराते उभर रहे हैं। कभी सफेद आपरेशन गाउन में जल्दी-जल्दी इधर-उधर चलते हुए और नर्सों को आदेश देते हुए, कभी स्टेथेस्कोप संभाले झपटकर सेठ बाटलीवाला की कार में घुसते हुए, कभी मेज़ पर फाइलों और कागजों के ढेर में उलझे और एंग्लो इंडियन सेक्रेटरी को पत्र डिक्टेट कराते हुए, कभी आराम कुर्सी पर लेटकर मोटी-मोटी किताबों के पन्ने पलटते, लाल पेंसिल से उन पर निशान लगाते और नोट बुक में 'नोट्स' लेते हुए। गर्ज़ कि तरह तरह से वे उसके सामने आ रहे हैं। कपड़ों की दुकान में घुसी है तो साड़ियों की ओर निगाह जाने की बजाय 'शर्टिंग्ज़' की ओर देख रही है। यह सिल्क उन्हें बहुत पसन्द है, ज़्यादातर कमीजें इसी की बनवाते हैं, लेकिन वह उधर वाला 'स्ट्राइप्ड' सिल्क उन पर 'प्लेन' से ज़्यादा खिलेगा। नाश्ता करने का सवाल है तो रेस्तरां में

वेटर को जहाँ पहले केक बिस्कुट का आर्डर मिलता वहाँ अब सिर्फ टोस्ट मँगाये जाते। इसका कोई स्पष्ट कारण नहीं था इसे केवल संयोग ही कहा जा सकता है कि डाक्टर साहब चाय के साथ टोस्ट के अलावा और कुछ न लेते थे।

वनमाला को सचमुच बड़ी परेशानी थी। अभी तक उसे कभी अपनी भावनाओं से लड़ना नहीं पड़ा था। अभी तक उसकी लड़ाई केवल बाह्य परिस्थिति से रहती थी। इसमें उसकी अक्सर विजय होती थी। लेकिन यहाँ तो अपने मन से लड़ने की बात थी। इसलिए मुकाबला सख्त था। वनमाला ने हिम्मत तो न हारी, लेकिन वह परेशान बहुत थी।

जब घर के बाहर यह हाल था तो घर के अंदर उसकी दशा का कहना ही क्या? कमरे के बाहर किसी के पैरों की चाप सुनाई पड़ती तो उसका दिल जोरों से धड़कने लगता। उसे पसीना आ जाता और गला सूखने लगता। मालूम होता था कि उसकी उम्र के बीस साल किसी ने चुपके से चुरा लिये हैं और इस घबराहट के बाद जब वह पग-ध्वनि डाक्टर साहब की न होकर किसी अन्य व्यक्ति की होती तो वनमाला के मन पर अचानक ऐसी उदासी और सूनापन छा जाता कि उसे रुलाई आने लगती। उसने डाक्टर साहब की मेज़ पर खाना खाना छोड़ दिया, अपने कमरे में ही खाना मँगाने लगी। लेकिन सूने कमरे में रोटी का कौर तोड़ते समय उसकी आँखों के सामने एक चित्र खिंच जाता कि डाक्टर साहब बेगम साहबा के साथ इस समय हँस-हँसकर खाना खा रहे होंगे और उसका जी कचोटने लगता।

दो दिन बाद यह हाल हो गया कि उसका मन डाक्टर साहब से झगड़ा करने के लिए बेचैन होने लगा। उसके जी में एक अकारण खीझ उठ खड़ी हुई। हर समय जैसे कोई उसके जी को कचोटने लगा। संयोग से उसे झगड़ा करने का अवसर भी मिल गया।

उस दिन दोपहर को खाना खाने के बाद डाक्टर साहब उसके कमरे में आये। सुबह से ही वह सोच रही थी कि मौका मिलते ही कोई बहाना निकाल कर मैं इन्हें खूब खरी-खोटी सुनाऊँगी। लेकि इस समय उन्हें देखकर वह हक्का-बक्का हो गयी। घबराहट में वह उनसे बैठने के लिए भी न कह सकी। सिर्फ़ एकटक उनकी ओर देखती रही।

डाक्टर कुरैशी इस समय एक जर्मन मेडिकल पत्रिका हाथ में लिये थे। उसमें उनका एक लेख 'मेनिंजाइटिस' की नयी चिकित्सा प्रणाली पर निकला था। पत्रिका के सम्पादक डा० मांस्टाइन ने, जो जर्मनी के लगभग सबसे बड़े डाक्टर माने जाते थे, इस लेख पर बड़ी अच्छी टिप्पणी दी थी। पत्रिका के साथ ही जर्मन कौंसिल आफ़ मेडिकल रिसर्च के मन्त्री का एक पत्र भी था जिसमें डा० कुरैशी को मलेरिया प्रयोगों से निवृत्त होने के बाद मेनिंजाइटिस (गर्दन तोड़ बुखार) की नयी चिकित्सा प्रणाली के प्रदर्शन के लिए जर्मनी आने का निमन्त्रण था। स्पष्ट था कि डाक्टर साहब को यश लाभ का यह दूसरा स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ था। अगर जर्मन कौंसिल आफ़ मेडिकल रिसर्च ने उनकी प्रणाली को मान्यता दे दी तो वे इसी अल्प अवस्था में संसार के प्रमुख डाक्टरों में हो जायेंगे।

चुनांचे अपनी आदत के मुताबिक डाक्टर साहब वनमाला को यह शुभ सम्वाद देने चले आये थे। इसके पहले वे बेगम साहबा के पास यही सम्वाद पहुँचा आये थे और भोजन के समय पति-पत्नी दोनों ने खुश होकर नयी संभावनाओं के आधार पर खूब सुनहले सपने देखे थे। लेकिन डाक्टर साहब की इससे तबियत न भरी और वे जब वनमाला को यह खबर देने के लिए चले थे तो बेगम साहबा भी उनकी इस बाल-सुलभ प्रसन्नता पर मुसकुराये बगैर न रह सकी थीं।

लेकिन वनमाला तो अपने ही मर्ज में गिरफ्तार थी। डाक्टर साहब ने लेख उसके सामने रखकर कहा, "देखिए जर्मन कौंसिल आफ़ मेडिकल रिसर्च की पत्रिका में लेख छपा है।"

वनमाला ने बड़ी मुश्किल से सूखे गले से कहा, "जी।"

डाक्टर साहब बोले, "यह मेनिंजाइटिस के मेरे नये इलाज के तरीके के बारे में है। पत्रिका के एडीटर ने इसे बहुत पसन्द किया है और इस पर बहुत अच्छी राय दी है। कौंसिल ने इस सिलसिले में मुझे जर्मनी भी बुलाया है।"

"बड़ी खुशी की बात है," वनमाला ने बात की असलियत को समझने की तकलीफ़ किये बगैर ही कह दिया। उसे तो सिर्फ इतना याद रहा था कि

डाक्टर साहब की खुशी में अगर शरीक न हुआ जाय तो उन्हें तकलीफ़ होती है, वरना उसे मेनिंजाइटिस और उसके इलाज के नये-पुराने तरीकों से क्या लेना-देना।

डाक्टर साहब खिलकर बोले, "जी हाँ, मैं इस इज्ज़त के काबिल तो नहीं, लेकिन खुदा की ऐन मेहरबानी है कि मुझे यह मौका मिल गया है।"

वनमाला एकटक उनकी ओर देखती रही। वह यह भी न कह सकी कि आपको अपनी योग्यता का उचित पुरस्कार मिला है।

डाक्टर साहब कहते रहे, "मेरा इरादा है कि मलेरिया एक्सपेरीमेंट्स खत्म होने के बाद फौरन जर्मनी चला जाऊँ। चार महीने वहाँ रहने के बाद मलेरिया की रिपोर्ट तय्यार होने के समय तक वापस आ जाऊँगा।"

वनमाला ने अचानक ही पूछ डाला, "आप अकेले ही जायेंगे?"

"जी नहीं। बेगम साहबा भी साथ होंगी। उन्हें दूसरे मुल्कों की सैर की बड़ी ख्वाहिश है। उन्होंने तो जैसे अभी से इस सफ़र के मंसूबे बाँधना शुरू कर दिया है," डाक्टर साहब हँसते हुए बोले।

वनमाला को महसूस हुआ कि जैसे उसकी पीठ पर किसी ने आग में तपा हुआ सुर्ख लोहा रख दिया हो। उसकी आँखें लाल हो गयीं और उसने चुपके-चुपके अपने होंठ काटने शुरू कर दिये।

डाक्टर साहब ने इस समय कुछ भी लक्ष्य न किया। वे कहते रहे, "मेरा ख्याल है कि बेगम साहबा के साथ रहने से मुझे भी सहूलत रहेगी।"

"जी हाँ, क्यों नहीं," वनमाला अपना क्रोध दबाते हुए बोली, "बीबी के साथ में रहने से आराम होता ही है। नहीं तो आदमी शादी क्यों करे।"

डाक्टर साहब कुछ झेंपते हुए बोले, "रैहाना सिर्फ अच्छी बीबी ही नहीं, अच्छी साथी भी है। उससे ज्यादा समझदार औरत मैंने कोई नहीं देखी।"

वनमाला के दिमाग में उफान सा आने लगा। उसने एक क्षण तक दूसरी ओर देखा। फिर बोली, "जी हाँ। मेरा ख्याल भी यही है कि उनके मुक़ाबले में दुनिया की और सभी स्त्रियाँ घोर मूर्ख हैं।"

डाक्टर साहब चौंक पड़े और जल्दी से बोले, "नहीं नहीं। मेरा मतलब शायद आपने गलत समझा है। उसकी तारीफ़ करने में मेरा मक़सद किसी की

बुराई करने का नहीं था।" डाक्टर साहब अब भी असली बात का आभास नहीं पा रहे थे।

"लेकिन बात वही होती है," वनमाला ने कड़ुआहट के साथ कहा, "किसी एक को दुनिया में सबसे ऊँचा कहने का मतलब यही है कि दूसरे लोग उससे नीचे हैं। ......खैर उनकी तारीफ़ में आपका उद्देश्य कुछ भी हो, लेकिन मेरे सामने बगैर पूछे यह सब गोरख धंधा रखने की क्या ज़रूरत पड़ी, यह मेरी समझ में नहीं आया। बेगम साहबा दुनिया की सरताज हों तो हों, मैं क्या करूँ ?"

डाक्टर साहब को जैसे काठ मार गया। वे इस समय बिल्कुल भूल गये कि वे एक ख्यातिप्राप्त डाक्टर हैं और यह स्त्री सिर्फ एक मामूली स्त्री। हेड-मास्टर के सामने खड़े हुए अपराधी बालक के स्वर में वे बोले, "मैं यहाँ उनकी तारीफ़ करने तो नहीं आया था। मैं तो सिर्फ अपनी खबर देने आया था......।"

"क्यों आये थे ?" वनमाला फट पड़ी, "मैं आपकी कौन होती हूँ। आप चाहे नोबिल पुरस्कार पायें चाहे चोरी में जेल चले जायें, मुझसे मतलब? आखिर क्यों आप मुझसे ज़बर्दस्ती 'इन्टीमेसी' बढ़ाना चाहते हैं ? क्या मतलब है आपका ?"

डाक्टर साहब का चेहरा सफेद पड़ गया। वे चुप-चाप बैठे रहे।

वनमाला फिर लगभग चीखते हुए बोली, "अगर आप को कुछ काम की बात न करनी हो तो आप जा सकते हैं। गप्पें आप अपनी बेगम साहबा से ही लड़ाया कीजिए। मेरे पास इस खुराफ़ात के लिए वक्त नहीं है। मैं ।"

डाक्टर साहब पूरी बात सुने बगैर ही चुप-चाप उठकर चले गये।

उनके जाने के बाद वनमाला लेट रही और सिसक-सिसककर रोने लगी। वह लगभग घंटे भर तक रोती रही। वह सोच रही थी कि कैसी विषम परिस्थिति पैदा हो गयी है। मैं इनसे झगड़ा करना चाहती थी कि इनके प्रेम से छुटकारा मिले। लेकिन यह तो दिल पर बिल्कुल कब्जा जमाकर बैठ गये हैं। झगड़ा भी मैंने किया तो इसी बात पर नाराज होकर कि बेगम साहबा भी इनके साथ जर्मनी जायेंगी। मैं भी कैसी पागल हूँ। अगर बेगम साहबा साथ जाती हों तो जायें, मैं कौन यह सब देखने के लिए बैठी रहूँगी। मेरी ज़िन्दगी तो ज्यादा से ज्यादा चार महीने की है। उसके बाद मुझे क्या लेना-

देना। फिर अगर मैं ज़िन्दा भी रहूँ तो मुझे क्या मतलब। वे उनकी पत्नी हैं। उन्हें हर जगह उनके साथ जाने का अधिकार है, मैं कौन होती हूँ। लेकिन उन्हें क्यों अधिकार है, मैं बिल्कुल गैर क्यों हूँ। क्या पत्नी होने पर भी बेगम साहबा मुझसे ज्यादा उन्हें प्यार करती हैं या कर सकती हैं। तो क्या सिर्फ सामाजिक सम्बन्ध इतना व्यापक, इतना अपरिहार्य होता है कि हृदय की भावनाओं का उसके आगे कोई मूल्य ही न हो। डाक्टर हबीब के लिए मैं कुछ भी नहीं हूँ, कुछ भी नहीं ?

काफ़ी रो लेने के बाद उद्वेग कुछ कम हुआ तो आत्म-ग्लानि ने धर दबाया। वह सोचने लगी कि मैंने क्यों बेकार उनके दिल को चोट पहुँचायी। बेकसूर ही उन्हें बुरा-भला कहा। वे तो अपनी पत्नी को सबसे बढ़कर समझेंगे ही। मैं उनसे प्रेम करती हूँ तो इससे क्या हुआ, वे तो मुझे प्रेम नहीं करते। प्रेम करने की कौन कहे, वे तो यह जानते तक नहीं कि मैं उन्हें प्रेम करने लगी हूँ। फिर वे मेरे पास समाचार देने घनिष्टतावश ही आये थे। हर एक आदमी को तो कोई अपनी खुशी में शरीक नहीं करता। वे मुझे अपना समझकर ही आये थे। लेकिन मैंने उन्हें दुतकार दिया। आखिर उनकी गलती क्या थी, कुछ भी तो नहीं और अब वे नहीं आयेंगे। आने की कौन कहे, मुझसे बात भी नहीं करेंगे। मैं कहाँ की लाट साहब हूँ। क्यों मेरी कोई परवा करेगा। क्यों मुझे आकर कोई मनायेगा।

वनमाला को फिर रुलाई छूटने लगी। लेकिन अब तक उसका दिमाग़ बिल्कुल थक चुका था। निद्रा देवी ने उसे इन सब परेशानियों से छुटकारा दे दिया।

दो घंटे बाद वह उठी तो उसका जी बहुत भारी था। शीशा देखा तो आँखें खूब सूजी हुई थीं। सर घूम रहा था और आँखों के आगे तितलियाँ उड़ रही थीं। वह कुछ देर बाद गुसलखाने गयी और आधे घंटे तक नहाती रही। गुसलखाने से लौटकर उसने धीरे-धीरे कपड़े पहने। मेकअप करके वह फिर कुर्सी पर चुपचाप बैठ गयी।

इतने में ही हशमत चाय का सामान लेकर आ गया। वनमाला को उससे पूछने पर मालूम हुआ कि डाक्टर साहब इस समय अपनी लेबोरेटरी में

अकेले बैठे हैं और बेगमसाहबा की कोई मित्र आयी हैं जिनसे वे ड्राइंग रूम में बैठी बात कर रही हैं।

चाय पीकर वनमाला दबे पैरों लेबोरेटरी की ओर चली। ड्राइंग रूम के सामने से वह और दबे पैरों निकली ताकि अंदर बैठी हुई बेगम साहबा को उसके होने का आभास न मिले। लेबोरेटरी का दरवाजा खुला था। वह चुप-चाप अंदर पहुँची। डाक्टर साहब दरवाजे की ओर पीठ किये कुछ पढ़ रहे थे। वनमाला ने कहा, "डाक्टर साहब!"

डाक्टर ने चौंककर पीछे देखा, वनमाला को देखते ही उनका चेहरा कुछ तन गया। वे रुखाई से बोले, 'कहिए?"

वनमाला रुँधे हुए गले से बोली, "मैं आपसे माफ़ी माँगने आयी हूँ। मैं दो दिन से न मालूम क्यों बहुत परेशान रहती हूँ। आपको मैंने बहुत कड़ी बातें कह दीं। लेकिन यक़ीन मानिए, मेरा इरादा आपका अपमान करने का बिल्कुल नहीं था। न मालूम कैसे वे सब बातें कह गयी।"

डाक्टर साहब ने रूखे स्वर में कहा, "मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है।"

एक मिनट तक कोई कुछ नहीं बोला। फिर वनमाला ने कहा, "आपने बेगम साहबा से तो यह सब नहीं कहा? उन्हें मालूम हो गया तो मैं उन्हें मुँह दिखाने के काबिल भी न रहूँगी।"

डाक्टर साहब का गुस्सा काफ़ी कम हो गया। वे शांत स्वर में बोले, "नहीं अभी तक नहीं कहा। शायद कह देता, लेकिन आप नहीं चाहती हैं तो अब नहीं कहूँगा।"

"हाँ डाक्टर साहब, न कहिएगा," वनमाला गिड़गिड़ा कर बोली।

डाक्टर ने उसकी ओर आँख भरकर देखा। वनमाला ने अभी तक इस स्वर में कभी बातें न की थीं। डाक्टर उसकी आँखों की बेबसी और विकलता देखकर ताज्जुब में आ गये। वनमाला की निगाहों में बेबसी और विकलता के साथ ही कुछ और भी भाव था जिसे समझने में डाक्टर साहब बिल्कुल असफल रहे, यद्यपि उन्होंने इसे लक्ष्य अवश्य किया।

कुछ देर के बात वनमाला ने कहा, "तो आपने दिल से मुझे माफ़ कर

दिया न ?" मालूम होता था कि इन शब्दों के साथ उसने अपना दिल निकाल कर रख दिया है; जैसे इस प्रश्न के उत्तर पर उसका जीवन टिका हो।

डाक्टर साहब चौंक उठे। उन्हें घबराहट सी होने लगी। उन्होंने जल्दी से कहा, "माफ़ करने की क्या बात है। मुझे आप से कोई शिकायत नहीं है। आप यकीन रखें।" और वनमाला की जलती मरुभूमि सी प्यासी निगाहों से बचने के लिए उन्होंने पुस्तक में आँखें गड़ा दीं।

वनमाला दो क्षण तक उन्हें देखती रही, फिर वापस चली आयी। बेगम कुरैशी अब भी ड्राइंग रूम में अपनी मित्र के साथ हँस-बोल रही थीं। वनमाला जिस तरह चोर की तरह आयी थी उसी तरह चुपके से निकलकर अपने कमरे में पहुँच गयी।

डाक्टर कुरैशी को लेबोरेटरी में बैठना मुश्किल हो गया। वनमाला की प्यासी निगाहें अब भी सारे कमरे में भटक रही थीं। वे दोपहर के कांड के बाद गुस्से से जल-भुन रहे थे। उनके शुभ्र चरित्र पर उँगली उठाने का साहस आज तक किसी को नहीं हुआ था। वनमाला के शब्द "आखिर क्यों आप मुझसे जबर्दस्ती इंटीमेसी बढ़ाना चाहते हैं? क्या मतलब है आपका ?" जहरीले तीरों की तरह उनके दिल में गड़े हुए थे। लेकिन इस समय वनमाला का आकर माफी माँगना और विकल दृष्टि से उन्हें देखना उनके लिए और भी बुरा हुआ। एक अप्रत्याशित रहस्यमय भय ने उनके चारित्र्यबल के आत्म-विश्वास को झँझोड़ कर रख दिया था।

---

२०. और निकट···और दूर···

वनमाला ने अपने को नियति के भरोसे छोड़ दिया। उसकी मनःशक्ति शिथिल हो गयी। वह सोचने लगी कि मैंने संघर्ष करते-करते जिंदगी बिता दी लेकिन हाथ क्या आया—थकन, उलझन, निष्फलता। उसने सोचा कि बगल के कमरे का परिवार इसीलिये हँस लेता है कि वह नियति से लड़ने का प्रयत्न नहीं करता, जैसा अवसर होता है वैसा ही काम करता है। अगर दुर्भाग्य की घटायें घिर आती हैं तो उन्हें सर झुकाकर स्वीकार कर लेता है, उससे लड़ने की कोशिश नहीं करता। इसीलिए जरा-सा आराम मिलने पर ही वह खुलकर हँस लेता है। लेकिन मुझे यह चैन नसीब नहीं। मैं तो सितारे तोड़ने के प्रयत्न में पाताल में धँसी जा रही हूँ। मेरे पास क्या नहीं था लेकिन सिर्फ मेरी महत्वाकांक्षा ही थी जिसने मुझे इस स्थिति में पहुँचा दिया। शुरू से ही मैंने अपने को बहुत ऊँचा, बहुत शक्तिशाली रखना चाहा। इसी के कारण मुझे अपने घर को, अपनी बच्ची को छोड़ना पड़ा। मधु का ख्याल आते ही उसकी आँखों में आँसू उमड़ने लगे, लेकिन उसने उन पर काबू पाकर फिर विचारों की श्रृंखला को पकड़ लिया। हाँ, और अब इसी महत्वाकांक्षा ने मुझे ऐसे रास्ते पर चला दिया जहाँ मेरी जिंदगी ही खत्म होनेवाली है। उफ़! मौत, भयंकर मौत। वनमाला के सामने पिछले कुछ दिनों के विचार फिर साकार होकर नाचने लगे।

उसके विचारों को एक नया मोड़ मिला। क्या अब भी इस रास्ते से हट जाऊँ? थोड़ा-बहुत पैसा पास में है ही। कुछ न कुछ किया ही जायगा। यों तो हमेशा जिंदा नहीं रहना है, लेकिन फिर भी अपने हाथों अपनी मौत का सामान करने से क्या फायदा। इस समय वनमाला को दो महीने पहले के सारे तर्क भूल गये थे। हाँ यही ठीक है। डाक्टर से कह देना चाहिए कि मैं इस जान लेवा रास्ते पर कदम नहीं रख सकती। अपना दूसरा इंतजाम करो।

लेकिन क्या यह ठीक होगा ? डाक्टर साहब की कितनी परेशानी होगी। उनकी योजनाओं में कितना व्याघात होगा। शायद उनके प्रयोग पूरे भी न हो सकें। अपनी जान इस तरह से देनेवाले कितने लोग मिलते हैं। उनकी प्रतिष्ठा एक प्रकार से धूल में मिल जायगी। उनकी प्रगति जारी न रह सकेगी, लेकिन न रहे, मुझे क्या करना है। उनकी प्रतिष्ठा के लिए मैं अपनी जान दे दूँ, यह भी खूब रही! अच्छी रही डाक्टर कुरैशी की प्रतिष्ठा और संसार के करोड़ों मूर्खों के कल्याण की भावना। मैं अपनी हरी-भरी जिंदगी को अपने हाथों खत्म नहीं कर सकती"'। कभी नहीं करूँगी"'।

वनमाला किसी बात का निश्चय कर लेती थी तो उसके दिमाग़ से एक बोझ सा उतर जाता था। साधारणः सभी के साथ ऐसा होता है, लेकिन इस बार ऐसा न हुआ। नशे के बाद खुमार उतरने पर जिस प्रकार मन भारी हो जाता है कुछ इसी प्रकार की दशा वनमाला की भी हो गयी। उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे उसके शरीर का सारा रक्त निचुड़ गया है और उसकी जगह नसों में कड़वा धुआँ भर गया है। उसकी उलझन खत्म न हुई।

उसने हशमत को बुलाकर एक पर्चा डाक्टर साहब के पास भेजा कि मैं आपसे कुछ जरूरी बात करना चाहती हूँ, फ़ुरसत हो तो पाँच मिनट के लिए आ जायें। डाक्टर साहब अभी-अभी डिस्पेंसरी से उठे थे। उन्होंने एक आपरेशन किया था। वनमाला का पर्चा मिला तो गाउन पहने ही उसके कमरे में आ गये। कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "कहिए।"

वनमाला के दिमाग में सन-सन होने लगी। कैसे अपनी बात कहूँ, यह उसकी समझ में ही नहीं आया। डाक्टर साहब उत्सुकतापूर्वक उसकी ओर देख रहे थे। उनके चेहरे पर अब भी पसीने की बूँदें और थकान की लकीरें थीं। वनमाला ने कहा, "आप शायद आपरेशन रूम से सीधे चले आ रहे हैं। मुझे इतनी जल्दी नहीं थी। आप बहुत थके हुए हैं। मैं फिर बात कर लूँगी। आप अभी आराम करें, कोई जल्दी नहीं है।"

लेकिन डाक्टर साहब ने हँसते हुए अपना पसीना पोंछा और बोले, "हम लोगों को थकने की इतनी फिक्र होने लगे तो काम चल चुका। डाक्टरों का काम तो रात-दिन का होता है, उनकी किस्मत में आराम कहाँ ? यही नहीं, उन्हें

तो हर वक्त अपनी जान हथेली पर लिये रहना पड़ता है।" कहते-कहते उनके चेहरे पर एक मलिन छाया सी घिर आयी।

"कैसे?" वनमाला ने ताज्जुब और घबराहट से पूछा।

"आपरेशन मरीज़ के लिए ही नहीं, डाक्टर के लिए भी बड़ा 'रिस्क' का काम होता है। कल ही की बात है, डाक्टर फड़नवीस की इसी में 'डेथ' हो गयी।"

"क्या हुआ?" वनमाला ने उसी घबराहट के साथ पूछा।

"उन्होंने कल सुबह एक आपरेशन किया था। आपरेशन कामयाब हुआ और मरीज बच गया, लेकिन नश्तर से फड़नवीस की उंगली में मरीज का 'पस' लग गया। वे जानते थे कि वह 'पस' बड़ा खतरनाक है और फौरन सारे बदन को 'इनफेक्ट' कर देगा। उन्होंने अपने असिस्टेन्ट से कहा कि मेरी उँगली इसी वक्त काट दो। असिस्टेन्ट भी अजीब बोदा निकला। अपने सीनियर की उँगली काटने की हिम्मत उसे न हुई। वह पेंसिलिन की खोज करने लगा। इत्तफ़ाक की बात कि उनकी डिस्पेंसरी में पेंसिलिन खत्म हो गयी थी और आस-पास किसी डीलर के यहाँ भी न मिली। यहाँ दो घंटे में डाक्टर फड़नवीस की हालत खराब हो गयी और वे बेहोश हो गये। बाद में उन्हें मेडिकल कालेज पहुँचाया गया लेकिन इस अर्से में उनका बदन पूरी तरह 'इनफेक्ट' हो चुका था। शाम के पाँच बजे तक उन्होंने दम तोड़ दिया।"

"मवाद इतना खतरनाक होता है?" वनमाला ने काँपते हुए स्वर में पूछा।

"हर मरज़ का नहीं होता, लेकिन कुछ हालतों में 'पस' इतना खतरनाक भी हो जाता है। फिर 'इनफेक्शन' इस पर मुनहसिर है कि किस तरह के बदन में और किन नसों में वह पहुँचता है। उस मरीज़ के लिए वह 'पस' इतना खतरनाक नहीं साबित हुआ। लेकिन डाक्टर के तन्दुरुस्त खून में उसका असर दूसरा ही हुआ।"

वनमाला का चेहरा सफेद पड़ गया। इसका मतलब तो यह है कि किसी दिन इनको भी ऐसा ही 'इनफेक्शन' हो सकता है और यह भी देखते-देखते···। वनमाला आगे न सोच सकी। रुआँसे से स्वर में उसने कहा, "आप लोग ऐसा खतरनाक पेशा क्यों करते हैं?"

डाक्टर कुरैशी हँस पड़े और बोले, "फिर क्या करें ? रोटियाँ कैसे चलें ?"

डाक्टर की हँसी और बेपरवाही के स्वर ने कमरे में नया वातावरण-सा पैदा कर दिया। वनमाला को ऐसा मालूम हुआ कि यह व्यक्ति मौत की रत्ती भर परवा न करते हुए उससे निरंतर मोर्चा लेता रहेगा। वह उसे रोकने की कोशिश करेगी तो भी वह उसे ठुकराकर हँसता हुआ अपने रास्ते पर बढ़ता जायगा और वह रोती और आँसू बहाती ही रह जायेगी। अस्पष्ट सी रेखाओं में उसके सामने मध्यकालीन युग का दृश्य खिंच गया जब रणबांकुरे सामंत अपनी पत्नियों और प्रेयसियों को भुलाकर सीना ताने हुए रणस्थल की ओर चल पड़ते थे।

डाक्टर ने फिर पूछा, "हाँ आपने यह तो बताया ही नहीं कि आपने मुझे क्या कहने के लिए बुलाया था ?"

वनमाला को रुलाई सी छूटने लगी। मैंने इन्हें यही कहने के लिए तो बुलाया था कि मुझे मरने से डर लगता है इसलिए तुम्हारे प्रयोगों में न जाऊँगी। लेकिन उफ़ ! कितनी शर्म की बात है ! यह दिन-रात निर्द्वन्द होकर मौत से लड़ें और मैं इनका ज़रा सा साथ न दे सकूँ। मलेरिया प्रयोगों में मौत यक़ीनी तो नहीं है। उसकी केवल एक क्षीण सी संभावना है। क्या इसीलिए मैं इस आखिरी समय में इनका साथ छोड़ दूँ और इनकी निगाहों में गिर जाऊँ ? नहीं प्रियतम ! यह कभी न होगा। तुम सेनानी बनकर मौत से लड़ते चलो। मैं सैनिक बनकर तुम्हारे साथ चलूँगी। तुम्हें छोड़ नहीं सकती। यदि मरना भी पड़ा तो तुम्हारे दिल में एक न भूलनेवाली याद बनकर तो रह ही जाऊँगी। मैं पीछे न हटूँगी, कभी नहीं।

डाक्टर ने फिर कुछ परेशान होकर पूछा, "आपने बताया नहीं।"

वनमाला चौंककर बोली, "माफ़ कीजिएगा डाक्टर साहब ! आपने डाक्टर फड़नबीस की 'डेथ' का जो किस्सा सुनाया उससे मैं इतनी परेशान हो गयी कि मुझे वह बात बिल्कुल ही याद नहीं रही। फिर कभी याद आयी तो कह दूँगी। कोई बहुत महत्वपूर्ण बात नहीं है। हाँ, आपको बिलावजह तकलीफ़ दी, इसका मुझे अफसोस है।"

डाक्टर साहब उठते हुए मुसकराकर बोले, "नहीं, कोई बात नहीं है।"

वापस जाते हुए डाक्टर की ओर वनमला देखती रही। उनके जाने के बाद भी बहुत देर उसी ओर देखती रही। फिर ठंडी साँस भरकर बोली, "अब तो तुम जिधर चलाओगे प्यारे, उधर ही चलूँगी। मेरा और कोई रास्ता ही नहीं है।"

× × ×

वनमाला के हृदय का बोझ हलका हो गया। उसके थके हुए मस्तिष्क को परेशान करने के लिए कोई समस्याएँ न रहीं। उसने अपनी जीवन नौका को तूफ़ानी धाराओं में उन्मुक्त बहने के लिए छोड़ दिया। धारा काटने के प्रयत्नों में शिथिल पड़े अंगों को ढीला छोड़कर जैसे वह पड़ रही और लहरों के साथ तूफ़ान के थपेड़ों की खिलवाड़ का तमाशा देखने लगी। एक अजीब तरह के उदासी मिले सुख का अनुभव उसे हो रहा था जैसे एक बोतल बियर के हल्के लेकिन अवसादपूर्ण नशे में होता है।

दोपहर में अपनी आदत के अनुसार उसे नींद न आयी। पलंग पर लेटी-लेटी वह फिर भूत और वर्तमान के चित्र एक-दूसरे के बाद बनाने लगी। लेकिन और दिनों की भाँति आज उसे पुरानी स्मृतियों में वह अपनापन न महसूस हो रहा था जो उसके दिल को बेचैन कर देता। उसे वे बातें ऐसी मालूम हो रही थीं जैसे किसी कहानी में सुनी हों। आज उसे मधु की याद ने तड़पाया नहीं, उसे प्रोफेसर साहब पर तरस नहीं आया, यमुना ने उसे उत्तेजित नहीं किया। हाँ इन बातों के मुकाबले में वर्तमान उसे स्पष्ट, सजीव और तड़पता हुआ मिला। बेगम कुरैशी का ध्यान आने पर उसके हृदय में जलन होने लगी और डाक्टर का ध्यान······वह तो अवर्णनीय था।

वह बेचैनी से शाम का इंतज़ार करने लगी। चाय पीकर उसने कपड़े बदले और बाहर आ खड़ी हुई। बाल्कनी से वह बहुत देर तक सड़क की ओर देखने लगी, लेकिन वास्तव में वह सड़क पर चलने वालों को देखते हुए भी नहीं देख पा रही थी। अगर उससे कोई पूछता कि कोई ट्राम अभी गुजरी है या नहीं, तो वह बिल्कुल न बता पाती। उसके दिमाग़ में उथल-पुथल थी, होंठों के कोनों पर हलकी हँसी और आँखों में रतनारे डोरे। उसका मन एक ऐसी दुनिया में था जहाँ की धूप रुपहली होती है और जहाँ फूलों से मादक संगीत फूटता है।

दस मिनट बाद वह डिस्पेंसरी की ओर बढ़ी। उसका हृदय ज़ोरों से धड़कने लगा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि डाक्टर के पास क्यों जा रही हूँ। उसने यह तो सोचा ही नहीं था कि कभी उनसे अपने हृदय की बात कहूँगी। वैसे भी ऐसी कौन स्त्री है जो अपने मुँह से अपने हृदय की बात अपने प्रियतम से कहती है। और फिर वनमाला जैसी मानिनी के लिए यह बिल्कुल असंभव था। फिर भी वह जा रही थी। उसके पाँव ठिठकते हुए से बढ़ते जा रहे थे, दिल में जोरों की धड़कन हो रही थी और दिमाग़ में शहनाइयाँ बज रही थीं।

डिस्पेंसरी में डाक्टर अकेले बैठे थे। मरीज़ आये नहीं थे, असिस्टेंट लोग रेसकोर्स में जाने के लिए बेचैन थे, सो वे भी चले गये थे। कम्पाउंडरों में एक की स्त्री बीमार थी और दूसरे के घर में मेहमान आये थे। डाक्टर साहब प्रतिभावान चाहें जितने हों, लेकिन कुशल मालिक न थे। उनके मातहत अक्सर उन्हें चकमा दिया करते थे और वे जानते-बूझते भी उन्हें रोक नहीं पाते थे और छुट्टी दे दिया करते थे।

वनमाला के पहुँचने पर उन्होंने उसका मुसकराकर स्वागत किया। बोले, "कहिए, कैसे तकलीफ़ की?"

वनमाला के मुह पर हवाइयाँ-सी उड़ने लगीं। वह क्या बतलाती कि मैं क्यों आयी हूँ। फँसे गले से उसने कहा, "कुछ नहीं! यों ही आयी थी। अकेलापन-सा महसूस हो रहा था। आपको—...आपका कुछ 'डिस्टर्ब' तो नहीं हुआ।"

"अरे नहीं। आप बैठिए," डाक्टर साहब ने जल्दी से कहा। लेकिन उन्हें वनमाला की बातें कुछ अजीब-सी लग रही थीं। अकेलापन इसे आज ही क्यों महसूस हुआ और फिर डिस्पेंसरी के समय मेरे पास आकर गप लड़ाने की क्या ज़रूरत थी, यह तो अपनी सहेली—बेगम साहबा—के पास ही बैठा करती थीं। लेकिन आदमी का दिमाग़ ही तो है। मालूम नहीं कब किस तरह से काम करता है। डाक्टरने वनमाला के आकस्मिक आगमन को कोई महत्व न दिया।

लेकिन चुप्पी अखरने लगी। डाक्टर सोच रहे थे कि वनमाला कुछ कहेगी

लेकिन उसके गले में तो जैसे काँटे फँस रहे थे। डाक्टर ने एक-आध बात भी पूछी तो वह हूँ-हाँ करके रह गयी। कमरे में अधिकतर चुप्पी रही।

डाक्टर ने इस खामोशी से घबराकर प्रस्ताव किया कि कुछ देर घूम आया जाय। वनमाला बँधी हुई-सी उनके साथ चल दी। ट्राम से उतरकर पैदल चलते हुए उन्होंने चर्नी रोड स्टेशन पार किया और चौपाटी के तट पर एक पत्थर की बेंच पर बैठ गये।

वनमाला ने पूछा, "आपके 'एक्सपेरीमेंट्स' की तय्यारियाँ कैसी हैं?"

डाक्टर का यह प्रिय विषय था। मालूम नहीं दिन-रात वे अपने शोध कार्य की ही बातें कैसे सोच पाते थे। उन्होंने उत्साहपूर्वक कहा, "तय्यारियाँ तो पूरी हो गयी हैं, सिर्फ दिल्ली से डाक्टर भाटिया और नागपुर से डाक्टर परांजपे के आने की देर है। मेरा ख्याल है कि जून के मध्य में हम लोग रवाना हो जायेंगे।"

वनमाला के सीने से एक दबी हुई-सी गहरी साँस निकली और वह शून्य दृष्टि से तट के पत्थरों पर सर पटकती हुई समुद्री ज्वार की लहरों को देखने लगी।

डाक्टर को उसका व्यवहार कुछ अजीब लगा। उन्होंने कहा, "क्या बात है? आप कुछ परेशान सी नजर आ रही हैं।"

वनमाला फिर भी चुप रही। डाक्टर को कुछ और पूछने का साहस न हुआ। उनका बाल सुलभ सरल स्वभाव रहस्यमय मुद्राओं को समझ ही नहीं पाता था।

कुछ देर बाद वनमाला बोली, "जीवन के क्षण भी कितने मधुर हैं!"

डाक्टर इस दार्शनिकता से और भी घबरा गये। मूर्ख बालक की भाँति हकला कर बोले, "जी हाँ…।"

वनमाला झुँझला कर बोली, "रहने दीजिए अपना 'जी हाँ।' जिस बात को आप समझ ही नहीं पाते उसमें जबर्दस्ती बीच में बोलने की क्या जरूरत है?"

डाक्टर को वनमाला की इस दशा पर ताज्जुब तो हुआ ही, साथ ही अफसोस भी हुआ कि ऐसी हालत में इसके साथ आकर क्यों अपनी शाम खराब की। वे बोले, "हाँ। यह सही है कि मैंने आपकी बात का मतलब नहीं

समझा था, लेकिन मैं यह समझ गया हूँ कि आपकी तबियत ठीक नहीं है। मेरा प्रस्ताव है कि हमलोग घर वापस लौट चलें।"

"आप मेरी बीमारी नहीं समझ सकते। आप में इतनी समझ ही नहीं है।"

"फिर भी कोशिश करना तो मेरा फ़र्ज़ है," डाक्टर अपमान को पीते हुए बोले।

"मेरी बीमारी पहचानने के लिए स्टेथेसकोप की जरूरत नहीं," वनमाला ने डाक्टर की ओर मुँह करके कष्टपूर्ण मुसकराहट के साथ, "हाँ गहरी नज़र चाहिये। देखिए मेरी तरफ़, पहचानिए मुझे क्या बीमारी है।"

डाक्टर ने वनमाला की आँखों की ओर देखा और चौंक पड़े। चौपाटी पर अँधेरा बढ़ चला था। लेकिन इस धुँधलके में भी वनमाला की आँखों से बिजली सी छूट रही थी, एक विचित्र उन्माद हहरा कर फूट पड़ रहा था। डाक्टर ने निगाहें नीची कर लीं।

वनमाला ने उनका हाथ पकड़ लिया और गिड़गिड़ाती हुई सी बोली, "डाक्टर, तुम कितने नासमझ हो। क्यों रह-रहकर दिल के घाव कुरेदा करते हो। क्या तुम यह भी नहीं समझ पाते कि मुझे सुन्दरबन के दलदली जंगलों में जान देने के लिए कौन सी ताकत लिये जा रही है। संसार के प्रति कर्तव्य की भावना? मैं इन खोखले शब्दों का अर्थ ही नहीं समझ पाती। यह सही है कि पहले मैं जीवन से उकता कर मरने के लिए आयी थी, लेकिन अब तो ऐसा नहीं है। अब तो मैं जीवन से प्यार करने लगी हूँ। फिर भी मुझे इस सुन्दर जीवन का अंत करने के लिए कौन मजबूर कर रहा है? तुम ······केवल तुम।"

डाक्टर के शरीर से पसीने की धारें छूटने लगीं और गला सूख गया। वास्तविकता बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से उनके सामने आ गयी थी, और वे इसके लिए बिल्कुल तय्यार न थे। वे हकलाते हुए बोले, "मैं ···· मैंने आपको कभी मजबूर नहीं किया।"

"लेकिन मैं जानती हूँ कि तुम्हारी सारी प्रतिष्ठा इन प्रयोगों पर निर्भर है। तुम्हें दुखी करके मैं जिंदा भी रही तो मुझे जीवन में क्या मिलेगा। इसीलिए

मैं तय्यार हूँ। खैर यह बात छोड़ो। यह बताओ कि मेरे इतने बड़े बलिदान का कुछ मूल्य चुकाओगे ?"

डाक्टर कुछ देर चुप रहकर बोले, "मिसेज़ वर्मा ! आप ग़लती कर रही हैं।"

"मुझे सदाचार की शिक्षा देने की धृष्टता न करो डा०," वनमाला तड़पकर बोली, "सदाचार की बातें तो स्त्रियाँ ही पुरुषों से करती हैं। यह कहो साफ़-साफ़ कि मैं बड़ा कायर हूँ, मुझमें स्त्रियों जैसा साहस भी नहीं......।" कहते-कहते वह हाँफने लगी।

---

२१. पलायन

वनमाला लगभग रातभर सो नहीं सकी। उसके दिल में आग लगी हुई थी। वह गुस्से की बेचैनी से तड़प रही थी। डा० ने उसका जो तिरस्कार किया था वह भूला नहीं जा सकता था। जीवन में पहली बार उसने भीख माँगी थी और भीख के बजाय मिली थी केवल दुत्कार। वह सोच रही थी कि इस मनुष्य के, मालूम होता है, दिल नाम की कोई चीज़ ही नहीं है। अपनी उस थल-थल पिलपिल बेगम के सामने मुझे कोई चीज़ ही नहीं समझा। मेरा उसका कोई मुकाबला है ? फिर मैं इन हज़रत से चाहती भी क्या थी ? किसने इनसे विवाह का प्रस्ताव किया था। अगर यह कह देते कि तुम्हारे प्रेम की मैं कद्र करता हूँ तो इनका क्या बिगड़ जाता ? मैं इससे अधिक कुछ नहीं चाहती थी। इन्हीं कुछ शब्दों की थाती लिए मैं शांति से मर सकती थी। लेकिन उफ़......कैसा निर्दय है यह व्यक्ति भी।

फिर वनमाला सोचती...यह सब क्या पागलपन है ? मैं भी बिल्कुल पागल हो गयी थी। आखिर इन भोंदूबसंत में बात ही क्या है कि मैं इनपर मर मिटी। न किसी बात को सोचने-समझने की अक्ल, न बात करने का ढंग। वही थल-थल पिल-पिल इनके साथ खुश रह सकती है। अच्छा हुआ बात खत्म हो गयी। यह हैं किस गिनती में।

लेकिन इस झूठी तसल्ली से दिल न भरता। वह सोचती, कुछ भी हो इन्हें मेरा अपमान करने की हिम्मत कैसे हुई। यह मुझे समझते क्या हैं ? एक आवारा औरत...... वनमाला दाँत पीसने लगी। अच्छा मैं भी तुम्हें दिखा दूँगी कि मैं क्या हूँ। रुला-रुला के न मारा तो वनमाला नाम नहीं। और उस चुड़ैल को तो बताऊँगी। वह भी इधर मुझे टेढ़ी नज़रों से देखने लगी थी। उसी की यह सब करनी है। उसने खूब मियाँ साहब को अपनी मुट्ठी में किया है। वाह रे आदमी ! चूड़ियाँ पहनकर न बैठ जा !

वनमाला कई घंटे तक इसी तरह उबलती रही, रोती रही, कुढ़ती रही, गालियाँ देती रही, प्रतिशोध की योजनाएँ बनाती रही, डाक्टर को खुलेआम बदनाम करने से लेकर बेगम रैहाना कुरैशी को जहर देने तक की योजनाएँ उसने बनायीं और बिगाड़ीं। रोते-रोते आँखें सुजा लीं। एक बार गुस्से में आकर अपनी साड़ी दाँतों से चीथ डाली। लेकिन कई घण्टे की इस अवस्था के बाद उसकी इंद्रियाँ शिथिल पड़ गयीं और उसे आधी बेहोशी जैसी नींद आ गयी।

सुबह उठी तो उसकी आँखें जल रही थीं और बुखार सा चढ़ा हुआ था। सारे बदन में एक ऐंठन सी हो रही थी और दर्द के मारे सर फटा जा रहा था। कमजोरी इतनी आ रही थी कि पलंग से उठकर दो कदम चली तो आँखों के आगे अँधेरा छा गया। कुर्सी थामकर उस पर लुढ़क न पड़ती तो फर्श पर ही गिर पड़ती। वह अपनी बेबसी पर फूट-फूट कर रोने लगी। दस मिनट तक रोती रही तो जी का बोझ कुछ हलका हुआ। फिर उसने सुराही से एक ग्लास पानी पिया और गुसलखाने की ओर चल दी।

कुछ देर बाद वह चाय पीकर बैठी ही थी कि बेगम कुरैशी ने हँसते हुए कमरे में प्रवेश किया। वनमाला सकपका गयी। बेगम साहबा अब तक उसके कमरे में न आयी थीं, जब उन्हें बातें करनी होतीं, वे उसे ही अपने ड्राइङ्ग रूम में बुला लेतीं। आज यह नयी बात देखकर वनमाला का माथा ठनका। यह ज़रूर लड़ाई करने आयी हैं। आने दो—मैं क्या इनसे डरती हूँ? लेकिन फिर भी उसका दिल डूबा जा रहा था। उसका पहले वाला आत्म-विश्वास न जाने कहाँ चला गया था। रात को वह सोच रही थी कि इस तुन्दियल को ज़हर दे दूँगी, कुत्तों से नुचवा दूँगी और न जाने क्या-क्या करूँगी, किन्तु इस समय तो उन्हें देखकर वह केवल घबरा ही रही थी। काँपते स्वर में वह बोली, "आइए!"

बेगम कुर्सी पर बैठ गयीं। कमरे में एक ही कुर्सी थी, इसलिए वनमाला पलंग पर ही बैठ गयी। बेगम ने कहा, "बड़ी गर्मी है भाई। अभी तक पानी नहीं बरसा।"

वनमाला को कुछ क्रोध आया। कैसी बनी हुई है यह औरत। काहे

के लिए आयी है और क्या बात कह रही है। उसने रुखाई से कहा, गर्मी का तो मौसम ही है।"

बेगम साहबा फैलकर कुर्सी पर बैठ गयीं। वे बहुत मोटी न थीं। उनका बदन वनमाला के सुगठित शरीर की अपेक्षा स्थूल अवश्य था, लेकिन वे देखने में भद्दी नहीं लगती थीं। हाँ, चश्मा लगाने के कारण वे अपनी अवस्था से अधिक प्रतीत होती थीं। वैसे भी वे डाक्टर से दो वर्ष बड़ी थीं, वनमाला की समवयस्का ही थीं। कुर्सी पर आराम से बैठकर उन्होंने कहा, "आपकी कुछ तबियत खराब है क्या? बहुत सुस्त और उदास दिखायी दे रही हैं।"

वनमाला कुछ देर चुप रहकर बोली, "आप जो कुछ कहने आयी हैं उसे एकदम कह डालिए। भूमिका की क्या ज़रूरत है। सीधी बात क्यों न की जाय।"

बेगम मुसकराकर बोलीं, "मैं क्या कहने आयी थी?"

वनमाला को उनकी मुसकराहट ज़हर लगी। वह तड़पकर बोली, "आप मज़ाक न कीजिए। क्या डाक्टर ने आपको नहीं बताया कि मैंने उनसे क्या कहा?"

बेगम उसी तरह मुसकुराकर बोलीं, "बताया भी हो तो आपको यह कैसे मालूम कि मैं उसी के बारे में बात करने आयी थी।"

वनमाला इस खिलवाड़ से बहुत नाराज़ हो गयी। उसने अपने दिमाग़ का संतुलन बिल्कुल खो दिया। वह लगभग चीखकर बोली, "आप उसके बारे में बात करने आयी हों या न आयी हों, मैं ज़रूर आप से बात करना चाहती हूँ। मैं किसी से डरती नहीं हूँ।"

बेगम की ज़हरीली मुसकुराहट खत्म न हुई। वे बोलीं, "कौन कहता है कि आप किसी से डरती हैं। लखनऊ में अपने पति से नहीं डरीं, यहाँ आकर मौत से नहीं डरीं। आप को कौन डरा सकता है। आपको जो कुछ कहना हो कहिए।"

वनमाला बोली, "मैं डाक्टर से प्रेम करती हूँ।"

"शौक़ से कीजिए," बेगम उसी तरह बोलीं।

"और आपको इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।"

"अधिकार हो तो भी मैं उसके इस्तेमाल की ज़रूरत नहीं समझती।"

वनमाला ने बेगम की इस बात में छिपा हुआ व्यंग बड़ी तीक्ष्णता से अनुभव किया। उसे रुलाई छूटने लगी, लेकिन उसने अपने को सँभालकर कहा, "ज़रूरत की बात तो बाद में देखी जायगी। मैं तो अधिकार की बात कर रही थी। क्या आप का उन पर केवल इसीलिए अधिकार हो जायगा कि काज़ी ने कुरान की कुछ आयतें पढ़कर आप से पूछा कि आप को उनकी बीबी होना मंजूर है, तो आपने 'हूँ' कर दिया था?"

बेगम साहबा शायद अपना मूड बदलने को तय्यार न थीं। उन्होंने हँसते हुए कहा, "हमारा निकाह काज़ी ने नहीं पढ़वाया। हमलोगों की भी सिविल मैरिज हुई है। यह दूसरी बात है कि हमें अब तक तलाक़ की ज़रूरत महसूस नहीं हुई।"

बेगम वनमाला पर व्यंगबाण छोड़ती चली जा रही थीं। वनमाला ने हताश होकर कहा, "खैर 'सिविल मैरिज' सही। मैं पूछती हूँ कि आप का जो सामाजिक अधिकार है उसका महत्व अधिक है। और मैं जो उनके पीछे जान देने को तय्यार बैठी हूँ, मेरी कोई गिनती ही नहीं है। मैं...।"

बात काटकर बेगम बोली, "वनमाला! तुम बिल्कुल बच्ची हो। मुझे तुम पर तरस आता है। तुम्हारा दिमाग़ खराब हो गया है क्या?"

इस नये सम्बोधन से वनमाला को ऐसा प्रतीत हुआ कि वह सचमुच बेगम रैहाना से बहुत छोटी हो गयी है। उसने हक्का-बक्का होकर पूछा, "क्यों?"

"क्यों क्या?" बेगम झुँझलाये से स्वर में बोली, "तुम बच्चों की सी बातें ही कर रही हो। तुम्हारे दिमाग़ में एक फ़ितूर आया और तुमने समझ लिया कि उससे तुम्हारा बड़ा भारी अधिकार पैदा हो गया। यह पागलपन नहीं तो और क्या है। मैं तुमसे लड़ने नहीं आयी हूँ। सिर्फ़ तुम्हें समझाने आयी हूँ कि यह खुराफ़ात छोड़ो। उस सीधे-साधे आदमी को तुमने बेकार परेशान कर रखा है। गरीब कल से घबराया हुआ है।"

"लेकिन प्रेम...।"

"प्रेम की फिलासफ़ी मुझे न समझाओ। मैं भी अपनी ग़ज़लों में बहुत

प्रेम करती हूँ, अपने प्रियतम के हाथों क़त्ल हो जाती हूँ, महशर में उनका दामन पकड़ती हूँ फिर उन्हें परेशान देखकर उनका क़सूर अपने सर ले लेती हूँ। लेकिन ठोस जिंदगी की हक़ीक़त और ही है। फिर तुम शायराना मुहब्बत करो, तो भी मुहब्बत करनेवाले का हक़ सिर्फ़ मुहब्बत करने का होता है, इससे ज्यादा कुछ नहीं। लेकिन यहाँ तो यह मुसीबत है कि तुमने यही किया तो भी हबीब साहब घबराकर अपना काम ही छोड़ बैठेंगे। उनकी आदत मुझसे ज्यादा तुम नहीं जानतीं। क्यों उनके 'केरियर' के पीछे पड़ी हो। मेरी बात छोड़ो। इस बचपन के साथ तुम मेरा बाल-बाँका नहीं कर सकतीं। हाँ उनका 'केरियर' ज़रूर बिगाड़ दोगी और अपनी जिंदगी बवाल कर लोगी।"

वनमाला को ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी ने उसकी पीठ पर सड़ासड़ एक दर्जन बेंत जड़ दिये हों। वह तड़पकर बोली, "यह सब लेक्चर रहने दो। मैं पूछती हूँ कि मेरे और उनके बीच में पड़ने का तुम्हें क्या अधिकार है? इसका जवाब क्यों नहीं देती।"

बेगम ने घृणायुक्त स्वर में लेकिन सहूलियत के साथ कहा, "मैं अपने हक़ की बात नहीं कहना चाहती थी। लेकिन तुम मजबूर कर रही हो तो सुन लो। मेरा डाक्टर पर वही हक़ है जो तुम प्रो० जितेन्द्र वर्मा पर अपना समझती थीं और जिस पर आँच आने के महज़ झूठे अंदेशे से तुमने अपनी बच्ची तक को छोड़ दिया और दुनियाँ से छुटकारा पाने के लिए डाक्टर की दावत क़बूल कर ली। आखिर तुम यह क्यों समझा करती हो कि सारे हक़ूक़ तुम्हीं तक महदूद हैं, सारे अहसासात तुम्हारे ही दिल में होते हैं, दुनियाँ में और दूसरे लोग इंसान नहीं ईंट-पत्थर हैं!"

वनमाला के सीने में जैसे किसी ने ज़ोर का घूँसा मार दिया। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया और उस अँधेरे में चीख-पुकार और शैतानी क़ह-क़हे की बे मतलब और बिहंगम-सी आवाज़े आने लगीं। उसकी आँखें फटी रह गयीं।

बेगम उठते हुए बोली, "वनमाला! मेरी बातों का बुरा न मानना। मैंने यह सब तुम्हारा दिल दुखाने के लिये नहीं कहा है, बल्कि बड़ी बहन की तरह तुम्हें राह पर लाने की नियत से कहा है। तुम इसी तौर से इन बातों को

समझना। खुदा-वंद तुम्हें समझ दें। मेरी यही दुआ है।" कहकर बेगम चली गयीं।

× × × ×

इसके बाद वनमाला को दो दिन तक किसी ने न देखा। उसका कमरा या तो अंदर से बंद रहता और सिर्फ हशमत के लिए, जो चाय खाना वगैरा लेकर आता था, खुलता या फिर बाहर से ताला जड़ा रहता। एक बार बेगम ने घबरा कर दरवाज़ा खटखटाया तो वनमाला अंदर से बोली, "बेगम साहबा! फ़िक्र न कीजिए। मैं आत्म-हत्या नहीं करूँगी। आप जाकर आराम करें।" बेगम बेचारी यों हीं लौट आयीं।

तीसरे दिन डाक्टर साहब अपनी बेगम के साथ शाम को चाय पी रहे थे।

इसी समय हशमत घबराया हुआ-सा आया और बोला, "मिसेज़ वर्मा चली गयीं!"

"चली गयी!" बेगम ने चौंककर पूछा, "कहाँ चली गयी?"

"यह मुझे क्या मालूम? मैं चाय लेकर उनके कमरे में गया तो कमरा खुला पड़ा था। कमरे में कुछ सामान भी नहीं था। मालूम होता है कि दोपहर में बिल्कुल खामोशी से चली गयीं। सामान वगैरा उतरवाने के लिए भी मुझे न बुलाया। मेज़ पर यह लिफ़ाफ़ा पड़ा था। इसमें शायद कुछ लिखा हो।"

हशमत का दिया हुआ मोटा लिफ़ाफ़ा बेगम ने जल्दी से खोल डाला। इसमें वनमाला के हाथ की लिखी हुई दो चिट्ठियाँ और कुछ काग़ज़ पत्र थे। चिट्ठियों में से एक बेगम साहबा के नाम और दूसरी डाक्टर साहब के नाम थी। दोनों चिट्ठियाँ अँग्रेजी में लिखी थीं। बेगम साहब ने उन्हें ज़ोर से पढ़ा। उनके नाम की चिट्ठी में लिखा था:—

"प्यारी बहिन,

तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं, इसके लिए धन्यवाद देने को उपयुक्त शब्द मैं नहीं पा रही हूँ। जो कुछ हुआ है इसके बाद मैं अपने को इस योग्य नहीं पाती कि डाक्टर ने जो पवित्र कार्य शुरू किया है उसे अपनी दोषपूर्ण उपस्थिति से दूषित करूँ। मैं फिर भविष्य के अंधकार में कूद रही

हूँ। मुझे क्षमा करना और भगवान से मेरी सद्गति के लिए प्रार्थना करती रहना।

अपराधिनी
वनमाला।"

डाक्टर के नाम पत्र में लिखा था :—

"प्रिय डा० कुरैशी,

मैंने तीन दिन से आपके लिए जो उलझन पैदा कर रखी है, उसके लिए क्षमा चाहती हूँ। इससे भी अधिक क्षमा उस असुविधा के लिए चाहती हूँ जो मेरे न रहने से आपको अपने प्रयोगों के सम्बंध में होगी। लेकिन मैं विवश हूँ। मैं अपने अंदर वह जन-कल्याण की बलिदानी भावना पैदा ही नहीं कर पायी हूँ जो ऐसे महान कार्यों के लिए अपेक्षित है। इसलिए मुझे क्षमा कर दीजिए और भूल जाइए।

आपकी असुविधा की थोड़ी बहुत क्षति पूर्ति मैं इस भाँति किये जा रही हूँ कि अपने यात्रा व्यय के लिए थोड़ा सा रुपया निकालकर शेष आपके पुण्य कार्य के लिए समर्पित किये जा रही हूँ। यह शेष रकम ६२,६५३ रुपया ६ आना ५ पाई है। बैंक से यह रुपया आपको मलाड की सालीसीटर फर्म बाटलावाला एंड ब्रदर्स के मार्फत मिल जायेगा। इसके ज़रूरी काग़ज़ पत्र इसी चिट्ठी के साथ रख दिये हैं।

भवदीया,
वनमाला वर्मा।"

सब सुनकर डाक्टर साहब बोले, "अजीब औरत है।"

बेगम रैहाना कुरैशी सिर्फ एक ठंडी साँस भरकर रह गयीं।

———

२२. पथ प्रदर्शक

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में एक कस्बा है मैनपुरी। इसकी विशेषता यही है कि यहाँ खाने की तम्बाकू के अतिरिक्त और कोई विशेषता नहीं है। तम्बाकू पर भी मुद्दत हुई मैनपुरी का एकाधिपत्य समाप्त हो गया है। हर जगह अब मैनपुरी के मुक़ाबले की तम्बाकू तय्यार होने लगी है। हाँ, यह ज़रूर हो गया है कि मैनपुरी का नाम कलकत्ते से बम्बई तक मशहूर कर दिया है। मामूली कस्बों की तरह यहाँ भी सिर्फ़ एक ही बड़ा बाज़ार है जो एक लम्बे चिमटे की आकृति का है। आजकल मैनपुरी से छोटे कस्बों तक में बिजली पहुँच गयी है, किन्तु मैनपुरी के निवासी अभी तक लालटेन और पेट्रोमेक्स की पुरानी परम्परा को निभाने के लिए विवश हैं।

इसी कस्बे के चिमटे जैसे बाज़ार की एक बड़ी जनरल मर्चेन्डाइज़ की दुकान पर दो स्त्रियाँ मिलीं। शाम का समय था और जून का महीना। म्युनि-सिपल्टी की छिड़काव करने वाली मोटर के छींटों से अपनी रेशमी साड़ी को बचाने की घबराहट में एक महिला दूसरी खद्दरधारिणी से जा भिड़ी और खद्दरधारिणी के हाथ के हार्लिक्स के डिब्बे ने दुकान के एक लालटेन के शीशे की कपाल क्रिया कर दी।

"माफ़ कीजिएगा बहिन," भिड़नेवाली महिला बोली।

"बड़ा सस्ता नुस्ख़ा है। आप माफ़ी माँगकर अलग हो गयीं। मुझे तो शीशे का दाम देना पड़ेगा," खद्दर धारिणी झुँझलाती हुई बोली।

दूसरी ने दुकानदार की ओर रुपये का एक नोट फेंका और खद्दरधारिणी से मुसकराकर बोली, "अब भी कोई शिकायत बाकी है आपको?"

खद्दरधारिणी अचकचा गयीं। दुकानदार भी घबरा गया। अभी तक वह सोच रहा था कि शीशे का दाम भरने के लिए किसे पकड़ूँ, लेकिन दोनों को दाम देने के लिए तय्यार देखकर उसने भी हौसला दिखाने की ठानी। रुपये

को वापस करते हुए बोला, "नहीं बहिन जी, मैं शीशे का दाम नहीं लूँगा। कोई आप लोगों ने जानबूझकर तोड़ा है! मुझसे ही टूट जाता तो मैं किससे दाम लेता?"

दुकान से हटने पर रेशमी साड़ी वाली ने खद्दरधारिणी से पूछा, "सुनिए! आप यहाँ कोई अच्छा रेस्तराँ बता सकती हैं जहाँ अच्छी चाय मिल सके?"

खद्दरधारिणी ने इन देवीजी को ध्यान से देखा। यहाँ मैंनपुरी में रेस्तराँ में बैठकर चाय पीने की शौक़ीन यह कहाँ से आ गयीं। पुरुषों के लिए तो खैर चाय घरों में इंतज़ाम हो सकता है। लेकिन अगर उनमें कोई अकेली सुंदर युवती जाकर बैठ जाय तो शायद राह चलनेवाले राह चलना छोड़कर उसे घूरने लगें। उसने कहा, "नहीं। यहाँ आपके लायक़ कोई रस्तराँ नहीं है।"

चाय की इच्छुका के चेहरे पर परेशानी झलक आयी। वह बोली, "फिर तो बड़ी परेशानी है। दो दिन से चाय नहीं मिली। सर फटा जा रहा है, लेकिन मजबूरी है। अच्छा नमस्ते!" कहकर वह दूसरी ओर जाने को उद्यत हुई।

खद्दरधारिणी ने उसे रोककर कहा, "सुनिए। आप बाहर से आयी हैं?"

"जी हाँ।"

"अकेली ही हैं?"

"जी।"

"कहाँ ठहरी हैं?"

"यहीं पास वाले धर्मशाले में। वह जो उस तरफ़ है।"

"तो आप आज मेरे साथ चाय पीजिए। मेरा घर पास ही है।"

"लेकिन......"रेशमी साड़ी वाली अचकचाकर बोली।

"लेकिन क्या?" खद्दरधारिणी ने हँसकर कहा, "आपको चाय की सख्त ज़रूरत है। चाय आपको सिर्फ मेरे घर मिल सकती है। फिर लेकिन का क्या सवाल?"

रेशमी साड़ीवाली धन्यवाद देकर चुपचाप उसके साथ चल दी। लगभग दो फर्लांग चलकर बाज़ार खत्म होने पर सड़क के ही किनारे एक मकान के दरवाज़े पर खद्दरधारिणी ने आवाज़ दी, "चमेली।"

नौकरानी ने दरवाज़ा खोला और दोनों एक छोटे से, लेकिन हवादार कमरे में पहुँचीं। कमरे में एक पलंग, एक मेज़, एक किताबों की अल्मारी और दो तीन बेंत की कुर्सियों के अतिरिक्त कुछ न था। फर्श ईंटों का बना था। उस पर कोई दरी आदि न थी। मेज़ के सामने की दीवार पर लगा गांधीजी का चित्र कमरे की एक मात्र सजावट थी। खिड़कियों और दरवाज़ों पर पर्दे या चिक कुछ भी न था। मेज़पोश और पलंग के सारे कपड़े शुद्ध खादी के थे। गांधी जी के चित्र पर एक माला पड़ी थी जिसके फूल सुबह ताज़े रहे होंगे, लेकिन इस समय मृतप्राय हो रहे थे। कमरे में सफाई खूब थी।

खद्दरधारिणी रास्ते से ही अपनी मेहमान को पहचानने की कोशिश कर रही थी। इसीलिए वे अभी तक चुपचाप थी। चाय पीते-पीते उन्हें कुछ याद आया और वे बोलीं, "अगर मैं भूलती नहीं हूँ तो आपका नाम शायद ......श्रीमती वनमाला वर्मा है।"

वनमाला चौंक पड़ी। दुनिया में गुमनाम रहने के लिए ही तो वह इस गुमनाम से कस्बे की ओर मुड़ी थी। यहाँ भी पहचाननेवाले मिल जायेंगे, इसकी उसे आशा न थी। उसने चौंककर कहा, "जी ....हाँ......लेकिन....माफ़ कीजिएगा। मैंने आप को नहीं पहचाना।"

"मेरा नाम मनोरमा सिनहा है। दस वर्ष पूर्व आपने मुझे अध्यापिका नियुक्त किया था," खद्दरधारिणी ने मुसकराकर ताज़ी पकौड़ियाँ वनमाला की प्लेट में डालते हुए कहा।

वनमाला ने आँखें फाड़कर मनोरमा की ओर देखा। उसके सामने दस वर्ष पूर्व का दृश्य कल की घटना की भाँति स्पष्ट हो गया। लेकिन यही मनोरमा है? जब नौकरी के लिए आयी थी तो बिल्कुल लड़की सी लगती थी और दस ही वर्ष में बुढ़िया हो गयी। चेहरे की झुर्रियाँ देखकर मालूम होता था कि पैंतालिस से कम की न होगी। बालों की कई लटें सफेद हो चुकी थीं। फिर यह यहाँ कैसे आयी। वनमाला भी मुसकराकर बोली, "अरे...मैं तो आपको पहचान ही नहीं सकी।"

"जी हाँ, बहुत दिन पहले आपके दर्शन हुए थे। इस समय यहाँ कैसे कष्ट किया?" मनोरमा ने कौतूहलपूर्वक पूछा। उसे वनमाला को पहचानकर

ताज्जुब हो रहा था। अगर इस सर्किल में भी आ गयी हैं तो भी गर्मियों के दिनों में क्या निरीक्षण करेंगी। फिर न चपरासी न कोई अन्य कर्मचारी। फिर इंस्पेक्टरसें जब मुआइना के लिए आती हैं तो उन्हें धर्मशालाओं में ठहरते हुए किसने सुना है।

वनमाला को पछतावा हो रहा था कि मैं मनोरमा के साथ क्यों चली आयी? पहले जब यह मेरे पास आयी थी तो मेरी क्या हैसियत थी और अब किन परिस्थितियों में आयी हूँ। इसे मेरी दशा ज्ञात होगी तो जी में क्या सोचेगी। ग्लानि के मारे उससे और कुछ खाया नहीं गया और उसने हाथ खींच लिया। बात टालकर बोली, "यों ही एक निजी काम था। आप यहाँ कैसे? कब से हैं यहाँ? आपका अपाइंटमेंट तो बाराबंकी में हुआ था न?"

"जी हाँ। लेकिन बाराबंकी तो मैं सिर्फ एक साल रही। 'टेम्परेरी जाब' ही तो थी। उसके बाद मैंने सोचा कि ट्रेनिंग के बगैर काम न चलेगा। इसलिए सी० टी० की ट्रेनिंग ली। १६४१ ही में मुझे लखनऊ के महिला विद्यालय में जगह मिल गयी। लेकिन साल भर काम करने के बाद १६४२ में आंदोलन के सिलसिले में मुझे गिरफ्तार कर लिया गया और मैं डेढ़ वर्ष जेल में रही। (हँसकर) यह सफेद बाल उसी समय की निशानी हैं। इसके बाद प्राइवेट इंटर और लास्ट इयर बी० ए० किया। बी० ए० करके मैं यहाँ आ गयी। साल-भर से यहाँ आर्यकन्या पाठशाला में हेड मिस्ट्रेस हूँ।"

वनमाला दिलचस्पी से उनकी कहानी सुनती रही। वह सोच रही थी कि इस स्त्री में संघर्ष करने की कितनी शक्ति है। कुछ देर बाद उसने पूछा, "आपके पिताजी बहराइच में ही हैं? बहराइच की ही तो आप रहने वाली हैं न?"

"जी हाँ, लेकिन मेरे पिताजी अब नहीं हैं। १६४२ के विद्रोह में वे पुलिस की गोली से मारे गये," मनोरमा ने शांत स्वर में कहा, लेकिन यह कहते-कहते उसकी आँखों में एक कठोरता-सी आ गयी। वातावरण भारी हो गया।

वनमाला ने धीरे से पूछा, "आपके परिवार में और कौन-कौन हैं?"

"कोई नहीं। माँ पहले ही मर गयी थीं। मैं ही अपने माता पिता की अकेली संतान थी," मनोरमा किंचित मुसकरा कर बोली।

वनमाला सोचने लगी कि यह भेंट भी खूब हुई। इसके भी कोई नहीं, मेरे भी कोई नहीं। फिर भी मुझमें और इसमें कितना अंतर है। यह अपने भाग्य से बराबर जूझती आयी है, विघ्न-बाधाओं को कुचलती आयी है। मैं बराबर भाग रही हूँ। तो क्या यह मुझसे महान है। नहीं महान होने की इसमें क्या बात है। इसे लड़ना है, इसलिए लड़ रही है; मुझे भागना है इसलिए भाग रही हूँ।

मनोरमा ने पूछा, "आप तो लखनऊ सर्किल में ही होगी।"

वनमाला को क्रोध आने लगा। क्यों यह सब मुझसे पूछ रही है, तुझे क्या मतलब इन बातों से? उसके जी में आया कि कोई कड़ी बात कह दे। लेकिन उसने अपने को सँभाल लिया और सोचा कि ऐसा करना बहुत अनुचित होगा। यह तो केवल शिष्टता वश पूछ रही है, इसमें नाराज होने की क्या बात है। उसने बेपर्वाही से कहा, "नहीं। नौकरी मैंने दो-ढाई साल पहले ही छोड़ दी है।"

मनोरमा उसकी ओर आश्चर्य से देखती रह गयी। वनमाला की रुखाई देखकर उसने कुछ और पूछना उचित न समझा। लेकिन उसने जबर्दस्ती करके वनमाला को अपना मेहमान बनने पर राजी कर लिया। वनमाला का बक्स और बिस्तर उसी दिन धर्मशाले से उठकर मनोरमा के घर पर आ गया। वनमाला ने भी इसे गनीमत समझा। धर्मशाले में कब तक रहा जा सकता था। बाज़ार की पूरियाँ खाते-खाते पेचिश भी हो गई थी।

दो ही दिन में मनोरमा को विश्वास हो गया कि वनमाला भाग्य की ठोकरें खाती हुई हो यहाँ पहुँची है। संदेह तो उसे पहले दिन की बातों से ही हो गया था, लेकिन दो दिन में वनमाला की आँखों में कभी विषाद और कभी उन्माद की छाया देखकर और बात करते-करते अचानक उसका विह्वल होना लक्ष्य कर के मनोरमा का संदेह विश्वास में परिणत हो गया। चुनांचे तीसरे दिन उसने वनमाला को बिठाकर स्पष्ट रूप से उसका हाल पूछा। वनमाला इस समय प्रतिरोध न कर सकी। मनोरमा के प्रश्न इतनी दृढ़ता और आत्म-विश्वास से किये गये थे कि वनमाला के धैर्य का बाँध टूट गया और उसने विस्तारपूर्वक अपनी पूरी कहानी सुना दी।

मनोरमा चुपचाप सुनती रही। उसके चेहरे की कठोर रेखाएँ और भी कठोर हो गयीं। वनमाला भी उसे देखकर कुछ सकपका गयी, लेकिन सँभलकर बोली, "शायद आपके विचार से मैंने उचित नहीं किया।"

"जी हाँ। आपका कोई कार्य उचित नहीं था," स्पष्ट उत्तर मिला।

वनमाला घृणायुक्त स्वर में बोली, "शायद आपके ख्याल से मुझे अपने पति को नहीं छोड़ना चाहिए था, और उन्हें छोड़ा भी था तो मुसलमान डाक्टर से प्रेम नहीं करना चाहिए था। क्यों ? यही बात है न ?"

मनोरमा हँस पड़ी, लेकिन उसके चेहरे की कठोरता कम न हुई। उसने गंभीर स्वर में कहा, "यही आपकी सब से बड़ी कमज़ोरी है, मिसेज़ वर्मा। आप दूसरों के बारे में तुरंत ही राय कायम कर लेती हैं और हमेशा आपकी राय में दूसरे सभी लोग आप से शारीरिक और मानसिक रूप से निम्न स्तर के ठहरते हैं। फिर आप अपनी इस गलत राय को ही सही समझकर उस पर दृढ़ता से चलने की कोशिश करती हैं और ठोकर खा जाती हैं। आपका यह अहंकार है।"

वनमाला ने एक मिनट सोचकर कहा, "संभव है यह मेरा अहंकार हो। यही अहंकार मेरी प्रेरक शक्ति है। इसे छोड़ दूँ तो मैं जिंदा ही नहीं रह सकती। ... ...खैर जाने दीजिए इस बात को अगर आप मेरे कार्यों को अनुचित समझती हैं—चाहे किसी कारण—तो शायद आप मुझे अपना मेहमान बनाने में भी प्रसन्न न होंगी। ऐसी दशा में मेरा यहाँ रहना उचित नहीं है। मैं किसी दूसरे स्थान को चली जाऊँगी।"

"यह आप पिछली भूलों से भी बड़ी भूल करेंगी। आपकी अवस्था मुझसे ज़रूर ज्यादा है, लेकिन—क्षमा कीजिएगा—मेरे ख्याल से आप में अभी बचपन है। आपके सारे अनुभवों के बाद भी मैं कह सकती हूँ कि मुझे जीवन संघर्ष का अधिक अनुभव है और यह अनुभव आपकी उच्च शिक्षा, उच्च पद और उच्च समाज के बावजूद मुझे आपकी पथ-प्रदर्शिका होने योग्य बना देता है। आप ......।"

वनमाला चिढ़कर बोली, "लेकिन आपका सारा अनुभव आपको यह अधिकार तो नहीं देता कि आप जबर्दस्ती किसी का हाथ पकड़कर घसीटने लगिये।

क्षमा कीजिएगा। मैंने आपसे पथ प्रदर्शन की प्रार्थना नहीं की। मैं स्वयं अपना रास्ता खोज सकती हूँ और उस पर चलने के लिए मेरे पैरों में ताक़त है।"

मनोरमा मुसकुरा उठी। उसके चेहरे की कठोरता कम हो गयी। वह बोली, "आप झूठ बोलती हैं। सफेद झूठ। जो अपना रास्ता पहचानता है वह बगैर किसी पूर्व योजना के बम्बई से मैनपुरी आकर राह चलते लोगों से चाय की दुकान नहीं पूछा करता। अधिकार की बात आप कुछ समय के लिए भूल जाइए। अधिकार के नशे ने आपको अंदर से बिल्कुल खोखला कर दिया है। इसलिए अधिकार को गोली मारिए। जीवन के लिए कभी-कभी अनाधिकार चेष्टा भी वांछनीय होती है।"

वनमाला आश्चर्य से मनोरमा की बात सुनती रही। उसके सारे जीवन में कभी किसी ने उस पर ऐसा रोब नहीं जमाया था। उसके पिता की तो बात ही क्या है, जिद्दी मां ने भी कभी उससे इस तरह की बातें नहीं की थीं। उसे बुरा ज़रूर लग रहा था लेकिन साथ ही जैसे कोई दिल के अंदर रह रहकर कह उठता 'वनमाला, यही तुम्हारा अंतिम सम्बल है। इसे न छोड़ना।' अंत में उसने परेशान न होकर पूछा, "अच्छा मान लिया। लेकिन आप मेरी भलाई करने के लिए इतनी उत्सुक क्यों हैं?"

"आपने मेरे साथ जो भलाई की थी उसका बदला चुकाने के लिए।"

वनमाला को रुलाई छूटने लगी लेकिन वह उसे सँभालकर चुपचाप बैठी रही।

---

२३. तूफ़ान बदतमीज़ी

हर चीज़ की असली कीमत भी मालूम होती है जब वह हाथ से निकल जाती है। यह सिद्धान्त बहुत पुराना होते हुए भी बिल्कुल नया है। बचपन में सभी को पढ़ाया जाता है कि जो चीज़ हाथ में है उसे जाने नहीं देना चाहिए और चली जाय तो उसका अफसोस नहीं करना चाहिए। फिर भी बिरले ही ऐसे भाग्यवान मिलेंगे जो बचपन की इस शिक्षा को इस प्रकार हृदयंगम कर लें कि बड़े मन में पछताने की ज़रूरत न रहे।

वनमाला ने और कोई सहारा न देखकर यही तय किया कि मनोरमा के साथ ही रहा जाय। लेकिन यह तय कर लेने पर भी उसकी उलझन न मिटी। उसके जीवन का महाशून्य, जिससे बचने के लिए वह इधर-उधर भागी-भागी फिरती थी उसे भागने की राह न देता था। हर जगह वह दैत्याकार होकर अपने पंजे उसकी ओर बढ़ाता चला आता था। यहाँ पर आकर उसकी और बुरी हालत हो गयी। अब तो भविष्य की रूपरेखा क्या उसका कोई स्पष्ट या अस्पष्ट विचार तक सामने न था। इस अनिश्चितता की स्थिति में उसे अपने विगत जीवन की जो भी घटना याद आती, उसे आठ-आठ आँसू रुला जाती। अब उसे वास्तव में इस बात पर पछतावा होने लगा कि मैंने शुरू से जो कुछ भी किया बुरा किया। वह सोचती कि मैंने सिर्फ अपने साथ ही नहीं बल्कि औरों के साथ भी बुरा किया। मैंने प्रोफेसर साहब को कितना कष्ट दिया, यमुना को बेकार ही दुखी किया, डा० कुरैशी को न केवल परेशान ही किया बल्कि वहाँ से भागकर उनके प्रयोगों की योजना में भी बड़बड़ी पैदा कर दी। आत्मग्लानि से उसका हृदय कचोटने लगता।

वह सोचती कि क्या लखनऊ वापस चली जाऊँ। आखिर इसमें हर्ज क्या है। जब मैं अपनी गलती महसूस करती हूँ तो प्रो० वर्मा जैसे सज्जन व्यक्ति के सामने या किसी के भी सामने उसे स्वीकार करने में क्या हर्ज है। मैं ठोकरें खाकर अब काफी सीख चुकी हूँ, अब और ठोकरें खाने से क्या फायदा।

लेकिन उसके इस निश्चय का जैसे कोई गला घोंट देता था। उसे तुरन्त ध्यान आता कि अब मेरे वहाँ जाने से कोई लाभ नहीं है। प्रोफेसर साहब मेरे पति नहीं रहे। उन्होंने बहुत कृपा की तो मुझे घर में रह लेने देंगे। फिर यदि उन्होंने वास्तव में यमुना से···नहीं···नहीं। वहाँ जाना हरगिज़ नहीं हो सकेगा।

फिर वह सोचती कि बम्बई ही चली चलूँ। लेकिन तुरन्त ही यह विचार भी पलट जाता। वहाँ जाकर भी अपना हलकापन जाहिर करने के सिवा और क्या होगा! यह सब बेकार बात है। अब तक तो जहाँ भाग्य ने पटक दिया है वहीं रहना है और तक़दीर के नये-नये खेल देखना है। यह सोचकर वनमाला का मन और भारी हो उठता था।

लेकिन वनमाला को यह परेशानी अधिक दिन न रही। उसके सामने एक नयी और बड़ी परेशानी आ खड़ी हुई जिसमें यह मानसिक विषाद दब से गये। यह थी आर्थिक कठिनाई। वनमाला बम्बई से कुछ कम पाँच सौ रुपये लेकर चली थी। आठ-दस दिन में ही यह रकम ढाई सौ रह गयी थी। वनमाला को हाथ रोककर खर्च करने की आदत ही नहीं थी। उसे मालूम हुआ कि मनोरमा का वेतन सिर्फ २००) है। इसलिए उसके भोजन का बदला चुकाने की धुन में उसने उसके सादा घर के साज़-सामान पर इतना रुपया खर्च कर दिया था। लेकिन इस तरह से कब तक काम चल सकता था। एक दिन रुपयों का हिसाब लगाया तो वनमाला बिल्कुल घबरा गयी।

मनोरमा से कुछ छिपाना बेकार था। उसने तुरन्त ही यह लक्ष्य कर लिया कि वनमाला की उद्विग्नता का स्थान नैराश्य जनित विकलता ने ले लिया है। उसने पूछा तो वनमाला ने अपनी परेशानी साफ़-साफ़ बता दी। वनमाला को स्वयं आश्चर्य होता था कि इस अपरिचिता में उसका एकदम से विश्वास कैसे हो गया। कुछ दिन पहले तो वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि मैं अपनी आर्थिक कठिनाइयाँ किसी के सामने रख सकती हूँ।

मनोरमा ने पूछा, "फिर? क्या सोचा है आपने?"

वनमाला बोली, "कुछ समझ में नहीं आता।"

मनोरमा ने हिचकिचाते हुए कहा, "देखिए! बुरा न मानिएगा। आर्थिक

संकट बड़ा बुरा होता है। इसलिए इसे टाला बिल्कुल नहीं जा सकता। आपको कुछ न कुछ करना ही चाहिए। न हो तो आप...... ।"

"कहिए! आप रुक क्यों गयीं। मुझे वास्तव में आपकी सलाह की ज़रूरत है। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है," वनमाला बोली।

मनोरमा ने दूसरी ओर देखते हुए कहा, "मेरी स्कूल में ऊँचे दर्जों को पढ़ाने के लिए कुछ नयी नियुक्तियाँ होनेवाली हैं। जब तक और कहीं प्रबन्ध न हो...... ।"

वनमाला की स्थिति अजीब-सी हो गयी। जिस स्त्री को उसने अपना कृपा पात्र बनाया था उसी की मातहती में काम करने के विचार से उसे गहरा धक्का लगा; लेकिन साथ ही डूबते को सहारा भी मिल गया। उसने उमड़ते हुए आँसू रोककर मनोरमा से कहा, "आपकी कृपा पात्र होने के अतिरिक्त मेरे लिए और कोई चारा नहीं रहा। लेकिन मुझे इसका कोई दुःख नहीं है क्योंकि शायद भगवान ने मेरा झूठा गर्व चूर्ण करने के लिए ही यह दिन दिखाया है। मैं आपकी बड़ी कृतज्ञ हूँगी।" यह कहकर वह उठकर बाहर चली गयी। मनोरमा एक साँस भरकर रह गयी।

जून का महीना समाप्त होनेवाला था। स्कूल कालेजों में नियुक्तियों के लिए उम्मेदवारों ने दौड़ धूप शुरू कर दी थी। मनोरमा की सिफ़ारिश पर वनमाला को उसी के स्कूल में जगह मिल गयी। लेकिन वेतन तय हुआ सिर्फ़ अस्सी रुपये। इससे अधिक कुछ हो भी नहीं सकता था क्योंकि वनमाला ने मनोरमा के सामने यह शर्त रखी थी कि उसका असली नाम न बताया जाय। जिसे भी मालूम होगा कि पहले की इंस्पेक्ट्रेस ने एक गैर सरकारी स्कूल में सहायक अध्यापिका पद स्वीकार किया है, उसे इस कार्य में भी उस पर विश्वास न रहेगा और फिर लोगों की काना-फूसी कौन सुनेगा।

मनोरमा को इस नियुक्ति में काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी। वनमाला के सर्टिफिकेट तो काम में आ ही नहीं सकते थे। इसलिए मनोरमा को बहुत बड़ा झूठ बोलना पड़ा। उसने कहा कि प्रार्थिनी ललिता कपूर मेरी पुरानी सहपाठिनी है और बी० ए० पास है। गत वर्ष के साम्प्रदायिक उपद्रव में लाहौर में उसके सारे घरवाले मारे गये और वह किसी प्रकार जान बचाकर भारत

आ गयी है। इस प्रकार प्रमाण-पत्रों की कमी पूरी की गयी। प्राइवेट स्कूल था और मनोरमा के काम से मैनेजर साहब और मैनेजिंग कमेटी के अन्य सदस्य बहुत संतुष्ट थे। साथ ही सस्ते में अच्छी अध्यापिका भी मिल रही थी, इसलिए अधिकारियों ने मनोरमा के सर पर अहसान का बोझ लादते हुए ललिता कपूर की नियुक्ति कर दी।

वनमाला को यह समाचार पाकर बड़ी खुशी हुई। एक सप्ताह से वह उलझन में पड़ी थी कि यह नियुक्ति नहीं हुई तो क्या होगा। अस्सी रुपये महीने का क्या मूल्य होता है, यह वनमाला इसके पहले समझ ही नहीं सकती थी। अब उसके लिए एक सहारा हो गया था। खाने भर का इंतजाम हो ही गया था। अब वह अपने पिछले जीवन को आसानी से भुला सकेगी। अब जैसे वनमाला मर गयी और उसकी जगह उस ललिता कपूर ने ले ली जो न अपने को कुछ विशेष महत्व का समझती थी न जिसकी कुछ विशेष आकांक्षाएँ थीं।

उस रात को उसे बहुत देर तक नींद न आयी। नया जीवन आरम्भ करने की प्रसन्नता के साथ ही न मालूम कैसा एक विषाद उसके मन में भर गया। यह विषाद निकाले न निकलता था। उसे अचानक ही चार महीने पहले की वह सुबह याद आयी जब वह लखनऊ में २००) मासिक के प्रधानाध्यापिका के पद के न मिलने पर भी हँसी-खुशी अपने घर आयी थी। उस समय ऐसा मालूम होता था जैसे कि वह नौकरी उस पर कोई जबर्दस्ती लादे दे रहा हो और वह किसी तरह से उस मुसीबत से जान बचाकर निकल भागी हो। आज भी अगर ऐसा होता तो? वनमाला अपने ऊपर हँस पड़ी। जीवन का एक-एक क्षण उसे कुछ न कुछ नयी बात—कोई न कोई नयी वास्तविकता सिखाता जा रहा था और वह प्रत्येक क्षण अपने को पहले से अधिक बुद्धिमान पाती, लेकिन आगे आने वाला क्षण इस अहंकार को भी चूर्ण करता चला जाता था। वह सोचने लगी कि आखिर कब तक यह क्रम चलेगा।

तीन दिन बाद स्कूल खुला। स्कूल में वनमाला शीघ्र ही साथ की अध्यापिकाओं और छात्राओं सभी के आकर्षण का केन्द्र बन गयी। उसके अतुलनीय सौन्दर्य के साथ उसकी शालीनता और परिष्कृत रुचि ने सभी का मन मोह लिया। सभी उससे बातें करना चाहतीं। उसे इस नये निश्छल वातावरण में

आकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मनोरमा तो उसकी योग्यता से परिचित ही थी, इसलिए उसका व्यवहार उसके साथ असाधारणरूप से अच्छा था।

किन्तु यह प्रसन्नता भी अधिक दिन न रही। वनमाला को शीघ्र ही मालूम हो गया कि उसे शान्ति कहीं नहीं मिलेगी। बात यह हुई कि इसी वर्ष एक नयी एम० ए० पास अध्यापिका श्रीमती गौड़ की भी नियुक्ति हुई थी। यह देवीजी स्कूल के सेक्रेटरी श्री दीनानाथ पाण्डे की रिश्ते की भतीजी होती थीं। इस नाते वे स्कूल पर अपना एकछत्र अधिकार समझा करती थीं। उन्हें एक तो इसी बात की जलन थी कि प्रधानाध्यापिका एक ऐसी स्त्री है जो सिर्फ बी० ए० पास है और मुझे एम० ए० होकर भी उसकी मातहती में काम करना पड़ता है। फिर दूसरी मुसीबत यह कि कुमारी-सिनहा ने कहा कि श्रीमती ललिता कपूर को मुझसे ऊपर के क्लास पढ़ाने को दिये गये हैं। श्रीमती गौड़ खूब कुढ़तीं कि कुमारी सिनहा ने स्कूल को बिल्कुल घर की खेती समझ लिया है। यह श्रीमती कपूर भी सिर्फ बी० ए० ही हैं—और कौन जाने बी० ए० भी हैं या नहीं नहीं नहीं। यह अन्याय ,बर्दास्त नहीं हो सकता। आखिर कुछ तो आदमी की योग्यता का ख्याल होना चाहिए या सिर्फ अंधेरगर्दी ही चलेगी। मैं यह अंधेर गर्दी न चलने दूँगी। हर्गिज नहीं।

एक महीने तक श्रीमती गौड़ ने स्कूल की गति-विधि का निरीक्षण किया और फिर अपने हाथ-पाँव फैलाने शुरू कर दिए। सबसे पहले उन्होंने स्कूल की कुछ अध्यापिकाओं को अपनी ओर मिलाना चाहा। इस कार्य में उन्हें अधिक सफलता न मिली क्योंकि अधिकतर अध्यापिकाएँ प्रधानाध्यापिका के व्यवहार से पूर्ण संतुष्ट थीं और साथ ही इस पचड़े में पड़ना भी नहीं चाहती थीं। फिर भी दो-चार कामचोर अध्यापिकाएँ—जो मनोरमा से कई बार डाँट खा चुकी थीं—इस आशा में उनके साथ हो गयीं कि अगर श्रीमती गौड़ प्रधानाध्यापिका हो गयी तो उनके ठाठ हो जायेंगे। श्रीमती गौड़ ने इतना सहारा ही बहुत समझा।

इसके बाद उन्होंने अपने चाचा के कान भरने शुरू किये। रोजाना स्कूल की व्यवस्था-सम्बन्धी खराबियाँ ढूढ़-ढूढ़ कर उनकी रिपोर्ट पांडे जी के पास पहुँचायी जाने लगीं। यह भी बताया जाने लगा कि श्रीमती कपूर को कुछ

काम-वाम नहीं आता, कुमारी सिनहा उन्हें जबर्दस्ती 'फेवर' करती हैं। इसी तरह दो महीने और बीते।

पांडे जी का ख्याल प्रधानाध्यापिका की ओर से बहुत अच्छा था। लेकिन पत्थर पर लगातार पानी पड़ने से उसमें भी गढ़ा पड़ जाता है। पांडे जी भी अपनी भतीजी से सहमत होने लगे।

और आखिर वह दिन भी आ गया जब यह सुलगती हुई आग भभक पड़ी।

दिसम्बर के आखिरी दिन थे। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। ऐसे ही में एक शाम को स्कूल के अध्यक्ष लाला गिरधारी लाल की कोठी में मैनेजिंग कमेटी की बैठक हुई। मनोरमा भी प्रधानाध्यापिका होने के नाते कमेटी की सदस्या थी। वह कुछ दिनों से श्रीमती गौड़ की हरकतों को देख रही थी और इस समय मरने-मारने के लिए तय्यार होकर आयी थी।

कुछ मामूली कार्रवाई के बाद असली सवाल सामने आया। मैनेजर ने कहा कि हमलोगों ने कुमारी सिनहा की सिफ़ारिश पर श्रीमती कपूर को रख लिया था। लेकिन इधर उनका काम भी ऐसा नहीं दिखायी देता कि उनकी नियुक्ति का औचित्य सिद्ध हो। उन्होंने कोई प्रमाण-पत्र आदि भी नहीं दिखाये हैं। ऐसी हालत में उनका रखना ठीक है या नहीं?

मनोरमा चुपचाप बैठी थी। पं० लक्ष्मीकांत बोले, "ऐसा है तो उन्हें जवाब दे दिया जाय। 'क्वालीफ़ाइड टीचर्स' की कमी थोड़े ही है। बहुत मिल जायेंगी।" कमेटी के दो अन्य सदस्यों ने भी इस बात का समर्थन किया। मनोरमा अब भी चुप थी।

कमेटी के अध्यक्ष लाला जी ने मनोरमा की ओर देखते हुए कहा, "आप को इस प्रस्ताव में कुछ आपत्ति तो नहीं?"

"ज़रूर आपत्ति है," मनोरमा दृढ़ता से बोली, "यह सारी कारवाई अनुचित है। श्रीमती कपूर की अयोग्यता की हवाई बातें करके आप लोग चाहे उन्हें निकाल भले ही दें, लेकिन यह कार्य अनुचित होगा। किसी को आपकी संस्था में विश्वास नहीं रहेगा। किसी को अयोग्य बताने के पूर्व उसकी अयोग्यता के प्रमाण भी देने चाहिये।"

सब लोग चौंक पड़े। पाँडेजी का चेहरा लाल हो गया। वे हकलाते हुए

बोले, "आप तो उनकी वकालत करेंगी ही। मैंने खुद जाकर देखा है कि उन्हें पढ़ाना नहीं आता। वे ··।"

बात काटकर मनोरमा बोली, "आप कब स्कूल गये थे?"

"आप उन दिनों छुट्टी पर थीं," पाँडेजी उसी स्वर में बोले।

"लेकिन आपने कभी मुझसे इस निरीक्षण का उल्लेख नहीं किया।"

मैं आपको हरबात बताने के लिए मजबूर नहीं हूँ," पाँडेजी और बिगड़े।

"खैर···तो आपने क्या खराब देखी श्रीमती कपूर में?"

"मैंने देखा कि उनका सारा क्लास जोरों से हँस रहा था और वे लड़कियों के साथ खुद भी हँस रही थीं। मैंने उनसे कहा कि आप डिसिप्लिन क्यों नहीं रखतीं? तो उन्होंने अपनी गलती मानने के बजाय मुझसे कहा कि आपका डिसिप्लिन के बारे में ख्याल गलत है। मुझीको सिखाने ·····।'

मनोरमा ने पाँडेजी की आँखों में आँखें डालकर कहा, "वे ठीक कहती थीं। आपको बहुत-सी बातें खुद सीखने की जरूरत है। बच्चों का हँसना कोई जुर्म नहीं है। काम की योग्यता देखना हो तो यह देखिए······।"

यह कहकर मनोरमा ने अपने बैग से बहुत से कागजात निकाले और क्लासों के रेकर्ड टेस्टों और अर्धवार्षिक परीक्षा का अंक तालिकाओं से साबित कर दिया कि स्कूल भर में श्रीमती कपूर से अच्छा और किसी का काम नहीं है।

कमेटी का रुख ही बदल गया। पाँडेजी ने सदस्यों से कुछ पहले से साँठ-गाँठ तो की ही नहीं थी। उन्हें क्या मालूम था कि मनोरमा इतनी तय्यारी करके आयेगी। वे बिल्कुल चुप हो गये। कमेटी ने जब फैसला किया कि श्रीमती कपूर के मामले को छोड़ दिया जाये तब भी उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

लेकिन अब मनोरमा ने दूसरा शोशा छोड़ा। उसने अध्यक्ष के सामने अपने इस्तीफे का कागज बढ़ा दिया। कमेटी पर जैसे बिजली गिर पड़ी। पाँडेजी भी स्तंभित हो गये।

कारण पूछने पर मनोरमा ने कहा, "जिस स्कूल में प्रधानाध्यापिका पर इतना अविश्वास किया जाता हो कि उससे छिपा कर दूसरी टीचर्स से रिपोर्टें मँगायी जाती हों, उसके विरुद्ध अच्छा खासा षड्यन्त्र होता हो और उसकी

अनुपस्थिति में चुपके से मुआइना होता हो, वहाँ कोई आत्म-सम्मान रखनेवाली स्त्री रहना पसंद न करेगी।"

चोर की दाढ़ी में तिनका। पांडेजी फिर तड़पकर बोले, "किसने आपके विरुद्ध षड्यन्त्र किया? कौन किसे आपके विरुद्ध रिपोर्टें देता है?"

"आपको रिपोर्टें मिलती हैं और श्रीमती गौड़ देती हैं," मनोरमा ने कड़ककर कहा।

"आप झूठ बोलती हैं," मैनेजर ने चिल्लाकर कहा।

अब अध्यक्ष को दखल देना जरूरी हो गया। कुमारी सिनहा का रहना स्कूल के लिए जरूरी था, लेकिन मैनेजर के सम्मान की रक्षा भी जरूरी थी। उन्होंने मनोरमा की ओर भृकुटी चढ़ाकर देखा और बोले, "आप गलती पर हैं कुमारी सिनहा। आपके विरुद्ध कोई षड्यन्त्र नहीं हो रहा है। आप अपने शब्द वापस ले लीजिए। इस्तीफ़ा भी वापस ले लीजिए।"

मनोरमा ने कहा, "आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। मैं पांडेजी से क्षमा माँगे लेती हूँ। इस्तीफे पर भी जोर न दूँगी। लेकिन एक बात और आप लोगों के ध्यान में लाना चाहती हूँ। आप लोगों ने अंक तालिकाओं से देख लिया होगा कि 'सीनियर टीचर्स' में श्रीमती गौड़ का काम सबसे असंतोष-प्रद है। जनवरी से मैं उन्हें 'जूनियर सेक्शन' में भेज दूँगी।"

बात फिर बिगड़ते देखकर लाला गिरधारी लाल जल्दी से बोले, "स्कूल की पढ़ाई के बारे में आप जो कुछ ठीक समझें करें। हमें तो बस इससे मतलब है कि स्कूल की बदनामी न होने पाये। लड़कियाँ और उनके 'गार्जियन' संतुष्ट रहें, बस।"

पांडेजी खून का घूँट पीकर रह गये। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि साल खत्म होने पर मैं भी मैनेजरी से इस्तीफा दे दूँगा, लाला जी को मेरा कुछ ख्याल ही नहीं है। यदि वे कुमारी मनोरमा सिनहा से खुश हैं तो उन्हीं को लेकर बैठें।

× × ×

मनोरमा घर आयी तब भी उसकी झुँझलाहट नहीं उतरी थी। वह सोच रही थी कि अच्छी मुसीबत गले पड़ी। आज बस भगवान ने ही नौकरी बचा ली, वरना मुझे तो गुस्सा आ ही गया था। और अब तो साँप को छेड़ ही दिया है। मालूम नहीं मैनेजर साहब और श्रीमती गौड़ अभी क्या-क्या गुल खिलाने वाले हैं। उसे अकारण ही वनमाला पर क्रोध आने लगा। अपनी झक्कों के मारे इन्होंने अपनी तो मुसीबत की ही है, मुझे भी चैन न लेने देंगी। आखिर इन्हें मैनेजर का मज़ाक उड़ाने की क्या ज़रूरत थी, सीधी तरह बात समझा देतीं तो क्या हर्ज था। फिर जो कुछ हो गया उसके बारे में भी मुझसे कुछ नहीं कहा। अजब साहबी ठाठ हैं। अपने आगे किसी को कुछ समझती ही नहीं।

वनमाला सो न गयी होती तो शायद दोनों में अच्छी खासी झड़प उसी समय हो जाती। सुबह तक मनोरमा का पारा काफ़ी उतर गया था। उसने वनमाला से पिछली शाम की बातों का उल्लेख करके सहूलत से समझा दिया कि स्कूल की 'पालिटिक्स' बड़ी गंदी है, आप संभलकर रहा करें और जो कुछ भी बात हो मुझसे ज़रूर कह दिया करें।

वनमाला यह सुनकर चुप रही, लेकिन उसका चेहरा खिंच गया। स्पष्ट था कि उसे किसी को अभिभावक बनाकर उसकी छत्रछाया में रहने की बात बिल्कुल पसंद नहीं आयी। मनोरमा उसका यह भाव लक्ष्य करके कुढ़ गयी, लेकिन कुछ बोली नहीं।

तीन दिन बाद स्कूल में जब यह मालूम हुआ कि श्रीमती गौड़ को जूनियर सेक्शन में भेज दिया गया है तो सारे स्कूल में सनसनी-सी फैल गयी। अध्यापिकाएँ ही नहीं, ऊँचे दर्जों की छात्राएँ भी समझ गयीं कि सिनहा-गौड़ संघर्ष में श्रीमती गौड़ चित्त हो गयी हैं। साधारणतः इससे सभी को संतोष हुआ क्योंकि श्रीमती गौड़ की अहमन्यता किसी को भी पसंद नहीं थी। कुमारी सिनहा की विजय के साथ ही श्रीमती कपूर का भी नाम जोड़ा जाने लगा और इस पर कुछ मज़ाक भी शुरू हो गया।

यह किसे पता था कि जो बात कुमारी सुशीला आर्य ने सिर्फ हँसी में कही थी वह सारे स्कूल में इतनी जल्दी फैल जायेगी और परिहास की बजाय उसे गंभीर बात समझा जाने लगेगा। लेकिन इसमें इतने आश्चर्य की बात न थी

क्योंकि श्रीमती गौड़ तो पहले से ही इन दोनों से जली बैठी थीं। उन्होंने बात का बतंगड़ बना दिया और अध्यापिकाओं तथा छात्राओं में ही नहीं, स्कूल की दाइयों में भी खुसर-पुसर शुरू हो गयी।

आखिर फरवरी की एक शाम को—उस दिन रविवार था—जब मनोरमा कहीं से घूमकर लौटी तो उसने देखा कि ताँगे पर वनमाला का सामान लद रहा है। उसने पूछा तो वनमाला ने बताया कि एक मकान तय कर लिया है। वहीं जा रही हूँ।

"लेकिन क्यों?" मनोरमा ताज्जुब से बोली।

वनमाला ने झुँझलाकर कहा, "आपको कुछ खबर ही नहीं है। सारा स्कूल कहता है कि कपूर और सिनहा एक ही पलंग पर सोती हैं।......"

मनोरमा ने सर नीचा कर लिया और सामने से हट गयी।

———

२४. कटु अनुभव

अलहदा मकान लेकर वनमाला की परेशानी कम होने के बजाय बढ़ गयी। जब तक वह मनोरमा के साथ रहती थी उसे कुछ विशेष कठिनाई नहीं थी। वेतन के ८०) में से ३५) प्रतिमास वह मनोरमा को दे देती थी और शेष अपने ऊपर के खर्च में लाती थी। लेकिन नये मकान में आकर यह बात न रही। उसके तीन कमरों का किराया ही २०) महीने चला जाता था। दो महीने बाद उसने सिर्फ एक कमरा और एक कोठरी ही अपने पास रखी क्योंकि २०) देकर महीने के खर्च के लिए कुछ बचता ही नहीं था। फिर भी १३) महीने निकल जाते थे और वनमाला को महसूस होता कि उसका शेष वेतन ऊपर के खर्च के लिए भी काफी नहीं है। साथ ही खाने की समस्या और भी गम्भीर रूप धारण करके सामने आयी। पहले उसने भी मनोरमा की ही भाँति एक नौकरानी रखने की बात सोची, लेकिन हिसाब लगाकर देखा तो इस प्रकार से खाने पर किसी भी तरह ६०) से कम खर्च न होते। अन्ततः उसने यह विचार छोड़ दिया और बाजार से सामन लाने और खाना बनाने का काम भी स्वयं करने का निश्चय किया।

किन्तु निश्चय करना आसान था, उसे कार्यान्वित करना कठिन। स्कूल के दिनों में पाकशास्त्र की शिक्षा पाने के अतिरिक्त वनमाला को रसोई घर या दूसरे किसी भी गृहकार्य का न तो अनुभव ही था, न इतनी शारीरिक शक्ति ही। कई बार हाथ जल-जल गया और खाना बर्बाद हुआ। वनमाला इन मुसीबतों से रो-रो पड़ती।

घर की सफाई, बाजार-हाट और रसोई में सर खपाने के बाद वनमाला में इतनी शक्ति ही न रह जाती कि वह और कुछ काम कर सके। स्कूल में उससे कुछ पढ़ाया ही नहीं जाता था। परीक्षाएँ निकट आ रही थीं और साल भर खेल-कूद में बिता देनेवाली लड़कियाँ भी पढ़ने के मामले में गम्भीर हो गयी थीं और चाहती थीं कि सारा कोर्स एक बारगी हो उन्हें घोटकर पिला दिया

जाय। उन्हें यह देखकर बड़ी परेशानी हुई कि श्रीमती कपूर जो पहले इतने मनोयोग से पढ़ाती थीं, अब बिल्कुल नहीं पढ़ातीं। अन्य अध्यापिकाएँ जोरों से अपनी छात्राओं को कोर्स खत्म करवाने के बाद 'रिवीजन' करवा रही थीं और महत्वपूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर लिखवा रही थीं और वनमाला का यह हाल था कि दर्जे में हाजिरी लेने के बाद सर पकड़कर बैठी रहती। उसके सर में बराबर दर्द बना रहता। छात्राओं से वह स्वयं पढ़ने को कह देती। छात्राएँ मन ही मन भुनभुनाकर उसकी आज्ञा मानने का प्रयत्न करतीं। यदि कोई लड़की उससे कुछ पूछती या अपनी किसी कठिनाई को दूर करवाना चाहती तो भी वह झुँझला पड़ती। फल यह हुआ कि कुछ सीनियर लड़कियों ने मनोरमा से रिपोर्ट कर दी कि हमलोगों की पढ़ाई बिल्कुल ठीक नहीं है, इधर न जाने श्रीमती कपूर को क्या हो गया है कि वे कुछ ध्यान ही नहीं देतीं।

मनोरमा ने लड़कियों को तो टाल दिया, लेकिन उसे बड़ी झुँझलाहट आयी। वह सोचने लगी कि शायद इन देवीजी पर कोई और भूत सवार हुआ है। उसने सोचा कि आज शाम को इनसे साफ़-साफ़ बात करनी ही पड़ेगी। स्कूल खत्म होने के बाद मनोरमा वनमाला को अपने साथ घर ले गयी। चाय-पानी होने के बाद उसने पूछा, "आपका जी कुछ ठीक नहीं है क्या?"

वनमाला के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। महसूस तो वह खुद भी कर रही थी कि मैं आजकल लड़कियों के साथ बड़ा अन्याय कर रही हूँ, लेकिन इस समय मनोरमा के इस सीधे से प्रश्न से उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उस पर कोई भयंकर आरोप लगाया जा रहा है और वह उसका उत्तर देने में असमर्थ है। उसने फँसे गले से कहा, "तबियत तो खराब नहीं है, लेकिन न मालूम क्यों एक अजीब उदासी और थकान बनी रहती है।"

कुछ देर चुप रहकर मनोरमा बोली, "इस समय स्कूल में सबसे ज्यादा मेहनत करने का समय है। ऐसे में आपकी तबियत खराब होना ठीक नहीं है। आप किसी डाक्टर को क्यों नहीं दिखातीं? इस तरह कब तक रहेंगी?"

वनमाला ने बड़ी मुश्किल से अपने आँसुओं को रोक पाया। साल भर पहले तक उसके सर में दस मिनट के लिए भी दर्द होता था तो प्रोफेसर साहब की कार डाक्टर के लाने को दौड़ जाती थी। अब तो हफ्तों से सर में धमक

होती है, लेकिन डाक्टर की दवा के लिए दो-ढाई रुपये भी नहीं जुट पाते। उसने धीमे से कहा, "दिखाऊँगी।"

मनोरमा बोली, "आप साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहतीं कि आपको क्या दुःख है?"

वनमाला से अब ज़ब्त न हुआ। वह फूट पड़ी, "क्या बताऊँ कि क्या दुःख है। दिन भर घर का काम करते-करते कमर टूट जाती है। मैं ८०) में कोई नौकरानी थोड़े ही रख लूँगी।

मनोरमा के सामने सारी स्थिति स्पष्ट हो गयी। उसे अभी तक ख्याल ही नहीं आया था कि बचपन और जवानी का सारा समय आराम की जिंदगी बिताकर काट देनेवाली स्त्री के लिए खुद अपने लिए ही खाना तय्यार करने और अपने छोटे से कमरे की व्यवस्था करने में कितना कष्ट होगा। उसे अपनी अटकल पर पश्चाताप हो आया।

उसने सहूलियत से कहा, "यह तो ठीक है, लेकिन कुछ न कुछ रास्ता तो ऐसा निकलना ही चाहिए जिससे स्कूल का काम 'सफर' न हो। आपको ···।"

वनमाला अपनी ही परेशानी में थी। वह मनोरमा का सहानुभूतिपूर्ण रवय्या समझ न सकी। उसे तो ऐसा मालूम हो रहा था कि इस समय हर सही दिमागवाले आदमी को मेरा पक्ष लेना चाहिए और जो कुछ मैं करती हूँ, उसे उचित बताना चाहिए। उसने चिढ़कर कहा, "अगर मेरी वजह से स्कूल का हर्ज होता है तो मैं अलग हो जाऊँगी।"

मनोरमा का क्रोध भभक पड़ा। उसने तेज़ स्वर में कहा, "वनमाला जी, आप स्कूल में नौकरी करके स्कूल पर कोई अहसान नहीं करती हैं, अपना ही फायदा करती हैं। आपको इस्तीफा ही देना हो तो आपको कोई रोक नहीं सकता। लेकिन यह समझ लीजिए कि आप के अलग हो जाने से स्कूल का कोई बड़ा हर्ज नहीं होगा। आप ही का हर्ज होगा। मैं आप के साथ जितनी सहानुभूति दिखाती हूँ उतनी ही आप मुझसे तेज़ पड़ती जाती हैं। आप चाहे खुश हों या नाखुश, यह तो स्पष्ट है कि इस प्रकार स्कूल का काम नहीं चल सकता। लड़कियों की जिम्मेदारी तो हमें पूरी ही करनी है।"

वनमाला पर जैसे बिजली गिर पड़ी। उसे मनोरमा से—उसी मनोरमा से

जिसकी जिंदगी बनाने में उसका भी हाथ था, ऐसी कड़ी बातों की आशा न थी। इससे भी अधिक दुःख उसे इस बात का था कि आज उसी को—जो किसी जमाने में अपने कठोर अनुशासन और दक्षता के लिए दूर-दूर मशहूर थी—कर्तव्य-पालन के महत्व की सीख दी जा रही है जैसे वह कोई कामचोर हो। रोकते-रोकते भी उसकी आँखों से आँसू निकल ही आये।

मनोरमा ने कुछ धीमे पड़कर कहा, "मेरा इरादा आप का दिल दुखाने का बिल्कुल नहीं था। मैं जानती हूँ कि आपको कर्तव्य के याद दिलाने की जरूरत नहीं है। आपकी सारी कठिनाइयाँ आर्थिक हैं, लेकिन इस सिलसिले में भी कुछ जल्दी से तो हालत सँभाली नहीं जा सकती। आपको नयी परिस्थितियों में जीने की कला भी सीखनी ही पड़ेगी। आप मेरी बातों का बुरा न मानिएगा'''और हाँ'' अगर''' आप को कुछ दिक्कत हो तो दस-पाँच रुपये मुझ से ले लें।" अन्तिम वाक्य उसने जल्दी से कह डाला।

वनमाला को जैसे फिर किसी ने जलते लोहे से दाग़ दिया। उसने भरे गले से कहा, "नहीं, नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं है। आप की कृपा से मैं वैसे भी उऋण नहीं हो सकती। मैं पूरी कोशिश करूँगी कि आपको कोई शिकायत न हो। अच्छा '' नमस्ते।"

मनोरमा जाती हुई वनमाला को बहुत दूर तक देखती रही। फिर अनायास ही उसके हृदय की गहराइयों से एक ठंडी साँस निकल पड़ी और उसका मन भारी हो गया।

वनमाला ने उस शाम को कुछ भी न खाया। बारह एक बजे तक वह पलंग पर पड़ी चुपके-चुपके रोती रही। अब उसे पुरानी बातें याद करने में भी घोर यन्त्रणा होती थी। इसलिये वे बातें याद आयीं तो भी उसने बल-पूर्वक उन्हें भुलाया। वह वर्तमान जीवन की कठोरता से मुक्ति पाने के उपायों पर ही विचार करती रही, लेकिन कुछ तय न कर सकी।

सुबह उठकर उसने जल्दी से खिचड़ी डाली और अपनी स्कूल-डायरी वगैरा ठीक करने लगी। पढ़ाई का उसने नया कार्यक्रम बनाया और सारी पाठ्य-पुस्तकें छानकर उनके यथासंभव अध्यापन की रूप-रेखा बना ली। स्कूल में उस दिन से उसका रवय्या ही बदल गया। वह एक मिनट भी न खुद आराम

करती न छात्राओं को करने देती। दो ही सप्ताह में उसकी कक्षाओं की हालत बदल गयी। लड़कियाँ फिर खुश हो गयीं।

वनमाला जब तक स्कूल में रहती उस पर एक नशा-सा चढ़ा रहता। वह जैसे थकना जानती ही न थी। लेकिन घर आकर वह रोज़ाना अधमरी होकर पलंग पर गिर पड़ती। भोजन की व्यवस्था पहले ही उसके लिए संतोष-प्रद नहीं थी, लेकिन इधर तो यह हाल हो गया कि हर दो-चार दिन बाद एक वक्त का फाका ही हो जाता। उसमें इतनी शक्ति ही न रहती कि वह उठ-कर चूल्हा जला सके।

इन बातों का परिणाम जो कुछ होना था वही हुआ। जिस स्वास्थ्य और सौंदर्य को उसने चालीस वर्ष की अवस्था तक अक्षुण्ण बनाये रखा था, वह तेज़ी से उसका साथ छोड़ने लगा। उसकी आँखों के नीचे गढ़े पड़ गये, कपोलों की अरुणिमा पर झाईं-सी फिर गयी, चेहरे पर दो-चार हल्की झुर्रियाँ पड़ गयीं, होंठ सफेद पड़ गये और उन पर पपड़ियाँ जमने लगीं और अंततः इसका फल यह हुआ कि अप्रैल के अन्त तक उसे शाम को हल्का बुखार रहने लगा और जोड़-जोड़ में, विशेषतः कमर और सिर में बराबर पीड़ा और धमक रहने लगी। छुट्टियाँ शुरू होते-होते वह बीमार पड़ गयी। आखिर मानसिक आघातों और शारीरिक परिश्रम को आराम का अभ्यस्त और कोमल शरीर कब तक बर्दाश्त करता? छुट्टियों में यदि उसे मनोरमा अपने घर न उठा लायी होती और उसकी दवा-दारू का यथासंभव प्रबन्ध न कर दिया होता तो संभवतः वनमाला की जीवन-लीला समाप्त ही हो जाती।

× × × ×

अगस्त के महीने में एक दिन लाला गिरधारीलाल ने स्कूल का निरीक्षण किया।

यह बात सभी के लिए घोर आश्चर्य की थी। लालाजी पिछले दस वर्षों में स्वयं कभी स्कूल न आये थे। उन्हें अपने व्यापार और म्युनिसिपल राजनीति (वे म्युनिसिपल्टी के वाइस चेयरमैन भी थे) से इतनी फ़ुर्सत ही नहीं रहती थी कि ऐसे कामों में समय देते। फिर उन्हें शिक्षा आदि में कोई निजी दिलचस्पी भी न थी। अस्तु,

उन्हें वनमाला के काम करने का ढंग बहुत पसंद आया। उन्होंने मनोरमा को उसके चुनाव पर बधाई दी और आशा प्रकट की कि ऐसी अध्यापिकाओं से स्कूल की ख्याति बढ़ेगी। उन्होंने वनमाला से भी बात की और उसकी खूब प्रशंसा की।

वनमाला को यह सब सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सोचा कि यहाँ एक आदमी तो ऐसा मिला जिसमें योग्यता की सही परख है। मनोरमा से उसने एक दिन लालाजी के स्वभाव की बड़ी प्रशंसा की। मनोरमा चुप रह गयी।

लालाजी स्कूल की कमेटी में पूरे तौर पर हावी थे। वे जो कुछ चाहते थे वही होता था। पाँडेजी तो नाम के ही मैनेजर थे। उनकी असली हैसियत लालाजी के संदेशवाहक से अधिक कुछ न थी। लालाजी को वनमाला पर इतना विश्वास हो गया था कि वे इसके बाद अक्सर उससे स्कूल की उन्नति के बारे में सुझाव भी माँगने लगे। यही नहीं। एक दिन मौक़ा पाकर वनमाला ने अपनी आर्थिक कठिनाई का उल्लेख किया तो लालाजी ने दूसरे महीने से ही उसके वेतन में ३०) की तरक्की करवा दी। लालाजी की दो लड़कियाँ स्कूल में क्रमशः दसवें और आठवें दर्जों में पढ़ती थीं। उनकी अंगरेजी कुछ कमज़ोर थी। इसलिए उन्हें घर पर पढ़ाने के लिए लालाजी ने वनमाला को ४०) महीने पर ट्यूटर रख लिया।

वनमाला के दिन चैन से बीतने लगे। लालाजी की उस पर कृपा देखकर श्रीमती गौड़ भी न सिर्फ ठंडी पड़ गयीं, बल्कि अब वनमाला की एक प्रकार से खुशामद भी करने लगीं। वनमाला को भी विश्वास हो गया कि अब मेरे दिन फिरे हैं और दो-चार वर्षों में मैं ही स्कूल की प्रधानाध्यापिका हो जाऊँगी। मनोरमा से भी अब वह दूसरी तरह ही बातें करने लगी।

मनोरमा ने यह परिवर्तन लक्ष्य किया तो मन ही मन हँसी।

वनमाला ने इधर फिर स्कूल का काम ढीला कर दिया था। मनोरमा ने इस पर एक दिन फिर उसे फटकारा। वनमाला को क्रोध तो बहुत आया, लेकिन वह मनोरमा की अड़ को जानती थी। मनोरमा ने जब यह सुझाव दिया कि

तुम ट्यूशन का समय सुबह की बजाय शाम को कर दो ताकि स्कूल में ताज़ी होकर ही आओ, तो उसने मान लिया। लेकिन दिल ही दिल में तय कर लिया कि अब इनका बोरिया-बिस्तरा जल्द ही बँधवाना चाहिए। किसी व्यक्ति का चरित्र अप्रत्याशित रूप से कितना गिर सकता है इसकी कोई सीमा नहीं है।

नवम्बर का महीना था। एक दिन लड़कियों को पढ़ाकर उसने सोचा कि लाला जी से इस बारे में कुछ बात की जाय। लाला जी ने उसे अपने कमरे में ही बुला लिया। वे पलंग पर लेटे थे। वनमाला ने समुचित भूमिका के साथ अपनी बात शुरू की। लालाजी अधमुँदे नेत्रों से उसे देखते रहे।

बात खत्म होते न होते अचानक वे उठ बैठे। वनमाला को अपनी ओर आकर्षित करते हुए बोले, "ठीक कहती हो, कल ही उस हरामजादी को निकाल दूँगा।"

वनमाला की आँखें फट गयीं। उसने भरे गले से कहा, "अरे आप ...।" और वह घर चली गयी।

सुबह ६ बजे आँख खुलने पर लालाजी ने वनमाला को उनके घर से बुलाया उन्होंने कहा, "आपने यह क्या किया श्रीमती कपूर ! रात में मुझसे बात करने क्यों आयीं ! मेरी तो उस समय नशे में हालत ही दूसरी हो जाती है। आपने मुझसे वादा क्यों करा लिया ! कहते-कहते उन्होंने निश्वास छोड़ी।

वनमाला ने तीखे स्वर में कहा, "ठीक कहते हैं आप। न हो आप मुझे ही स्कूल से निकाल दें।

यह कहकर वह खिन्न हृदय से अपने घर की ओर भागी। पहला काम उसने यह किया कि नौकरी से इस्तीफा लिख दिया। बहुत देर तक वह उस कागज को देखती रही। फिर उसके आँसुओं ने वह कागज भिगो दिया। उसने उसे फाड़ दिया और एक सप्ताह की छुट्टी की दरख्वास्त लिखकर मनोरमा के घर भिजवा दी।

मनोरमा के घर पर उसी समय लालाजी का काना नौकर रम्मू बता रहा

था कि उसने सारा काम बड़ी खूबी के साथ किया है। उसने योजनानुसार लालाजी को जरूरत से ज्यादा शराब पिला दी। उसने कहा, "बीबीजी! मैंने दस रुपये में ही आपका लाख रुपये का काम कर दिया है।"

एक सप्ताह बाद वनमाला स्कूल गयी तो उसे छोटी-छोटी लड़कियों की मुद्रा में भी विद्रूप का आभास लगा। लेकिन उसे असली घबराहट तब हुई जब मनोरमा ने अकेले में उससे हँसकर कहा, "अब तो तुम्हारा हेडमिस्ट्रेस होना निश्चित है।" वनमाला ने सर झुका लिया।

———

२५. नियति के भरोसे

वनमाला के कमरे मकान की ऊपरी मंजिल में थे। यह मकान काफी बड़ा था। इसे एक वकील साहब ने बनवाया था जिनका चार पाँच वर्ष पूर्व देहान्त हो गया था। वकील साहब अपने पीछे विधवा पत्नी और एक पुत्र छोड़ गये थे। उनके दो पुत्रियाँ भी थीं, लेकिन वे अपने जीवनकाल ही में उनके हाथ पीले कर चुके थे। पुत्र इस वर्ष हाई-स्कूल की परीक्षा देनेवाला था। यह दोनों माँ-बेटे नीचे की मंजिल के आधे हिस्से में रहते थे। शेष सारा मकान किराये पर उठा दिया था। वकील साहब की पत्नी बड़ी मितव्ययी महिला थीं। बैंक में जमा रुपये को वे हाथ भी नहीं लगाती थीं और मकान के किराये से ही लस्टम-पस्टम गुजर करती थीं।

माँ-बेटे के अतिरिक्त उस परिवार में एक और भी महानुभाव थे। इनका नाम था बाबू अम्बिका प्रसाद। उनका क्या इतिहास था, यह किसी को भी ठीक नहीं मालूम था। वे अपने को स्वर्गीय वकील साहब का बहुत ही करीबी रिश्ते का चचाजात भाई कहते थे। लेकिन इस बात को वकील साहब की विधवा पत्नी से ज्यादा कोई नहीं जानता था कि वकील साहब के जीवनकाल में इन सज्जन के केवल दो बार दर्शन हुए थे और उसमें भी दूसरी बार वकील साहब ने उन्हें नौकर से धक्के देकर निकलवा दिया था। यह बात दस-बारह वर्ष पूर्व की थी। वकील साहब अम्बिका बाबू का जिक्र होने पर चिढ़ उठते थे और बगैर दो-चार भद्दी गालियों के उन्हें याद नहीं करते थे। कुछ भी हो, वकील साहब के मरने के चौथे-पाँचवें दिन ही अम्बिका बाबू आ गये थे। अपनी शोक संतप्ता भाभी को उन्होंने धैर्य बँधाया था और वकील साहब की सम्पत्ति पर गिद्ध की तरह मँडरानेवाले रिश्तेदारों को बड़ी खूबी के साथ रास्ता बता दिया था। वकील साहब की पत्नी बड़ी व्यावहारिक महिला थीं। उन्होंने अम्बिका बाबू के इस प्रस्ताव को मान लिया कि वे अब यहीं रहेंगे और वकील साहब के लड़के उमेश को किसी लायक बनाकर ही यहाँ से जायँगे। इस बात

में वकील साहब की पत्नी को यह सुविधा थी कि घर में एक वयस्क आदमी रहने से आसानी होगी और उमेश को एक अभिभावक और शिक्षक मिल जायगा और अम्बिका बाबू को यह आराम कि उमेश को डाँट-डपट करने और भाभी से घंटे भर तक गपबाजी करने पर ही दोनों समय भरपेट भोजन का सहारा हो जायगा। चुनांचे सौदा पट गया।

अम्बिका बाबू अपने को बी० ए० पास बताते थे, लेकिन उनसे जलन रखने वालों का कहना था कि यह हजरत इंटर में दो बार फेल होकर पढ़ाई को हाथ जोड़ बैठे हैं। किसी ने उनकी यूनीवर्सिटी-डिग्री की जाँच करने की कोशिश भी नहीं की, लेकिन यह अजीब बात थी कि विभिन्न मित्रों से गप लड़ाते समय वे अपने बी० ए० के अध्ययन का स्थान कभी कानपुर बताते थे, कभी आगरा तो कभी दिल्ली। वैसे वे अंग्रेज़ी बड़ी तेज बोलते थे। कीड़े निकालने वाले उनकी अँग्रेजी अशुद्ध बताया करते थे। लेकिन ऐसे कहने सुनने वालों की बातों की उन्हें परवा नहीं थी।

अम्बिका बाबू को संगीत और अभिनय का बड़ा शौक़ था। वे अपने को लखनऊ के मारिस कालेज का संगीत विशारद भी बताते थे, यद्यपि इसका प्रमाण-पत्र देखने की भी किसी ने जरूरत नहीं समझी थी। गला उनका बड़ा सुरीला था और वे संगीत-शास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली का इतना अधिक प्रयोग करते थे कि दो संभ्रांत सज्जनों ने उन्हें अपनी पुत्रियों का संगीत शिक्षक नियुक्त कर लिया था और उनके पान-सिगरेट और जेब खर्च का डौल हो गया था। स्थानीय ड्रामाटिक-क्लब की तो वे जैसे जान ही थे। अपने लम्बे चौड़े शरीर और सुगठित अंगों के बल पर वे हर नाटक में हीरो का पार्ट करते थे और उसमें बड़े सफल भी रहते थे।

उनकी बुराई ढूँढ़ने वालों का कहना था कि कालेज छोड़ने के बाद उन्होंने कालेजों के छात्रों से जाकर दोस्ती करने और उनकी किताबें पढ़ने के लिए माँग कर सेकेण्ड-हैंड बेचने का व्यापार शुरू किया। लेकिन कई कालेजों में सफल होने के बाद वे एक दिन पकड़े गये और लड़कों ने उनकी वह धुनाई की कि पन्द्रह दिन अस्पताल में पड़े रहे। फिर बम्बई जाकर एक सेठ के यहाँ नौकरी की, लेकिन उसकी पुत्री से छेड़-छाड़ करने पर निकाल दिये गये। फिर शायद

कुछ दिन कोकेन का व्यापार भी किया था। खुद उनका कहना था कि कलकत्ते में मेरी जनरल मर्चेन्डाइज़ की दुकान थी, हजारों रुपये की आमदनी होती थी। लेकिन उन्हें रुपया पैदा करना अखरता था क्योंकि इससे उनकी कला साधना भंग होती थी। हाँलाकि यह अजीब बात थी कि कलकत्ता जैसी जगह छोड़कर कोई व्यक्ति-कला की साधना के लिए मैनपुरी जैसे कस्बे में आकर रहे। लेकिन कलाकार के मन की बात कौन जान सकता है। शायद इसीलिए लोगों ने इस बात की भी छानबीन जरूरी न समझी।

उनकी अवस्था भी उनकी हर बात की तरह रहस्यपूर्ण थी। लोग उन्हें चालीस-बयालीस का कहते थे, लेकिन उनका कहना था कि मैं बत्तीस वर्ष का हूँ, बाल तो मेरे बचपन से ही सफेद थे। लेकिन वह अपने मुँह पर पड़ी झुर्रियों का, जिन्हें वे नाटकों में मेकअप के बल पर सफलतापूर्वक छिपा लेते थे, कोई कारण न बता पाते थे। खैरियत यही थी कि उनके मित्र, जिन्हें उनके व्यक्तिगत इतिहास संबंधी शोध कार्य की अपेक्षा उनकी गप्पें, जगह-जगह के किस्से और ऊँचे ठहाके अधिक रुचिकर थे, अन्य बातों की भाँति इस बात की अधिक छानबीन भी अनावश्यक समझते थे।

अम्बिका बाबू को कटरे के रहनेवाले ही नहीं, लगभग आधा क़स्बा जानता था। हलवाइयों और तम्बोलियों से लेकर वकीलों और थोक व्यापारियों तक में उनका स्वागत खुले हृदय से होता था। दो क्षण का मनोरंजन किसे बुरा लगता है?

वनमाला जब से इस मकान में आयी थी अम्बिका बाबू उसे बहुत गौर से देखा करते थे। यद्यपि वे उससे बड़ी शिष्टता से बातें करते थे और वनमाला को उनके इतिहास के बारे में कुछ भी न मालूम था, तथापि उनकी आँखों में न मालूम क्या देखकर वनमाला उनसे चिढ़ने सी लगी थी और उन्हें तरह न देती थी। और लोगों से वनमाला का व्यवहार बड़ा मधुर रहता था। वैसे तो उसे अपनी परेशानियों से ही इतनी फुर्सत कब थी कि गप्पों के लिए समय निकाले, लेकिन वह और किरायेदारों की स्त्रियों से जो भी थोड़ी-बहुत बात करती उससे वे बड़ी प्रभावित थीं और वनमाला के 'स्वच्छन्द' जीवन से उन्हें जो आशंका सी हो गयी थी वह शीघ्र दूर हो गयी। फिर भी अम्बिका बाबू से उसने जब

भी मजबूरी में बात की, लगभग झिड़ककर ही की। यहाँ तक कि कभी उनके हाथ में किराया भी नहीं दिया। अम्बिका बाबू माँगने जाते तो त्योरी चढ़ाकर कह देती कि मैं खुद मालकिन को दे आऊँगी। बेचारे हर महीने लात खाये हुए कुत्ते की तरह वापस चले आते, लेकिन न मालूम क्यों अगले ही महीने फिर तक़ाज़ा करने पहुँच जाते थे। वे अपनी आदत के ख़िलाफ़ न मालूम क्यों वनमाला से डरते रहते थे, लेकिन फिर भी उसकी उपेक्षा न कर पाते थे। उन्हें जितना इस किरायेदार की सुविधा का ख्याल रहता था उतना और किसी की नहीं। यहाँ तक कि पिछली दीवाली को उन्होंने उसके कमरों की सफेदी भी करा दी थी। मालकिन इस फिजूलखर्ची पर कुड़बुड़ा कर रह गयी थीं यद्यपि बोलीं कुछ नहीं।

लाला गिरधारी लाल के घर पर वनमाला को जो अनुभव हुआ था उसकी बात केवल स्कूल तक ही सीमित न रह सकी। एक महीने के अन्दर ही वह सारे क़स्बे की मनोरंजक चर्चा बन गयी। जवानों के ठट्ठों, अधेड़ों की गंभीर और कुटिल मुसकराहटों और बुढ़ियों के मटकते हाथों और फटी आँखों के बीच यह चर्चा ज़ोरों से चल निकली। लाला गिरधारी लाल की जिंदा दिली पर पुरुष वर्ग ठट्ठे लगाता। वनमाला की बेशर्मी पर औरतें आग डालतीं। वनमाला ने अपनी गंभीरता और सद्‌व्यवहार से जो प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, वह बालू के क़िले की तरह ढह गयी। सब कुछ जानकर भी लाला गिरधारी लाल की वजह से स्कूल में उस पर आँच न आयी, ट्यूशनें भी क़ायम थीं, इसलिए पैसे की तो दिक़्क़त नहीं थी, लेकिन सामाजिक तिरस्कार ने वनमाला को बिल्कुल जर्जर कर दिया था। वह स्कूल आते-जाते समय सर नीचा करके तेजी से निकल जाती, जैसे कि कहीं से चोरी करके जा रही हो। स्कूल के अतिरिक्त सारा समय घर में ही पड़ी रहती थी और मनोरमा पर अकारण क्रोध किया करती और उसकी जलन को आँसुओं से धोया करती।

उसकी बदनामी से अगर किसी को वाक़ई खुशी हुई तो अम्बिका बाबू को, लेकिन पुराने घाघ की तरह उन्होंने किसी के सामने यह खुशी ज़ाहिर नहीं की। उन्होंने कई दिन सोच-विचारकर दुश्मन के क़िले पर हमला करने की योजना बनायी और हथेली पर सर लेकर उसे कार्यान्वित करने को तय्यार हो गये।

जनवरी का महीना था और मघवट पड़ रही थी। शाम ढल रही थी लेकिन वनमाला अपने अँधेरे कमरे में कम्बल में लिपटी उदास पड़ी थी। अम्बिका बाबू हाथ में सिगरेट लिए हुए दाखिल हुए और बोले, "माफ़ कीजिएगा, आपके पास माचिस होगी? भाभी न मालूम कहाँ रखकर चली गयी हैं?"

वनमाला ने उठकर सलाई दे दी। अम्बिका बाबू सिगरेट सुलगाकर बोले, "आपने अभी लैम्प नहीं जलाया? क्या बात है?"

वनमाला किंचित हँसकर बोली, "कोई बात नहीं। जला लूँगी।"

उसके स्वर में तिरस्कार का भाव न था। थी केवल गहरी व्यथा जो छिपाने के प्रयत्न के बावजूद न छिप सकी थी! अम्बिका बाबूको सहारा मिला। बोले, "लाइए मैं जला दूँ।" दूसरे दक्षिण कमरे में धुँधला प्रकाश फैल गया।"

कुछ देर खामोशी रही। अम्बिका बाबू खड़े-खड़े ही कश खींच रहे थे। स्थिति असह्य हो उठी तो वनमाला मरे-मरे स्वर में बोली, "बैठ जाइए।"

वे बैठ गये और बोले, "आपकी तबियत ठीक नहीं मालूम होती।"

वनमाला बोली, "ठीक है। यों ही कुछ जी भारी हो रहा था।" और वह उठकर चूल्हा जलाने के इरादे से बढ़ी, लेकिन अम्बिका बाबू ने उसे रोक दिया। कहा, "आपकी तबियत ठीक नहीं है तो क्यों परेशान होती हैं। मैं खाना ले आऊँगा। आप meat तो खाती हैं।"

वनमाला ने कहा कि आपको तकलीफ़ करने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन वह इस समय अपनी बात में ज़ोर न ला सकीं और अम्बिका बाबू ओवरकोट लादकर निकल पड़े और सिंधी शरणार्थी की दुकान से कोरमें का कुल्हड़ और गर्मागर्म तंदूरी रोटी लेकर बीस मिनट में फिर आ मौजूद हुए। वनमाला ने अजीब बेबसी की सी हालत में उनकी भेंट सधन्यवाद स्वीकार कर ली। वह खाने लगी। अम्बिका बाबू बैठकर सिगरेट के कश लगाने लगे।

उन्होंने पूछा, "माफ़ कीजिएगा। आप आजकल कुछ परेशान रहने लगी हैं। कहीं घूमने वगैरा भी नहीं जातीं। क्या बात है?"

वनमाला के आँसू उमड़ने लगे। पिछले डेढ़ महीने से किसी ने उससे इस तरह बात नहीं की थी। वह जानती थी कि इस व्यक्ति का उद्देश्य सिर्फ मेरे दिल के घाव कुरेदना ही है। फिर भी वह बिगड़ न सकी। उसकी प्रति-रोध-शक्ति शायद खत्म ही हो गयी थी।

अम्बिका बाबू ने फिर कहा, "मैं जानता हूँ कि मुझे आपके मामलों में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है। फिर भी यह ज़रूर कहूँगा कि आपको इस तरह परेशान नहीं रहना चाहिए। इस तरह आप अपनी ज़िंदगी ही खत्म कर लेंगी।"

वनमाला के मुँह से ठंडी साँस के साथ निकल गया, "जिंदगी में अब धरा ही क्या है?"

अम्बिका ने ज़ोर देकर कहा, "कैसी बातें करती हैं आप! ज़िंदगी में कुछ हो या न हो लेकिन—माफ़ कीजिएगा—आप जिन बातों से परेशान हैं, उनसे परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। गैर जिम्मेदार और लफंगे लोग जो चाहें कहते रहें, आप को उनकी बिल्कुल परवा नहीं करनी चाहिए। इस तरह के कहने-सुननेवाले तो हर जगह होते हैं।"

वनमाला को उनकी हिम्मत देखकर आश्चर्य हुआ। किसी महिला की बदनामी की बात का उसी के सामने उल्लेख करना मामूली किस्म के आदमी का काम नहीं है। ऐसा आदमी या तो देवतुल्य हो सकता है या राक्षस। अम्बिका बाबू को देव-तुल्य मानने की वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी, लेकिन उनके स्वर में जो गंभीरता और सहानुभूति तथा प्रोत्साहन का पुट था उससे वे राक्षस भी नहीं लग रहे थे।

वनमाला ने कहा, "स्त्रियों को हर बात का खयाल करना ही पड़ता है।"

अम्बिका बाबू बोले, "ठीक है। फिर भी हिम्मत से काम लेना चाहिए।"

कुछ मामूली बात करने के बाद अम्बिका बाबू चले गये। वनमाला की हालत अजीब सी हो गयी। वह जैसे अपनी इच्छा के विरुद्ध एक दिशा में खिंची ही जा रही थी। अम्बिका बाबू उसे अब भी बुरे आदमी मालूम हो रहे थे, लेकिन न मालूम कौन सी चुम्बकीय शक्ति उसे इसी अवांछनीय व्यक्ति की ओर खींचे ले जा रही थी। अंत में उसने यही तय किया कि कोशिश बेकार है। धारा तो

बहा ही ले जायगी तो फिर हाथ-पैर मारने से क्या फायदा ? हाथ-पैर ढीले छोड़कर ही चली चलो।

वास्तव में तूफ़ानी धारा में हाथ-पैर ढीले छोड़कर बहना—कुछ देर को ही सही—आराम ज़रूर देता है। वनमाला को यह नयी मित्रता आकर्षक तो नहीं मालूम हुई लेकिन अनिवार्य ज़रूर हो गयी। मेवा-मिठाई के आदी को बुरा समय आने पर चने-चबेने खाने पड़े तो उसे अच्छा तो नहीं लगेगा, लेकिन खाना तो पड़ेगा ही।

और एक बार हाथ-पैर ढीले छोड़े तो फिर वनमाला सँभल ही न सकी। बर्षों से दबायी हुई इच्छाओं और प्रवृत्तियों ने एक-एक करके सर उठाना शुरू किया और वनमाला ने हर बार रो-रो कर—अपनी अकड़ और ज़ोर की मौत पर आँसू बहा-बहा कर—उनके सामने आत्म-समर्पण करना शुरू किया। उसने आँख बंद कर कड़वी शराब की घूँटे उतारना और उसके नशे में मद-मस्त होना ही निश्चित किया।

उसकी रातें शांतिपूर्ण हुईं, सुखकर हुईं, रंगीन हुईं और फिर उन्माद कारक हो गयीं। उसने वासना के प्याले ढालना और छक कर पीना शुरू किया। नशे में कुछ देर तो मौत का भय भी आदमी भूल जाता है।

वनमाला की बदनामी की आँधी तूफान बन गयी। हर तरफ़ उँगलियाँ उठने लगीं। फक्कड़ लोग सामने ही बोलियाँ बोलने लगे। लेकिन वनमाला को इस तूफ़ान की परवाह न थी। उसकी धमनियों में वासना की मदिरा दौड़ रही थी।

———

२६. कठोर वास्तविकताएँ

अगस्त का महीना था। आर्य कन्या पाठशाला में स्वतन्त्रता दिवस की धूम थी। लड़कियों ने शाम को एक नाटक और नृत्य का आयोजन किया था। कस्बे के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को इस अवसर पर निमन्त्रित किया गया था। मनोरमा बड़ी खुश नज़र आ रही थी क्योंकि उसके स्कूल जैसा आयोजन कहीं नहीं हो सका था। स्थानीय एम० एल० ए०, म्युनिसिपल अधिकारियों और स्वयं जिलाधीश ने समारोह की शोभा बढ़ाना स्वीकार किया था। समारोह के अत्यंत सफलतापूर्वक सम्पन्न होने की आशा थी।

लेकिन अन्त समय इस आशा पर पानी फिर गया। समारोह की संयोजिका श्रीमती ललिता कपूर का कहीं पता नहीं था। पार्ट करनेवाली लड़कियाँ परेशान थीं कि क्या करें। स्टेज भी पूरा तय्यार नहीं था। कुछ पोशाकें भी श्रीमती कपूर ही अपने साथ लानेवाली थीं। यही नहीं, वे ही म्यूज़िक आर्गेनाइज़र अम्बिका बाबू को भी लानेवाली थीं। अम्बिका बाबू नहीं थे तो अधकचरे हार्मोनियम मास्टर और अजनबी तबलची को कौन डायरेक्शन देता। साथ ही बग़ैर वायलन के साज़ कैसे पूरा होता। मनोरमा की खीझ और घबराहट ने अजीब स्थिति कर दी थी। वह समझ गयी कि वनमाला ने जानबूझकर ऐन मौके पर धोखा दिया है। उसने तय कर लिया कि अब इन देवीजी को रुला-रुलाकर न मारा तो मनोरमा नाम नहीं। ख़ैर, यह तो बाद की बात थी, सवाल तो यह था कि इस समय कैसे इज़्ज़त बचायी जाय...।

जिस समय मनोरमा खीझ-खीझकर वनमाला को गालियाँ दे रही थी, उसी समय वनमाला शिकोहाबाद जंक्शन पर गाड़ी बदल रही थी। उसके साथ में अम्बिकाबाबू थे। उनके साथ अन्य सामान के साथ उनका वायलिन भी था।

कुछ देर में तूफ़ान एक्सप्रेस पूर्व की ओर उड़ने लगा। कम्पार्टमेंट में अधिक भीड़ न थी। इन दोनों को एक ओर की लगभग पूरी बर्थ मिल गयी

थी। बहुत देर तक खामोशी रही। दोनों मालूम होता था अपनी-अपनी चिंता में निमग्न थे।

इटावा स्टेशन आया तो अम्बिकाबाबू ने पूछा, "कुछ खाओगी?"

वनमाला ने मना कर दिया। अम्बिकाबाबू चुप हो गये।

ट्रेन फिर चली। वनमाला एक ठंडी साँस भरकर आधी लेट गयी और नये खरीदे हुए इलस्ट्रेटेड वीकली के पन्ने अनमने ढङ्ग से पलटने लगी।

अम्बिका बाबू ने कहा, "क्यों उदास हो?"

वनमाला ने मुसकरा कर उनकी ओर देखा। मालूम होता था कि इस मुसकराहट ने उसकी सारी उदासी धो दी है। वह धीरे से बोली, "उदास तो नहीं हूँ, लेकिन खुश होने का भी कौन-सा मौका है? कौन-सा भला काम करके आयी हूँ।"

अम्बिका बाबू ने मुसकरा कर कहा, "फिर क्यों किया था यह काम?"

वनमाला की मुसकराहट गायब हो गयी। कुछ भवें चढ़ाती हुई बोली, "मैं अब भी लौट सकती हूँ। मुझमें इतनी हिम्मत है। तुम अपनी सोचो। बोलो क्या कहते हो?"

अम्बिका बाबू खिसियानी हँसी-हँसकर रह गये। बात खत्म हो गयी, लेकिन अम्बिका बाबू को परेशानी होने लगी। उन्हें महसूस हुआ कि जैसे उन्होंने अनजाने ही नागिन के बिल में हाथ डाल दिया हो और अब उसका फन पकड़ना जरूरी हो गया हो। सिर्फ इसी तरह उसके विषैले दाँतों से बचने की कोई संभावना थी।

रात को बारह बजे वे लोग लखनऊ पहुँच गये। दूसरे दिन अमीनाबाद के एक रद्दी से होटल में ठहरने का इन्तजाम किया गया क्योंकि पहले कुछ आमदनी का ज़रिया निकालना और फिर मकान तलाश करना दोनो ही टेढ़ी खीर थे। मालूम नहीं कब तक इस प्रकार काम चलाना पड़े। वनमाला के पास बचाये हुए कुल डेढ़ सौ रुपये थे और अम्बिका बाबू को अपनी भाभी का कैश बक्स तोड़कर भी तीन सौ से अधिक न मिला था।

फिर भी सौभाग्य इन लोगों के साथ था। अम्बिका बाबू को एक फर्म में ७०) की नौकरी मिल गयी। तिकड़मी आदमी थे इसलिए दस ही दिनों में

एक ट्यूशन भी तलाश कर ली। गणेशगंज की एक तंग गली में १५) महीने पर एक कमरा भी मिल गया। पन्द्रह दिन होटल में रहकर वे अपने नये घर में आये।

वनमाला का नया जीवन आरम्भ हुआ। पर्देदार औरतों को उसने अभी तक दूर से ही देखा था, लेकिन अब वही घुटन उठानी पड़ी तो तबियत दुरुस्त हो गयी। चौबीस घंटों में एक घण्टे को भी अच्छी तरह धूप नहीं मिल पाती थी। साफ हवा तो सपना हो गयी थी। साथ जो पड़ा था, वह भी विचित्र था। पड़ोसिनों में एक पुरोहित जी की प्रौढ़ा पत्नी थीं जिनके चौबीसों घंटे अपने चौके और घर की पवित्रता कायम रखने की फ़िक्र में बीतते थे और एक थी कहाँरिन जिसका पति कलिया-पराठे की दुकान किये था और रात को जब दुकान से लौटता तो सारा घर ठर्रे की बदबू से घर भर जाता। मकान की हालत यह थी कि सीलन और गंदगी से जो बदबू उठती रहती थी उसे जब कँहार को ठर्रे की बदबू दबा देती थी तो मस्तिष्क को कुछ आराम ही मिलता था।

गुज़र भी अम्बिका बाबू के लाये हुए १००) में ही करनी होती थी। वन-माला खुद भी घर से बाहर निकलकर खुद कुछ काम करने में डरती थी क्योंकि वह किसी हालत में प्रो० वर्मा और यमुना की आँखों के सामने नहीं पड़ना चाहती थी। फिर अम्बिका बाबू उसे आजादी से घूमने देने के लिए थोड़े ही मैनपुरी से लाये थे।

लेकिन इसके बावजूद वनमाला बहुत परेशान न थी। अगर कभी उसे पिछली बातें याद भी आती थीं तो वह उन पर हँस पड़तीं थी। उसने कुछ ही महीनों में अपने को नयी परिस्थितियों के लायक बना लिया। आश्चर्य की बात तो यह थी कि मैनपुरी की अपेक्षा इस गंदे बदबूदार घर में घुटघुटकर भी उसका चेहरा पहले से सुर्ख पड़ने लगा। चेहरे पर हल्की-हल्की दो एक झुर्रियाँ जरूर अब भी पीछा नहीं छोड़ती थीं, लेकिन वैसे उसके स्वास्थ्य को कोई क्षति नहीं पहुँची थी। फिर जब वह शाम को अम्बिका बाबू के आने के समय श्रृंगार करके बैठती तो क्रीम और पाउडर की तहों

में यह झुर्रियाँ कुछ ऐसी छिप जातीं कि बहुत गौर से देखने पर ही नज़र आती थीं।

दिन बड़े सुख से बीत रहे थे। वनमाला का सारा समय दो ही कामों में बीतता था। सुबह अम्बिका बाबू के दफ्तर चले जाने पर घर गृहस्थी के कामों में नियमित रूप से कई घंटे देती। इसका फल यह हुआ कि सौ रुपये की ही आमदनी में उसके घर का रहन-सहन काफी अच्छा हो गया। थोड़ा बहुत फर्नीचर भी आया, प्याले तश्तरियाँ, पर्दे, मेजपोश, घड़ी-पलंग वगैरा बढ़िया हो गये। खाने में स्वाद ही और आने लगा।

और अम्बिका बाबू के आने के बाद से रात को ग्यारह बजे तक तो वह छोटा सा कमरा स्वर्ग बन जाता। किसी रोज भी उसके शृंगार में कमी न होती थी। कोई दिन ऐसा न जाता जब उनके कमरे के दरवाजे पर पड़े पर्दे के पीछे से हँसी-मज़ाक की बातें नहीं सुरीले कहकहे और कुछ देर के लिए अम्बिका बाबू का लहराता स्वर न उठे। कभी-कभी सिनेमा भी देखा जाता।

लेकिन सौभाग्य की देवी की विशेषता अस्थिरता है। वनमाला की खुशी भी ज्यादा दिनों टिक न सकी। इस स्वाभाविक सुख और शांति से अम्बिका बाबू का मन शीघ्र ही भर गया। शराबी को दूध पर कब तक रखा जा सकता है। वे सदा ही एक शरीर से खेलने के हाबी न थे। दो ही चार महीनों में वनमाला का साथ उन्हें अखरने लगा।

अब वे इधर-उधर जाने लगे। नया शिकार न देखकर वे शारीरिक सुख को खरीदने लगे। आमदनी थोड़ी थी, चुनांचे घर का ढर्रा बिगड़ गया। तन-ख्वाह पहले वनमाला को दे दिया करते थे, अब अपने पास रखने लगे। वनमाला ने इसपर सवाल किया तो एक-आध बार तो रुपये की चोरी आदि का बहाना बनाया, लेकिन जब एक दिन वनमाला ने जोर देकर पूछा तो बिगड़कर कह दिया कि मेरा रुपया है, मैं जहाँ चाहूँगा खर्च करूँगा, तुम दखल देनेवाली कौन होती हो?

वनमाला उस दिन खूब रोयी। उसने सोचा कि मुझे न जाने कौन-कौन से अनुभव उठाने हैं। एक बार उसे यह भी ख्याल आया कि अम्बिका बाबू की सबके सामने चप्पलों से खूब मरम्मत करूँ और फिर कहीं का रास्ता पकड़ूँ, कहीं

न कहीं सर टिकाने को जगह मिल ही जायेगी, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे दहलीज़ से बाहर पैर रखने के ख्याल से ही डर मालूम होने लगा। उसने सोचा कि बाहर की दुनिया ही कौन भली है, इस समय किसी का सहारा तो है। जंगल का पंछी पिंजड़े की तीलियों का आश्रित होकर उड़ने की ताक़त खो बैठता है। वनमाला रो-धोकर चुप हो गयी। उसने नयी जिंदगी के भी साँचे में अपने को ढालने की कोशिश शुरू कर दी।

अम्बिका बाबू का प्रेम कम हुआ तो उन्होंने वनमाला के घर से बाहर जाने की भी बंदिशें कम कर दी थीं। कभी-कभी वनमाला को सौदा लेने भी जाना पड़ता था। आर्थिक कष्ट बढ़ा तो आमदनी बढ़ाने के लिए वनमाला ने हाथ-पैर मारना शुरू किया। उसने आस-पास के संभ्रांत परिवारों में मेल बढ़ा लिया और कढ़ाई बुनाई का कुछ ढंग डालकर कुछ आमदनी कर ली।

अम्बिका बाबू यह देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने वनमाला की समझदारी और योग्यता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मालूम होता था कि उनका प्रेम फिर बढ़ रहा है, लेकिन अम्बिका बाबू की खुशी सिर्फ इसलिए थी कि उन्हें अपनी आमदनी का अधिक भाग अब खर्च करने को मिलेगा।

कुछ दिन और बीते। एक दिन जनवरी के महीने में अम्बिका बाबू रात को चौक से पानी में भीगते आये। जेब इतनी खाली हो गयी थी कि रिक्शे के लिए भी पैसे न थे। नतीजा यह हुआ कि बीमार पड़ गये। बुख़ार के साथ सीने में ज़ोरों का दर्द था। पास के डाक्टर को बुलाया तो उन्होंने न्यूमोनिया बताया। वनमाला बिल्कुल घबरा गयी। अम्बिका बाबू तो जीवन से ही निराश हो गये। आधा महीना पड़ा था, रुपया सब फूँक चुके थे। घर का खर्च चलना ही मुश्किल था, न्यूमोनियाँ का इलाज कहाँ से होता?

लेकिन वनमाला ने हिम्मत न हारी। शुरू से ही उसे ज़ेवर का शौक़ नहीं था, इसलिए उसके पास ज़ेवर तो विशेष न था, हाँ आठ सोने की चूड़िया बक्स में ज़रूर पड़ी थीं। यह उसकी तीसवीं साल गिरह पर प्रो० वर्मा ने उपहार स्वरूप दी थीं। तलाक़ के बाद उसने इन्हें कभी न पहना था। इस अवसर पर वे काम आयीं।

चूड़ियों में वनमाला को तीन सौ रुपये मिल गये। अम्बिका बाबू का

अच्छी तरह इलाज हुआ। वनमाला ने उनकी सेवा-सुश्रूषा में दिन-रात एक कर दिये। अम्बिका बाबू को रह-रहकर पछतावा होता कि ऐसी देवी तुल्य महिला को उन्होंने क्यों कष्ट दिया, वे रो-रोकर वनमाला से अपने कुकृत्यों की माफ़ी माँगा करते और वह हँस-हँसकर उनके प्लास्टर चढ़ाया करती थी। राम-राम करके वे एक महीने में चारपाई से उठे।

कुछ दिन आराम करने के बाद दौड़-धूप करने पर उन्हें फिर एक नौकरी मिल गयी और सौभाग्य से पहले से अच्छी नौकरी मिली। अब वे राशनिंग-डिपार्टमेंट में क्लर्क हो गये। वनमाला ने भगवान को धन्यवाद दिया कि फिर अच्छे दिन आ गये। अम्बिका बाबू के रंग-ढंग भी दुरुस्त हो गये थे। उनके चेहरे पर गम्भीरता बढ़ गयी थी और उन्होंने अपनी पुरानी हरकतें छोड़ दी थीं।

दो महीने और बीते। एक दिन वे रात को नौ बजे आये तो उनकी आँखें चढ़ी हुई थीं। आते ही उन्होंने बहकी हँसी-हँसना शुरू किया। वनमाला को कभी शराबियों से वास्ता न पड़ा था, इसलिए पहले उसकी समझ में न आया कि यह ऐसा पागलपन क्यों कर रहे हैं, लेकिन जब उन्होंने नशे की झोंक में वनमाला के कान में कुछ कहना चाहा तो उसकी नाक में तेज़ बू बुरी तरह भर गयी और वह छिटककर दूर जा खड़ी हुई। उसने आँखें निकालकर कहा, "अब यह भी सीख गये हो? पहले ही कौन बड़ी अच्छी आदतें थीं कि यह बला भी पाल ली?

अम्बिका बाबू को गुस्सा आता तो वे गाली दे बैठे, "हरामज़ादी! जब देखो तब पढ़ाया करती है। पी है तो क्या तेरे बाप के पैसे से पी है?"

वनमाला की इस आशंका ने कि इनकी हरकतों से फिर मुसीबतें उठानी पड़ेंगी, दिमाग़ ख़राब कर दिया था। वह सोच ही न सकी कि इस शराबी के मुँह लगने में अपमान ही होगा। गाली सुनकर उसके तन-बदन में आग लग गयी। वह चिल्लाकर बोली, "चुप रह नीच! शर्म नहीं आती......।"

वनमाला भी अम्बिका बाबू का भरपूर तमाचा खाकर वह लड़खड़ाकर गिरी। अगर उसी समय पुरोहितानी न आ जातीं तो न मालूम वे नशे में उसे कितना मारते।

सुबह नशा उतरने पर उन्होंने वनमाला के पैरों पर गिरकर माफ़ी माँगी और फिर ऐसी बात न करने की कसम खायी। वनमाला की आँखों में आँसू भर आये। उसने अपने मन में कहा, 'तुम माफ़ करने लायक तो नहीं हो, न तुम यह हरकतें छोड़ोगे, लेकिन मैं मजबूर हूँ। मैं तुम्हें प्यार करना नहीं छोड़ सकती। मेरी तरफ़ से तुम्हें हमेशा माफी है।'

उसका सोचना ग़लत नहीं था। अम्बिका बाबू का साथ ही दफ्तर में ऐसे पियक्कड़ों का पड़ा था कि उनकी तौबा एक ही हफ्ते में टूट गयी। वे छिप-छिप कर पीने लगे। न मालूम क्यों वनमाला से अब वे डरने लगे थे, यद्यपि अब वह यह जानकर भी कि अम्बिका बाबू नशे में घर आते हैं, उनसे कुछ न कहती थी।

हर लत की तरह अम्बिका बाबू ने इस नयी लत को भी बड़ी तेज़ी से गले लगाया। नतीजा यह हुआ कि काफ़ी क़र्ज़ लेकर पी गये। वे लाख बातें बनाने वाले थे सही, लेकिन क़र्ज़ख्वाह लोग उनके दादा थे। उन्होंने उनकी गर्दन पकड़ना शुरू किया।

और एक दिन वे अपनी जेब के आठ आने से एक चुक्कड़ पीकर और ज्यादा की तलब में भड़भड़ाते हुए घर आये। किसी और से पैसा मिलने की उम्मीद नहीं थी, इसलिए वनमाला से ही कहा, "आज न मिली तो मर जाऊँगा। कुछ पैसे दो।"

वनमाला ने लाचारी दिखायी तो उन्होंने उसके हाथ की अँगूठी माँगी। यह अँगूठी वनमाला के पास माँ की एकमात्र यादगार थी। उसने किसी तरह भी देना मंजूर न किया।

काफ़ी खुशामद करने पर भी जब वह न मानी तो अम्बिका बाबू ने गुस्से में आकर उसे लात और घूँसों से खूब मारा। वह अर्द्ध-मूर्छित होकर गिर पड़ी तो उसकी उँगली से अँगूठी उतारकर अम्बिका बाबू शराब की दुकान की ओर लपके।

---

२७. गर्त में

वनमाला इस बार अधिक पिटी थी, परन्तु पिछली बार की तरह इस बार वह क्षोभ के कारण रात भर परेशान न रही। एक अजीब तरह की थकान उसके अंग-प्रत्यंग और मस्तिष्क के एक-एक तंतु में भर गयी थी। उससे कुछ सोचा ही न जाता था। अम्बिका बाबू के जाने के बाद वह बगैर खाना खाये ही सो गयी और सुबह अम्बिका बाबू को सोता छोड़कर पलंग से उठी और भारी मन लिए घर-गृहस्थी के नित्य कार्य में लग गयी। अम्बिका बाबू को भी इस बार पिछली मरतबा की तरह आत्मग्लानि न हुई। वे भी कुछ देर बाद उठकर अपने नित्य कार्य में लग गये।

यही नहीं। अब उनका हाथ ऐसा खुल गया कि उनके लिए मार-पीट रोज़ाना की बात हो गयी। वे मामूली से मामूली बात पर वनमाला को मार दिया करते थे। वह भी इसी तरह पिट लेती जैसे कि शुरू से ही इस व्यवहार की आदी रही हो।

कुछ ही दिनों बाद वनमाला को इस दुर्व्यवहार पर ध्यान देने की फुर्सत न रही क्योंकि दोनों को एक नये दुर्भाग्य ने दबोच लिया। अम्बिका बाबू एक दिन बहक में दफ्तर भी पीकर पहुँचे और किसी बात पर ए० आर० ओ० से झगड़ा ही नहीं कर बैठे, बल्कि उन्हें गाली भी दे बैठे। नतीजा यह हुआ कि फौरन 'सस्पेंड' कर दिये गये और नौकरी जाना निश्चित हो गया। इधर दस बारह दिन में ही रोटियों के लाले पड़ने लगे।

अम्बिका बाबू और राशनिंग डिपार्टमेंट दोनों के दुर्भाग्य से स्थानीय पत्रों के सम्वाददाताओं ने ए० आर० ओ० से उसकी गाली गलौज और उनकी मुअत्तली का समाचार प्रमुखता देकर छाप दिया। इससे एक ओर तो ए० आ० ओ० की किरकिरी हुई और दूसरी ओर इस घटना को सारे शहर का शिक्षित वर्ग जान गया। बेचारे अम्बिका बाबू जहाँ भी नौकरी के लिए जाते अपमान और व्यंगबाणों के अलावा कुछ न पाते।

अब उन्हें वनमाला पर क्रोध आने लगा कि इस कमबख्त के पीछे कहाँ की मुसीबत मोल ले ली। मैनपुरी में चैन की बंसी बजाते थे, न कोई काम न धंधा। दोनों वक्त भर पेट खाना और मौज से घूमना, न किसी के लेने में न देने में। यहाँ आकर मुसीबतें ही तो अपने सर ले लीं। उन्हें वनमाला की सूरत से नफ़रत होने लगी।

एक दिन शाम को खाना खाने बैठे तो थाली की रोटियाँ खत्म होने पर उन्होंने और रोटियाँ माँगीं। वनमाला टाल गयी। उन्होंने ज़ोर दिया तो वनमाला ने कह दिया कि अब कुछ नहीं है, जितना आटा था, उसकी सिर्फ इतनी ही रोटियाँ बन सकीं हैं।

अम्बिका बाबू का क्रोध भड़क उठा। उन्होंने डपटकर पूछा, "आटा नहीं था तो पहले से क्यों नहीं बताया। अब क्या भूखा भी मार डालना चाहती हो?"

वनमाला ने बड़ी करुणा और विवशता से उनकी ओर देखा। उसकी निगाहें कह रही थीं कि कहने से फ़ायदा हा क्या होता। तुम्हारे पास है ही क्या? अभी तक तो मैं ही किसी तरह जोड़-तोड़ लगाकर काम चला रही थी, आज मेरे प्रयत्न भी असफल हो गये। जब तक हो सकता था कोई कोशिश नहीं उठा रखी। अब क्या करूँ?

वनमाला की करुण दृष्टि में छिपे तिरस्कार भाव से अम्बिका बाबू तिलमिला उठे। उन्होंने कहा, "कैसे खत्म हो गया आटा। अभी कुछ ही दिन तो हुए कि एक बोरी गेहूँ लाया था। मुझी से बातें बनाने चली हो?"

"कैसी बातें करते हो," वनमाला ने आहत होकर कहा, "गेहूँ होता तो मैं कहाँ ले जाती। बोरी कब आयी थी, कुछ याद है? दो महीने हो गये।"

"झूठ बोलती हो। अभी एक भी महीना नहीं हुआ।"

वनमाला ने खीझकर कहा, "तो फिर कहाँ गये गेहूँ?"

"यह मैं क्या जानूँ! तुम्हीं तो सब अपने हाथ में रखती हो। क्या मालूम चोर-बाज़ार में बेच दिये हों या अपने यारों के घर डाल आयी हो।"

वनमाला अब न सह सकी। दिन-रात की चिंता और दिन भर की भूख ने (उसने आटा बचाने के ख्याल से सुबह भी खाना न खाया था) उसे पागल सा बना दिया और वह चिल्लाकर बोली, "तुम जैसा नीच दुनिया में कौन

होगा ? मैं तुम्हारे पीछे बिल्कुल बर्बाद हो गयी और तुम ऐसा कमीनापन दिखा रहे हो·······।"

"एं ! होश में आकर बात करो," अम्बिका बाबू कड़के, "बहुत बढ़ी जा रही हो।"

"अपनी तरफ़ देखो, मुझे बाद में सिखाना·······।"

"देखो कह रहा हूँ मेरे मुँह न लगो नहीं तो अच्छा न होगा।"

"क्या करोगे ? मार डालोगे ? मार ही डालो, इस रोज़-रोज़ की हाय-हाय से तो छुट्टी मिले," वनमाला आँसुओं से घुटे हुए स्वर में बोली। "मैं तो ज़रूर कहूँगी कि·····।"

अम्बिका बाबू के हृदय को इन आँसुओं ने पिघलाने की बजाय और सख्त कर दिया। उनके हृदय में दबी हुई सारी घृणा एकदम से उभर आयी। उन्होंने कहा, "अच्छा यही होगा। तुम्हें मार ही डालना पड़ेगा, तभी मुझे छुट्टी होगी।"

और उन्होंने सचमुच ही उठकर कमरे का दरवाजा बंद कर लिया। वनमाला थर्रा गयी, उसे पसीना छूटने लगा। उसने चिल्लाने की कोशिश की, लेकिन अम्बिका बाबू ने उसके हाथ बाँधने के साथ ही उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया और छड़ी लेकर उस पर पिल पड़े। चार छः चोटें खाकर ही भूख और दुःख की मारी वनमाला बेहोश हो गयी, लेकिन अम्बिका बाबू का हाथ तब तक न रुका जब तक छड़ी दो टुकड़े न हो गयी। इसके बाद भी उनके लात-घूँसे चलते रहे यहाँ तक कि वे थककर चूर हो गये।

फिर भी उन्हें नींद न आयी। क्रोध की आँधी उतरने पर उन्होंने सोचना शुरू किया कि इससे भी फायदा क्या होगा। यह सच बात है कि कई महीनों से काम वनमाला के ही सहारे चल रहा है, नहीं तो न मालूम क्या हालत होती ? फिर भी मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। क्या चुप-चाप कहीं चला जाऊँ ? यह तो असंभव है, दफ्तर वाले शायद मुक़दमा चलायें और वारंट निकलवा दें·····। अम्बिका बाबू काँप उठे।

उनके विचार भटकने लगे। अब वे स्थिर होकर किसी बात को सोच नहीं पा रहे थे। उन्होंने सोचा कि वनमाला अब भी मुझसे बहुत प्रेम करती

है, कमबख्त खुद भी मुझे छोड़कर कहीं नहीं चली जाती। आखिर मेरे पीछे क्यों पड़ी है......।

उन्होंने बेहोश पड़ी हुई वनमाला की ओर देखा। 'कमबख्त अब भी कैसी खूबसूरत है ! लेकिन मैं इसकी खूबसूरती को लेकर चाटूँ। मुझे तो रुपये की ज़रूरत है......।'

यकायक उन्हें रुलाई छूटने लगी। वे सोचने लगे कि मैंने इसे कितना दुःख दिया। इसकी अच्छी-खासी नौकरी छुड़ा दी। इस बेचारी ने मेरी हर बात मानी। लखनऊ आने की इसकी बिल्कुल इच्छा न थी, लेकिन मेरी ज़िद पर आ गयी। यहाँ आकर मेरी ज़िंदगी भी सुधार दी, लेकिन दुर्भाग्य तो मेरे पीछे पड़ा था, यह क्या करती ?'

वे वनमाला के पास बैठकर उसके शरीर पर हाथ फेरने लगे। 'कैसा मक्खन जैसा बदन है। किसी अमीर के घर ब्याही होती तो इसकी क़द्र होती। मेरे पास तो सिवाय डंडे खाने के और इसके भाग्य में क्या है ? मैंने इसके लिए क्या किया है, कर ही क्या सकता हूँ। अगर पैसा होता तो मैं भी अपना दिल दिखाता। इस फूल के लिए कौन अपनी दौलत लुटाने को तय्यार न हो जायगा !'

यकायक अम्बिका बाबू चौंक पड़े। वनमाला की मूर्छा कुछ खुली। उसने कराहते हुए पानी माँगा। अम्बिका बाबू ने उसे पानी दिया और फिर उठाकर पलंग पर लिटा दिया। कपड़े उलटकर देखा तो पीठ में नीले निशान पड़े थे। वे तेल लेकर वनमाला के पीड़ित अंगों की हल्के हाथ से मालिश करने लगे।

वनमाला ने आँखों में आँसू भर कर कहा, "अब सो जाओ। बहुत रात हो गयी है।"

लेकिन वे इसके बाद भी एक घंटे तक मालिश करते रहे और सोचते रहे। वनमाला को आराम मिला तो वह सो गयी। अम्बिका बाबू भी जब सोये तो उनका जी हलका था।

सुबह खोज करने पर उन्हें अपने जाड़े के कपड़ों में एक पाँच रुपये

का नोट मिल गया। न जाने वह कैसे छूट गया था। लेकिन इस समय उसी ने सहारा दिया।

× × × ×

दो दिन में अम्बिका बाबू की परिचर्या और प्रेम-मय व्यवहार से वनमाला की तबियत बिलकुल ठीक हो गयी तो तीसरे दिन उन्होंने उसे बिठाकर बातें करना शुरू किया।

कुछ देर इधर-उधर की बात करने के बाद फिर वही आर्थिक अभाव की बात आ पड़ी। अम्बिका बाबू ने कहा, "क्या करें ? कुछ रास्ता ही नहीं सूझ रहा है।"

वनमाला एक ठंडी साँस भर कर रह गयी। यही गुत्थी तो वह नहीं सुलझा पा रही थी।

अम्बिका बाबू ने कहा, "मैंने तुम्हें बहुत दुःख दिया, तुम्हारे त्याग और सेवा का बदला हमेशा तुम्हें तकलीफ़ पहुँचा कर और अपमानित करके दिया......।"

वनमाला बोली, "छोड़ो उन बातों को। जो हो गया सो हो गया।"

अम्बिका बाबू बोले, "वही तो मैं भी कहता हूँ। मैं चाहे कितना ही पछतावा करूँ और तुम चाहे कितनी ही बार माफ़ करो, मुश्किल तो इससे हल नहीं होती है। रुपये-पैसे की दिक्कत ने मेरा तो दिमाग़ ख़राब कर रखा है। इसीलिए मुझे परेशानी होती है तो बग़ैर कुछ सोचे-समझे तुम्हीं पर ग़ुस्सा उतारने लगता हूँ। आयंदा भी ऐसा न होगा इसका कौन ठिकाना। कुछ न कुछ इन्तज़ाम तो करना ही पड़ेगा।"

वनमाला ने कहा, "मैं तो दिन-रात सोचती रहती हूँ, लेकिन कुछ समझ में नही आता।'

"मैंने एक बात सोची है। लेकिन तुम्हारी पूरी मदद के बग़ैर वह तरकीब नहीं चल सकती। तुम्हारे लिए कुछ मुश्किल नहीं है। लेकिन मंजूर करो तब है।"

वनमाला ने हैरान होकर उनकी ओर देखा और बोला, "तुम मजाक

करते हो ? मैं दिन-रात सोच के मारे घुली जा रही हूँ और तुम कहते हो कि मंजूर करो तब है। भला वैसे भी तुम्हारी खुशी के लिए मैंने क्या मंजूर नहीं किया है। अब क्यों न करूँगी ?"

फिर भी अम्बिका बाबू ने जो कुछ कहा उसे सुनकर वह तड़पकर खड़ी हो गयी और लाल-लाल आँखें करके बोली, "यह कभी नहीं हो सकता। तुम्हें शर्म नहीं आती ऐसी बात कहते। तुम्हारी हिम्मत ही कैसे हुई मुझसे यह कहने की।"

अम्बिका बाबू ने समझाने की कोशिश की। आपत्तिकाल में कुछ भी करना बुरा नहीं है, लेकिन वनमाला बिगड़ती ही गयी। उसने कहा कि मैं मज़दूरी करके पेट पाल लूँगी लेकिन ऐसी बात सुनना पसन्द नहीं करती। अन्त में अम्बिका बाबू ने बिगड़कर कहा, "ऐसी ही सती थीं तो मेरे साथ क्यों भागकर आयीं। किसी से ढङ्ग से शादी क्यों न कर ली ? मैं तुम्हारे सतीत्व को लेकर चाटूँगा। मेहनत-मज़दूरी मेरे बस का काम नहीं है। समझ से काम लो।"

वनमाला ने कातर दृष्टि से देखकर कहा, "तुम मेरे गले पर छुरी फेर दो, लेकिन भगवान के लिए ऐसी बातें न करो।" यह कहकर वनमाला बाहर चली गयी।

अम्बिका बाबू धीरे-धीरे उठकर घर से चले गये। उनकी भाव-भंगिमा से ऐसा लगता था कि उन्होंने अपनी योजना ख़त्म कर दी है और वे कुछ और सोच रहे हैं।

वनमाला ने आराम की साँस ली। उसे कुछ देर को ऐसा मालूम हुआ कि सारी मुसीबतें दूर हो गयी हैं। तीसरा पहर हो गया था। लू के थपेड़े चल रहे थे, लेकिन उसे इस समय वसंत का-सा सुख हो रहा था। उसने खाना बनाया और शाम होने पर नहा-धोकर चोटी बिंदी करके अम्बिका बाबू का इंतजार करने लगी। रात के आठ बजे अम्बिका बाबू आये। उनके साथ उनके एक 'दोस्त' भी थे। वनमाला ने खुद भूखे रहकर भी मेहमानदारी खुशी से मंज़ूर की। खाना खाने के बाद दोनों दोस्त कुछ देर छत पर टहल कर बातें करते रहे।

फिर अम्बिका बाबू ने आकर चुपके से कुछ कहा। वनमाला फिर बिगड़ने को हुई, लेकिन अम्बिका बाबू ने नया खरीदा चमचमाता छुरा निकाल लिया और बोले, "बकबक न करो। पूरे पचास रुपये का सवाल है। मना किया तो अभी तड़पती दिखायी दोगी।"

छुरा देखकर वनमाला की घिग्घी बँध गयी।

२८. अबला की शक्ति

अम्बिका बाबू को एक मुश्त पचास रुपये ज़रूर मिल गये, लेकिन उन्होंने इसकी बड़ी गहरी क़ीमत चुकायी।

अब उन्हें वनमाला की सूरत देखने से डर लगता था। वे जब भी उससे कुछ बातें करना चाहते, वह उन्हें कुछ इस तरह देखती कि उनका दिल काँप जाता। वे उसे तरह-तरह से खुश करने की कोशिश करते। उसके घर के कामों में भी हाथ बँटाने की कोशिश करते। वनमाला भी कभी उनसे कोई कड़ी बात न कहती, लेकिन जब भी दोनों की निगाहें मिलतीं तो लम्बे-चौड़े बलिष्ट अम्बिका बाबू की हड्डी तक काँप जाती। वनमाला की आँखों में जैसे मौत के राक्षसी पंजे दिखायी देते। यह मौत भी श्मशान जैसी नीरव, निष्क्रिय भयानकता लिए न होती, बल्कि जहरीली जलन, जिंदा भूने जानेवाले शिकार की तड़प और रक्त-पिपासु दैत्यों की बेकरार झपट जैसी महाभयंकर दुर्दमनीय सक्रिय नृशंसता लिए होती।

अम्बिका बाबू अक्सर सोचा करते कि मैं क्यों इससे इतना डरता हूँ? आखिरकार है तो वह एक मामूली औरत ही। मेरा कर क्या सकती है? जब चाहूँ उसकी गर्दन मरोड़ सकता हूँ। अब मैं उससे बिल्कुल नहीं डरूँगा। लेकिन उसी समय जैसे उनके दिल के कोने से एक विद्रूप भरी हँसी की आवाज़ सुनायी देती थी और वे थर्रा उठते। फिर किसी प्रकार अपने को विश्वास दिलाते कि यह सिर्फ मेरी ही कमज़ोरी है।

वे तय करते कि अब मैं घर जाऊँगा तो उससे अकारण ही डाँट-डपट करूँगा ताकि उसे भी मालूम हो जाय कि मैं उससे डरता बिल्कुल नहीं हूँ, बल्कि उस पर अब भी शासन कर सकता हूँ और जिस प्रकार भी चाहूँगा उसे अपने फायदे के काम में लाऊँगा। एक बार इसी प्रकार वे नाना प्रकार की योजनाएँ बनाते घर पहुँचे और जाते ही डपटकर बोले, "ए! पानी दो एक ग्लास।"

वनमाला का मुँह दूसरी ओर था। उसी ओर मुँह किये हुए ही एक सेकिंड के चौथाई भाग के लिए उसके होठों के कोनों पर मुसकान की अस्पष्ट-सी रेखा झलककर गायब हो गयी। अम्बिका बाबू यदि उस मुसकान को देख पाते तो हथियार डाल देते। लेकिन वनमाला उधर ही मुँह किये अपना काम करती रही। वे अपनी योजनानुसार चिल्लाकर बोले, "सुनती नहीं ? बहरी हो क्या ?"

वनमाला चुपचाप पानी ले आयी। अम्बिका बाबू ने बिगड़कर कहा, "देखो जी ! तुम्हारे रंग-ढंग अजीब होते जा रहे हैं। मैं जो कुछ कहता हूँ उसे सुनती ही नहीं। किस अकड़ में रहती हो ? मुझे नहीं जानतीं कितना बुरा आदमी हूँ। मुझसे बिगाड़ करके पछताओगी। चुटकियों में मसलकर रख दूँगा। समझ गयीं ?"

अंतिम शब्द उन्होंने कुछ और भी ज़ोर देकर कहे। वनमाला जैसे सोते से जागी। अभी तक वह सामने की ही ओर देख रही थी, लेकिन जैसे किसी दूसरी ही दुनिया में थी। अंतिम शब्द सुनकर उसने चौंककर अम्बिका बाबू की ओर देखा और बोली, "क्या कहा ? मैंने सुना नहीं"

एक बार फिर अम्बिका बाबू की सिट्टी-पिट्टी भूल गयी। फिर उन्हें वनमाला की आँखों के झरोखों से सैकड़ों दैत्य जबड़े फाड़े और पंजे फैलाये दिखायी दिये। उनकी अकड़ कर बात करने और बलपूर्वक वनमाला को अपने वश में करने की सारी योजनाएँ दिमाग़ से बिल्कुल उड़ गयीं। किसी तीसरे आदमी को उस समय वनमाला के स्वर में सहज गांभीर्य के अतिरिक्त और किसी भाव का पता न चलता। लेकिन वही लहजा और यह मामूली सवाल अम्बिका बाबू को ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी अदालत ने उन्हें फाँसी का हुक्म सुना दिया हो। उनके माथे से पसीना टपटप करके चूने लगा।

वनमाला फिर बोली, "क्या कह रहे थे ?"

"कुछ नहीं," अम्बिका बाबू हकलाते हुए से बोले, "मैं पूछ रहा था कि··· कि···तुम्हारी······ तुम्हारी तबियत कुछ ठीक नहीं मालूम होती है। कुछ ······ परेशान·· उदास दिखायी देती हो। तबियत न ठीक हो तो डाक्टर को दिखाया जाय। ऐसे तो रहना ठीक नहीं···।"

बात काटकर वनमाला बोली, "मैं बिल्कुल ठीक हूँ। मेरी फ़िक्र करने की तुम्हें बिल्कुल ज़रूरत नहीं है।"

यह कहकर वह बगलवाली रसोई की कोठरी में चली गयी। अम्बिका बाबू का साँवला चेहरा बिल्कुल काला पड़ गया। उनके चारों ओर की हवा भारी हो गयी। एक नामहीन, अर्थहीन भय उनका गला दबोचने लगा जैसे उन्हें फाँसी की कोठरी में बन्द कर दिया गया हो।

× × × ×

वनमाला के शरीर-क्रय की घटना को दस दिन बीत गये थे, लेकिन इस अर्से में उसकी हालत एक सी बनी रही। उसकी विचारशक्ति ने बिल्कुल जवाब दे दिया था। रोज़ाना का काम वह मशीन की तरह कर लेती थी। यहाँ कि उसका खाना और सोना भी यन्त्रवत होता था। उससे अगर कभी कोई पूछता कि तुमने खाना खाया है या नहीं तो शायद ठीक तौर पर न बता पाती।

उसके दिमाग में वैसी आँधी नहीं चल रही थी जैसी क्रोध आने पर चला करती थी। क्रोध आने पर तो चारों ओर से हमला करनेवाले कीड़ों के डंकों की तरह उसके मस्तिष्क में क्रोध की बात ही न थी। साँय-साँय ज़रूर हुआ करती थी, लेकिन दूर पर आनेवाली आँधी की—जिसके झटके लगने के पहले हवा बिल्कुल रुक जाती है—अस्पष्ट, लेकिन लगातार ध्वनि की तरह उसे किसी प्रकार के कष्ट और दुख का अनुभव न होता था। सुख और संतोष भी उसकी पहुँच के बाहर की चीज़ें हो गयी थीं।

अम्बिका बाबू को दफ्तरवालों ने यह खुशखबरी दी कि ए० आर० ओ०-साहब की बदली हो गयी है और टी० आर० ओ० उनसे नाराज़ थे। इसलिए उन्होंने ए० आर० ओ० की बेइज्ज़ती करनेवाले के खिलाफ़ जाँच वगैरह करने की बात खत्म कर दी है। हाँ, बर्खास्तगी ज़रूर हो गयी है।

अम्बिकाबाबू को इसी से बहुत सहारा मिला। अब कम से कम यह तो आशंका नहीं थी कि अदालत में मुल्ज़िम बनकर जाना पड़े और वहाँ से कैद की सज़ा सुना दी जाय। उन्होंने वनमाला से यह बात न बतायी क्योंकि वे उसे एकदम से विस्मित करनेवाले समाचार देना चाहते थे। इसलिए चार-पाँच दिन

गहरी दौड़ धूप करके उन्होंने बढ़ती हुई बेकारी के बावजूद एक कोआपरेटिव स्टोर में नौकरी कर ली। यहाँ वेतन बहुत ही कम था, लेकिन कुछ सहारा तो था ही। साथ ही यह भी उम्मीद थी कि फिर जुलाई में ट्यूशन आदि का डौल हो जायगा। साथ ही असफलता की पूरी संभावना होने पर भी यह आशा कभी-कभी उनके हृदय में झाँक ही जाती थी कि कुछ दिनों में वनमाला स्वस्थ हो जायगी तो उसे समझा-बुझाकर फिर नये तरीक़े से रुपया पैदा करने को तय्यार कर ही लिया जायगा। फिर तो चैन की वंशी बजेगी।

लेकिन घर आकर उनकी सब आशा धूल में मिल गयी। वे घर आते समय वनमाला को भेंट करने के लिए एक रंगीन धोती भी लेते आये थे। नियमित आय की व्यवस्था और गहने-कपड़े की प्रचुरता ही स्त्रियों को प्रसन्न करने के अमोघ अस्त्र समझे जाते हैं। इन्हीं का सहारा अम्बिका बाबू ने लिया। लेकिन वनमाला ने उनकी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। उसने राशनिंग विभाग की जाँच छूटने और नयी नौकरी लगने की बात बग़ैर पलक झपकाये सुनी। उसके चेहरे की भाव-शून्यता और कठोरता जरा भी कम न हुई, आँखों में जरा भी चमक न आयी, चेहरे की सफेदी पर लाली की एक रेखा तक न उभरी। धोती को लेना तो दरकिनार, उसने छुआ या देखा तक नहीं। बिल्कुल गुमसुम रही।

अम्बिका बाबू अबकी बुरी तरह घबरा गये। उन्होंने कहा, "ललिता...।"

वनमाला ने उसी तरह शून्य में देखते हुए बुझे स्वर में कहा, "खाना खाओगे या नहीं?"

अम्बिका बाबू जंजीरों में जकड़े कैदी की तरह चौके में बैठ गये और बड़ी मुश्किल से रोटियों के कौर गले के नीचे उतारने लगे।

इसके बाद से उन्होंने वनमाला को राह पर लाने या उसे खुश करने की कोशिश छोड़ दी। सुबह जल्दी ही घर से निकल जाते, दोपहर का खाना स्टोर के नौकर से मँगवा लेते और रात को इतनी देर से घर आते कि वनमाला सो जाती। उस समय वे धीरे से दरवाजा खोलते ताकि कहीं खुली छत पर सोती हुई वनमाला जाग न जाय। अधिकतर वह न जाग पाती और वे दिन भर की भूख और थकान से चूर होने के कारण जो कुछ भी मिलता खूब डटकर

पेट में डालते और वनमाला से काफी दूर चारपाई डालकर दूसरी ओर करवट लेकर सोने की कोशिश करते तो कुछ देर में सो भी जाते थे।

हर रोज़ की देर के लिए उनके पास बहाने मौजूद रहते। अगर बर्तनों की खटपट से वनमाला की आँख खुल जाती तो वह आवाज़ देती, "कौन है ?"

अम्बिका बाबू डरे हुए स्वर में कहते, "मैं हूँ।" वनमाला फिर कुछ न बोलती, लेकिन अम्बिका बाबू के लिए खाना मुश्किल हो जाता। वे जल्दी ही बाहर आकर बगैर पूछे हुए अपने पहले से सोचे बहाने बताने लग जाते। वनमाला बगैर कुछ कहे हुए दूसरी ओर मुँह फेर लेती।

सबसे ज्यादा मुसीबत छुट्टी के दिन होती थी। उस दिन अम्बिका बाबू कोई बहाना भी न बना पाते थे। दिन भर कोई उटपटाँग किताब लिए अपने पलंग पर पड़े रहते थे। सारा दिन वनमाला की ठंडा ज़हर बरसाती हुई निगाहों और भयंकर उन्मत्त चीखों को मात कर देनेवाली खामोशी के सामने रहकर उनकी लगभग वही दशा होती जो कसाईखाने के दरवाज़े पर बँधे, प्रति-क्षण मृत्यु की आशंका से त्रस्त, कसाई की छुरियों की खटाखट की हाहाकारी ध्वनि को सुनते हुए बकरे की होती है। बकरे को फिर भी में-में करने से कोई नहीं रोकता, लेकिन वनमाला की खामोशी अम्बिका बाबू की आहों का भी गला घोटकर उन्हें खत्म कर चुकी थी।

अम्बिका बाबू सोचते, काश यह मुझसे झगड़ा करती, बुरा भला कहती, गालियाँ देती, तो कितना अच्छा रहता। यह खामोशी तो मुझे मार ही डालेगी।

सपने में भी उन्हें वनमाला की भाव-शून्य दृष्टि चैन न लेने देती थी।

कुछ दिन इसी जानलेवा परेशानी में बिताकर उन्होंने निश्चय किया कि चुपचाप भाग चलो। दो-एक दिन तक सोच-विचार करने के बाद उन्होंने यही किया। रात को दस बजे घर लौटने पर उन्होंने खाना नहीं खाया, बल्कि अपने दो-चार कपड़े और सफ़र का ज़रूरी सामान बाँधा। चुपचाप बैग लेकर बाहर आये। एक बार वनमाला के पलंग से कुछ दूर खड़े होकर धीरे से आवाज़ दी, "ललिता !" और यह यक़ीन हो जाने पर कि वह गहरी नींद सो रही

है, चुपचाप जीने से उतर कर भागते हुए सड़क पर जा निकले और स्टेशन जाते हुए एक रिक्शे पर उचककर बैठ गये।

लगभग पन्द्रह मिनट बाद वनमाला की आँख खुली। उसने शायद कोई स्वप्न देखा था। न मालूम वह क्यों फिर सोने की बजाय कमरे में आ गयी। उसकी साँस तेज़ चलने लगीं थी। और नस-नस में न जाने कहाँ की फ़ुर्ती आ गयी थी। कमरे में उसने चारों ओर नज़र दौड़ायी। अम्बिका बाबू ने होशियारी की थी कि अपने जाने का कोई चिन्ह नहीं छोड़ गये थे। फिर भी जैसे वनमाला के कानों में कोई चीखे जा रहा था, "दौड़ो,......जल्दी करो ...... निकला...... ।"

वनमाला ने तुरन्त कपड़े पहने और स्टेशन की ओर भागी। कानपुर जानेवाली आखिरी गाड़ी लगी थी। उसके छूटने में आध घंटे की देर थी। एक डिब्बे में अम्बिका बाबू इत्मीनान से सिगरेट पीते हुए सोच रहे थे कि अब छुटकारा मिला, अब आराम से खुली हवा में साँस तो ले सकूँगा। बाहर प्लेटफार्म पर पानवाले की आवाज़ सुनकर उन्होंने उसे आवाज़ देने के लिए मुँह फेरा ही था कि वनमाला की मशाल की तरह जलती हुई दो आँखें दिखाई दीं। उनके होश गुम हो गये और जब उसने इशारा किया तो मन्त्र-मुग्ध की भाँति उतर आये।

घर आकर उन्होंने अपनी स्थिति वनमाला को बतानी चाही, लेकिन उसने खुद ही हँसकर कहा, "मुझसे छुटकारा पाना चाहते थे। ऐसी जल्दी क्या है ! एक दिन तो रुक जाओ।" अम्बिका बाबू घबराहट में कुछ सुन ही न सके।

कुछ देर में उन्हें नींद आ गयी. जैसे उनकी इन्द्रियों की सारी शक्ति किसी ने खींच ली हो। वनमाला कई घण्टे तक टहलती रही।

अम्बिका बाबू को दूसरे दिन बड़ा तेज़ बुखार चढ़ आया। यह ऐसा ही बुखार था जैसा कि भूत आदि से डर जाने पर लोगों को चढ़ा करता है। उस दिन रविवार था। वनमाला उन्हें घर में छोड़कर दवा लेने गयी, लेकिन वह कम से कम दस दवाखानों में घूमकर दवा लायी।

वनमाला लौटी तो अम्बिका बाबू की बेहोशी कुछ देर के लिये टूट गयी थी।

वनमाला ने सत्रह-अठारह गुलाबी टिकियाँ और एक ग्लास पानी देकर प्यार भरे स्वर में कहा, "लो दवा लो।"

वनमाला की आँखें हँस रही थीं, गाल दमक रहे थे। अम्बिका बाबू की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उन्होंने दो-दो चार-चार करके टिकियाँ पानी से उतार लीं। फिर वे थककर लद से पलंग पर गिर पड़े।

वनमाला ने उनके सर पर हाथ फेरते हुए कहा, "अब तुम्हारे सारे दुख-दर्द दूर हो जाएँगे। सो जाओ आराम से।"

अम्बिकाबाबू की आँखें झपक गयीं। वनमाला ने झपटकर उनके गले में बाहें डाल दीं। और उनके मुखपर चुम्बनों की वर्षा कर दी।

———

२६. पटाक्षेप

अम्बिका बाबू को प्राण-घातक मात्रा में 'स्लीपिंग टेबलेट्स' देने के समय वनमाला ने घड़ी की ओर न देखा था। अब उसके लिए देश काल का कोई मूल्य न रखता था। फिर भी उस समय साढ़े तीन बजे थे और लखनऊ की बादलों की छाँह और ठंडी पुरवय्या में छुट्टी का आनंद लेने के लिए सड़कों पर निकल रही थी।

वनमाला के सर से जैसे बड़ा भारी बोझ उतर गया था। उसे ऐसा मालूम होता था कि उसने अपना महान कर्त्तव्य पूरा कर लिया है। जैसे यकायक सारा काम खत्म हो जाने पर आदमी को निष्क्रियता की विचित्र उलझन होने लगती है वैसे ही वनमाला के अंदर-बाहर चारों ओर महाशून्य भाँय-भाँय करके मँडराने लगा।

उसे इस समय कोई खुशी न थी। उसके दिल में कोई बदला लेने की भावना तो थी नहीं कि बदला पूरा हो जाने पर उसे खुशी होती। वह अम्बिका बाबू को दिल से प्यार करती थी—औरत का सच्चा प्यार उसने अम्बिका बाबू को ही दिया था। प्रोफेसर वर्मा के साथ तो वह जबतक रही उसका सारा समय अपने व्यक्तित्व और महत्व को बढ़ाने या अपनी अहमन्यता की रक्षा करने में लगा। डाक्टर कुरेशी के प्रति भी उसे जो आकर्षण था वह शायद प्रेम कहे जाने के योग्य न था। वह तो मौत से घिरे हुए इंसान की जिंदगी से और जिंदगी की खुशियों से चिमट जाने की कोशिश भर थी। वास्तव में सहज और पूर्ण प्रेम उसे इसी आवारा और बदचलन आदमी ने दिया था जिसकी साँसें वनमाला की आँखों के सामने ही हल्की पड़ती जा रही थीं। वह उसकी सारी आवारगियों और बदतमीज़ियों को प्यार करनेवाली औरत की तरह हँसी-खुशी से बर्दाश्त कर रही थी। उसके नशे में धुत हाथों की मार खाते समय भी उसके दिल में यह ख्याल कभी न आया कि मैं मानसिक रूप से उससे कहीं अधिक बड़ी हूँ और उसे इस दुष्कृत्य की सज़ा मिलनी चाहिए। नहीं, उसने तो ऐसे अवसरों पर यह

भी नहीं सोचा था कि मैं उससे छुटकारा पा लूँ। अगर वह साफ़-साफ़ कह देती कि मैं तुम्हारे पास नहीं रह सकती तो अम्बिका बाबू की हिम्मत उसे रोकने की नहीं थी, यह वह अच्छी तरह जानती थी। वह यह भी जानती थी कि अम्बिका बाबू के साथ उसे जितनी दिक़्क़तें उठानी पड़ती हैं उतनी अकेले रहने में नहीं उठानी पड़ेंगी। अगर वह किसी संभ्रांत परिवार में बच्चों की गवर्नेस भी हो जायेगी तो भी यहाँ से अधिक सुखकर जीवन रहेगा, लेकिन ऐसी हालत में अम्बिका-बाबू का साथ तो नहीं रहता और अब वनमाला एक क्षण के लिए भी उनसे बिछुड़ने की कल्पना नहीं कर पाती थी।

हाँ, जब उन्होंने उसके प्रेम को पैसों के मोल बेच दिया था तब उसे बहुत ही गहरा धक्का लगा था। वनमाला के हृदय में अम्बिका बाबू के प्रति जितने पवित्र प्रेम की भावना थी, उतनी प्रोफेसर साहब के साथ पहने पर भी न हुई थी। उनके साथ के इन दो वर्षों में उसकी आत्मा ने जिस अवर्णनीय आनंद का अनुभव किया था वह वनमाला को अपने तेंतालीस वर्ष के जीवन में कभी नसीब न हुआ था। ऐसी ऊँची चीज को जब पचास रुपये में बेच दिया गया तो वनमाला जैसे आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ी थी। अम्बिका बाबू के प्रति अब भी उसके हृदय में प्रेम था, लेकिन अब वह आनंद के आकाश में उड़ानें नहीं भर रहा था, बल्कि पर कटे पक्षी की भाँति ज़मीन में अपने खून से सनी मिट्टी में तड़फड़ा रहा था।

फिर जब अम्बिका बाबू ने जान बचाने की कोशिश की तो वनमाला की आत्मा ने अपने सम्पूर्ण जीवन की संचित राशि के लुटेरे का भागना बर्दाश्त न किया, उसे अपने ही तक बाँधकर रखना चाहा, जीवित या मृत किसी भी दशा में। आत्मा का तर्क हृदय और मस्तिष्क दोनों के तर्क से भिन्न होता है। इसलिए अब वनमाला ने अम्बिकाबाबू की हत्या करके यही किया था।

वनमाला इस समय इन बातों को सोच नहीं रही थी। चाहती तब भी सोच न पाती। जब आत्मा की पुकार स्पष्ट होकर मनुष्य के कार्य-कलापों को संचालित करने लगती है तो हृदय और मस्तिष्क दोनों अपना संचालन कार्य बंद करके निष्पक्ष दर्शक की भाँति तमाशा देखने लगते हैं। वनमाला इस समय इसी स्थिति में थी।

कुछ देर तक अम्बिका बाबू के पलंग के पास बैठी रहने के बाद वह उठी और बगैर कुछ सोचे समझे बाहर चल दी। सड़क पर पहुँची तो उसे जैसे कुछ याद आ गया। वह लौटी और कमरा बन्द करके बाहर से मजबूत ताला जड़ दिया। वह नहीं चाहती थी कि इस बार अम्बिका बाबू अपनी कोशिश से या किसी दूसरे की सहायता से भाग सकें।

सड़क पर आयी तो भी उसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह किसी की हत्या करके आयी है। वह निरपेक्ष भाव से बगैर किसी उद्देश्य के धीरे-धीरे बढ़ी जा रही था। पुलिस या गिरफ्तारी का उसे ख्याल भी नहीं था। उसने तो अपनी समझ में अपराध किया भी नहीं था। उसने जो कुछ किया था, वह उसे हत्या भी नहीं समझती थी। उसने तो अपने प्रेमी को अपने तक ही सीमित रखने, अपने से बाँध रखने की कोशिश की थी जिसमें वह जीवन में पहली बार सफल हुई थी। इसलिए उसे इस समय वही सन्तोष था जो किसी गहन समस्या को सुलझा लेने के बाद होता है और इसीलिए वह खरामाँ-खरामाँ बढ़ी जा रही थी।

मौसम बड़ा अच्छा हो रहा था। बहुत-से लोग घूमने निकले थे। वनमाला को किसी ने इस जनसमूह में लक्ष्य न किया। वह अमीनाबाद से धीरे-धीरे बढ़ती हुई कैसर बाग़ तक पहुँची और वहाँ से लालबाग़ होते हुए हज़रतगंज़ की ओर बढ़ी। लेकिन रास्ते में ही उसे एक धक्का लगा और वह फिर इस दुनिया में आ गयी।

रास्ते में सड़क पर चलते समय उसे वही मकान दिखायी दिया जहाँ पर अपने तूफ़ानी जीवन के प्रारम्भिक वर्ष उसने अपनी माँ के साथ गुज़ारे थे। एकबारगी बड़ी तेज़ी से बचपन की सारी स्मृतियाँ स्पष्ट होकर उसकी आँखों के आगे नाचने लगीं। स्कूल और कालेज में वह सबसे अधिक स्वस्थ और सुंदर ही नहीं, सबसे अधिक प्रतिभा-सम्पन्न भी समझी जाती थी। पढ़ाई के अलावा खेल-कूद और दूसरी दिलचस्पियों में भी वह सबसे आगे रहती, डिबेट में हमेशा प्रथम पारितोषिक प्राप्त करती, ड्रामों की आर्गेनाइज़र वही होती, गर्ल्स गाइड्स की टोली तो उसके बगैर सूनी ही रहती। यूनिवर्सिटी में लड़के तक उसका लोहा मानते।

उसे अपनी माँ की याद आयी जो माँ की ममता, अध्यापक का पथ प्रदर्शन और सैनिक अधिकारी का अनुशासन एक साथ ही अपने हृदय में लिये रहती थी और जिन्होंने अपने व्यक्तित्व के बल पर वनमाला को तबतक सीधे तराशे-खराशे रास्तों पर चलाया जब तक कि स्वयं उसका व्यक्तित्व माँ के व्यक्तित्व से भारी न पड़ गया।

वनमाला धीरे-धीरे बढ़ती हुई हज़रतगंज पहुँची। बाज़ार बन्द था, लेकिन सिनेमा हाउसों और काफ़ी हाउसों के सामने काफ़ी भीड़ थी। सिनेमाघरों को देखकर उसे वे सब चलचित्र याद आ गये जिन्हें उसने प्रो० वर्मा के साथ और शादी होने के पहले देखा था। काफ़ी-हाउसों ने उसके हृदय में पुराने ज़माने की बौद्धिक तर्क-वितर्क से भरी 'अरिस्टोक्रेट' शामों की याद ताज़ा कर दी।

बाज़ार बंद था लेकिन दुकानों पर साइनबोर्ड तो थे। इस ठाकुरदास की दुकान से खरीदी गयीं कितनी साड़ियों ने उसके शरीर की शोभा बढ़ायी थी। यह 'प्रावीज़न' की दुकान है, जिसके न जाने कितने 'जेली' और 'जेम' उसने चखे थे। यह विशाल पुस्तक भंडार है, जहाँ वह बीसियों बार प्रोफेसर साहब के साथ उनकी तीव्र बौद्धिक बुभुक्षा के शमनार्थ आयी थी। वह इन दुकानों को स्वप्न की तरह देखती आगे बढ़ी जा रही थी।

रिक्शेवाले उसे आवाजें देते, लेकिन वह उनकी बात सुन ही नहीं पा रही थी। वह तो बस स्वप्न की-सी अवस्था में निरुद्देश्य चली जा रही था। धीरे-धीरे उसके पैर पश्चिम की ओर बढ़ने लगे।

यह 'मंकी ब्रिज' है। यहाँ से वह स्थान स्पष्ट दिखायी देता है जहाँ बोटिंग-क्लब की नावें बरसात शुरू होने की वजह से बाँध दी गयी हैं। न जाने वह कितनी बार प्रोफेसर साहब के साथ गोमती की छाती पर सवार हो चुकी है। तब से न जानें कितनी नावें डूब चुकी होंगी। लेकिन वह अब तक ऊब-डूब ही रही है।

अचानक उसे एक और झटका लगा। वह प्रोफेसर साहब के बंगले के सामने में ही नहीं, फाटक से गुजरकर उनकी पोर्टिको के सामने जा पहुँची थी।

पोर्टिको में कार खड़ी थी और प्रोफेसर साहब, जो कहीं जानेवाले थे, अपनी आँखों पर ज़ोर डालकर उसे पहचानने की कोशिश कर रहे थे।

वनमाला ठिठक गयी। उसने सोचा कि मैं यहाँ क्यों आ गयी? मुझे यहाँ से क्या लेना देना। और वह लौटने को उद्यत हुई, तभी प्रो० वर्मा ने उसे पूरी तरह पहचानकर उसकी ओर बढ़ते हुए कहा, "अरे! वनमाला! तुम कब आयीं? आओ, आओ।" वनमाला को रुक ही जाना पड़ा।

प्रो० वर्मा ने अपना प्रोग्राम 'कैंसिल' कर दिया और वनमाला को लेकर ड्राइंगरूम में जा बैठे। उनके हाथ काँप रहे थे, वनमाला से निगाह मिलाने में जैसे उन्हें डर लग रहा था, लेकिन उसकी निगाहें दूसरी ओर होतीं तो उसी की ओर जी भर देखकर अपनी प्यास क्षण भर में ही बुझाने की कोशिश करते थे। उनका कंठ गद्-गद् हो रहा था। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि इस मानिनी का, जो अपनी यादों से चार वर्ष तक मुझे तड़पाने बाद अचानक फिर आ गयी है, कैसे स्वागत किया जाय। न मालूम क्यों वे समझ बैठे थे कि अब वनमाला यहाँ से न जायेगी।

वनमाला ने देखा कि चार ही वर्षों ने प्रोफेसर साहब को बिल्कुल बूढ़ा कर दिया है। उनके सारे बाल सफेद हो गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ भर गयी थीं और आवाज़ में भी पहले जैसा भारीपन नहीं था। उसे उन पर दया आने लगी।

लेकिन जब उन्होंने कहा, "और बताओ। कहाँ-कहाँ रहीं इतने दिन तक" तो वनमाला के चेहरे पर फिर तनाव-सा पैदा हुआ और वह ओठ मींचकर चुप बैठी रही।

कुछ देर बाद वह खुद बोली, "सुन ही लीजिए। आखिरी बात-चीत मैं आपसे ही कर रही हूँ। आप ही मेरा 'कनफेशन' ले लीजिए।"

और उसने लखनऊ से जाने के बाद से अब तक की एक-एक घटना विस्तारपूर्वक सुना दी। प्रोफेसर साहब आँखें फाड़े इस विचित्र कहानी को सुनते रहे। जैसे-जैसे वनमाला की कहानी आगे बढ़ती जाती थी, वैसे ही वैसे प्रोफेसर साहब का दिमाग उलझता जा रहा था। इसीलिए शायद वे कहानी

का अन्तिम भाग ठीक तरह नहीं सुन सके और बोले, "खैर! जो हुआ वह हुआ। अब यहीं रहो।"

वनमाला ने हँसकर कहा, "आप मुझ पतिता हत्यारिन को रखेंगे।"

प्रोफेसर साहब ने विकलता से कहा, "वनमाला! अफ़सोस है कि तुमने मुझे अब तक भी नहीं समझा। भगवान के लिए अब तो समझने की कोशिश करो।"

वनमाला हँसकर उठ खड़ी हुई और बाहर निकलते हुए बोली, "प्रोफेसर साहब! अभी आपको बहुत कुछ सीखना है। मृग-मरीचिका के पीछे न दौड़िए।"

दोनों बातें करते हुए बाहर सुनसान सड़क पर आ गये। प्रो० वर्मा अब भी ज़िद कर रहे थे कि वापस चलो। वनमाला मना करते-करते थक गयी तो एकदम पलट पड़ी। उसने कमर से अम्बिका बाबू की खरीदी छुरी निकाल ली और तड़पकर बोली, "मेरा साथ देना मज़ाक नहीं है प्रोफेसर साहब। मेरा साथ इस दुनिया में नहीं, कहीं और ही हो सकता है। तय्यार हैं वहाँ चलने के लिए?"

प्रोफेसर साहब स्तंभित रह गये। उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला। वनमाला सड़क की बत्तियों की धुँधली रोशनी में ग़ायब हो गयी।

गोमती में पहली बारिश का रेला आया हुआ था। एक सुनसान अँधेरे स्थान में छपाका सुनकर किनारे की कुटियों में रहने वाले लोगों ने कहा, "अबकी बार तो गोमती अभी से कगार तोड़ने लगी है।"

उपसंहार

ठीक एक सप्ताह बाद, दूसरे रविवार को, ज़ैदी साहब प्रोफेसर जितेन्द्र वर्मा के मकान पर आये। वे लगभग पन्द्रह दिन बाद आये थे, लेकिन इस बार वे आये तो प्रोफेसर साहब को देखकर चौंक उठे। उन्होंने कहा, "ख़ैरियत तो है वर्मा साहब? आपकी तबियत तो ठीक है?"

प्रोफेसर साहब ने ज़बर्दस्ती की हँसी हँसकर कहा, "ठीक हूँ। मेरी तबियत क्या खराब है? मैं बिल्कुल तन्दुरुस्त हूँ।"

"नहीं साहब, मैं यक़ीन नहीं कर सकता। आप तो ऐसे लग रहे हैं जैसे छः महीने के बीमार हों। आपकी कमर झुकी मालूम होती है, आँखों के गिर्द गड्ढे पड़ गये हैं, हाथ काँपते मालूम हो रहे हैं और चेहरे पर अजीब रूखा-पन है।"

प्रोफेसर वर्मा तर्कसंगत बात पर कभी नहीं झुँझलाते थे। ज़ैदी साहब ने ताज्जुब से सर उठाकर देखा तो वर्मा साहब की आँखों में विकलता की ऐसी गहरी छाप दिखायी पड़ी कि वे चौंक पड़े। वर्मा साहब के होठों के कोने कँप-कपा रहे थे और आँखों से आँसू फूटने ही चाहते थे।

वनमाला जबतक बम्बई में थी तबतक उसे वर्मा साहब के ख़त बराबर मिला करते थे। लेकिन वह उन्हें बग़ैर पढ़े ही फेंक देती थी। वर्मा साहब ने कुछ दिनों बाद यह पढ़ा था कि डाक्टर कुरैशी के एक्सपेरीमेंट्स सफलता-पूर्वक समाप्त हो गये और उन्होंने मलेरिया की रोक-थाम का जो उपाय खोज निकाला था उसे सरकार व्यापक रूप से कार्यान्वित करने की योजना बना चुकी थी। वनमाला की कोई खबर न मिलने पर प्रोफेसर साहब ने समझ लिया था कि संभवतः वह इन्हीं प्रयोगों में मर-खप गयी होगी और वे संतोष करके बैठ रहे थे।

लेकिन उस दिन अचानक वनमाला ने आकर उनके जीवन को जिस बुरी तरह झँझोड़ दिया था, उसे प्रोफेसर साहब सहज ही नहीं भुला सकते थे। अगर वनमाला भागकर उनके पास शरण लेने के लिए आयी होती तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती। वे बड़ी आसानी से उसे अदालत के पंजे से छुड़ा सकते थे। अगर लखनऊ में उसे लेकर रहने में बदनामी होती तो उसके लिए वे नौकरी भी छोड़ देते और कहीं दूसरी जगह चले जाते।

इधर तो उन्हें कमज़ोरी भी बहुत बढ़ गयी थी। मालूम होता था कि हरारत रहने लगी है। खाना खाने की इच्छा नहीं होती। ज़रा दूर चलते तो हाँफ जाते। पढ़ने-लिखने की तो बात ही करना बेकार था।

टहलते-टहलते वर्मा साहब बोले, "और सुनाओ, तुम्हारी अखबारी दुनिया का क्या हाल है। इधर कोई 'स्कूप' मारा है या नहीं?"

"स्कूप नहीं साहब, एक वाकया ऐसा सच्चा हुआ है कि उसके सामने अच्छे-अच्छे 'कनार्ड' व्यर्थ हैं। आपने नहीं पढ़ा क्या? आजकल तो उसी की धूम है!"

वर्मा साहब को इन दिनों अखबार पढ़ने का भी दिमाग नहीं रहा था।

जैदी साहब बोले, "यहाँ से पाँच मील दूर पर कुछ गाँववालों ने एक औरत की लाश पानी पर उतराती देखी। कछुओं ने उसका चेहरा खा लिया था, इसलिए वह पहचान में न आयी। मालूम नहीं कि वह नहाते वक्त पैर फिसलने से डूब गयी या उसे किसी ने मार कर डाल दिया था। साथ ही गनेशगंज में बाहर से बंद किये गये एक कमरे में से बदबू आने पर पुलिस ने ताला तोड़ा तो पलंग पर एक आदमी की सड़ती हुई लाश मिली। पोस्टर मार्टम से पता चला कि उसने स्लीपिंग टेबलेट्स की बड़ी 'डोज़' लेकर खुदकुशी कर ली थी। लेकिन यह समझ में नहीं आता कि उसे बाहर से बंद किसने किया। सबसे ज्यादा अक्ल हैरान करने वाली बात यह है कि उस मकान के रहनेवालों ने औरत के कपड़ों से पहचाना कि वह उसी मरे हुए आदमी की बीवी है। पुलिस क अक्ल चक्कर में……है, आपको क्या हो रहा है? सँभालिए नहीं तो गिर पड़ेंगे।" यह कहकर जैदी साहब ने वर्मा साहब को थाम लिया।

एक ग्लास पानी पीकर वर्मा साहब कुछ स्वस्थ हुए तो बोले, "पुलिस इस 'मिस्ट्री' को कभी 'साल्व' न कर सकेगी। यह पूरा वाकया मुझसे सुनिए। यह स्त्री बहुत ही हसीन और काबिल थी। दिल की भी बहुत साफ लेकिन उसमें एक खराबी थी कि उसे अपने ऊपर इतना ज्यादा 'कानफीडेंस' था कि अपने सामने सारी दुनियाँ की कोई हकीकत नहीं समझती थी। वह यह भी न जान सकी कि ऊँचे से ऊँचे इंसान को भी संसार का मुँह देखकर चलना पड़ता है। 'सुपर मैन' कोई नहीं है।

"आप मेरा मुँह देख रहे हैं? मैं पागल नहीं हुआ हूँ।"…"हाँ…"तो उसका

किस्सा सुनिए। वह पहले एक स्कूल इंस्पेक्ट्रेस थी। उसने एक यूनिवर्सिटि प्रोफेसर से शादी की। उसकी माँ की मरज़ी के खिलाफ यह शादी हुई थी उस वक्त अपनी धुन में उसने माँ का दिल तोड़ दिया, लेकिन माँ के मरने प उसके दिल पर गहरा असर हुआ और उसने नौकरी छोड़ दी। फिर उस अपने शौहर की एक रिश्ते की बहिन को मुसीबतों से छुड़ाने के लिए उस हाथ पकड़ा, लेकिन जब बहिन की 'पर्सनालिटी' उभड़ने लगी और वह उस इशारों पर चलने को राज़ी न हुई तो इस नारी के 'कम्प्लेक्स' ने उसे यह यक़ीन करने पर मजबूर कर दिया कि शौहर का अपनी बहिन से नाजायज़ ताल्लुक़ है। इसी चक्कर में वह तलाक़ लेकर एक डाक्टर के हाथों मरने के लिए बम्बई गयी, लेकिन वहाँ भी उसके 'कम्प्लेक्सेज़' ने चैन न लेने दिया औ वह निहायत खराबी की हालत में मैनपुरी आ गयी। वहाँ कुछ अरसा उस सख्त माली दिक्क़तों में गुज़ारे और गरीबी के ही चक्कर में आकर एक दौलत मंद से अपनी अस्मत लुटवा बैठी। समाज ऐसे विद्रोही को कब चैन लेने दे है? उसे मुँह दिखाना मुश्किल हो गया। चुनाचे उसने घबराकर एक आवारे का सहारा पकड़ा और दिल से उसे प्यार करने लगी। लेकिन उन दोनों का जोड़ ही क्या? आखिर जब उस लफंगे ने चंद पैसों के पीछे उसकी मुहब्बत ठुकरा कर नीलाम पर चढ़ा दी और फिर जान बचाकर भागना चाहा तो, यह औरत बर्दाश्त न कर सकी और उसे जहरीली खुराक देकर खुद नदी में...।"

जैदी साहब से न रहा गया। वे लगभग चीख से पड़े, "क्या?...Do you mean...क्या आपका वाकई कहना है कि वह ....।"

"हाँ, वह वनमाला ही थी," प्रोफेसर छुटे हुए गले से बोले, तभी मधु दौड़ती हुई आयी और बोली, "पापा...पापा" बुआ की नौकरी लग गयी। एल० टी० का ही ग्रेड मिला है। उन्होंने दावत दी है और मुझे अपने घर बुलाया है। जाऊँ न?...अरे...अरे...आप इस तरह मेरी तरफ क्यों देख रहे हैं?... मुझे डर लगता है...पापा...।"

॥ समाप्त ॥